वार्षिक अंक–11
2014

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार
नई दिशाएँ

ISSN 0973-7588

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
भारत

ISSN : 0973-7588

मानव अधिकार : नई दिशाएँ

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

वार्षिक, अंक – 11, 2014

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
सी–ब्लॉक, जी. पी. ओ. कॉम्पलैक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110 023
भारत

© **2014, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत**

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
सी–ब्लाक, जी. पी. ओ. कॉम्पलैक्स,
आई. एन. ए., नई दिल्ली – 110023, भारत
वेबसाईट : www.nhrc.nic.in
ई–मेल : covdnhrc@nic.in

मुद्रण एवं डिजाईनिंग : **सेंट. जोसेफ प्रेस**
सी–43, ओखला फेस–1, नई दिल्ली–110 020
मो.– 9999891207
ई–मेल : stjpress@gmail.com

न्याय में जितनी उदारता की जरूरत है, इतनी ही न्याय की उदारता में है।

महात्मा गाँधी

23.10.1945

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री के. जी. बालाकृष्णन

सदस्य

न्यायमूर्ति श्री सीरिएक जोसफ
न्यायमूर्ति श्री डी. मुरूगेशन
श्री शरद चंद्र सिन्हा

महासचिव

श्री राजेश किशोर

रजिस्ट्रार

श्री अनिल कुमार गर्ग

संयुक्त सचिव (का. एवं प्रशा.)

डॉ. रणजीत सिंह

संयुक्त सचिव (प्रशि. एवं अनु.)

श्री जयदीप सिंह कोचर

सलाहकार मंडल

श्री शरद चन्द्र सिन्हा

डॉ. रणजीत सिंह

प्रो० नामवर सिंह

श्री लीलाधर मंडलोई

प्रो० गोपेश्वर सिंह

मानव अधिकार : नई दिशाएँ

संपादक

डॉ. रणजीत सिंह

सह संपादक

डॉ० सरोज कुमार शुक्ल

संपादन सहयोग

अंजली सकलानी

अमित कुमार साव

अखिलेश सिंह

कम्प्यूटरीकरण

सीमा शर्मा
सरिता विजय बहादुर

अनुक्रम

- **दो शब्द** : *xi*
- **आमुख** : *xiii*
- **संपादकीय** : *xv*

विषय वस्तु पर आधारित लेख :–

क्रम सं0	विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ सं0
	खण्ड – एक		
	जनजाति, विकास एवं मानवाधिकार		
1.	प्रकृति, विकास एवं जनजातीय समाज : एक विमर्श	डॉ. प्रतिभा	03–10
2.	जनजातीय लोगों के लिए भूमि अधिकार ही मानव अधिकार	डॉ० प्रमोद कुमार अग्रवाल	11–20
3.	विकास एवं जनजातियों का भविष्य	डॉ. विन्देश्वर पाठक	21–38
4.	जनजातियों की समस्याएं एवं मानवाधिकार	डॉ.एस.पी.मीना	39–56
5.	जनजातियों का विकास एवं भविष्य	पंकज कुमार	57–76
6.	जनजाति समुदाय : मानव अधिकारों की स्थिति	चमन लाल	77–92
7.	भूमण्डलीकरण पोषित विकास का जाल एवं आदिवासी समुदाय के मानवाधिकार	डॉ० वी. के. शर्मा	93–104
8.	विकास के नकारात्मक आयाम एवं जनजातियों का भविष्य	पूनम कुमारी	105–116
	खण्ड – दो		
	जनजाति क्षेत्र एवं स्वास्थ्य		
9.	जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिये योजनायें व वित्तीय प्रावधान	डॉ. एस.एम. झरवाल	119–130

10. जनजातियों के विकास के संदर्भ में अनु० जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 का एक समग्र विश्लेषण	डॉ० अनीस अहमद कृष्ण कुमार भास्कर	131–140
11. विकास एवं जनजातियों का भविष्य झारखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में	लक्ष्मी सिंह	141–154
12. जम्मू और कश्मीर के गुज्जर जनजाति : संघर्ष की संतानें	सूफिया अहमद जावेद अहमद	155–162
13. राजस्थान में अनुसूचित क्षेत्र के सन्दर्भ में पेसा कानून का मूल्यांकन	डॉ० अनिला	163–176
14. उत्तर पूर्वी भारत में समस्याएँ एवं संभावनाएँ	टीलू लिंग्गी	177–188
15. भारतीय संदर्भ में जनजातीय स्वास्थ्य का अध्ययन	डॉ० राशिदा अतहर	189–200
16. शैक्षिक प्रयास एवं जनजातीय विकास	डॉ० संतोष कुमार सिंह	201–216

खण्ड – तीन
स्त्री सशक्तीकरण, मीडिया और मानवाधिकार

17. महिलाओं के मानवाधिकार उल्लंघन पर न्यायपालिका की भूमिका	ज्ञानेन्द्र कुमार शर्मा एवं प्रणव वशिष्ठ	217–246
18. मानव अधिकार और महिला सशक्तीकरण	संजय भास्कर	247–262
19. मीडिया में दलित, वंचित और आदिवासी	श्री राकेशरेणु	263–276
20. रेत ज्यों तन रह गया है	डॉ० अनिता सिंह	277–283

खण्ड – चार
काव्य – कथा

21. पगडंडियां पाखंड की (कविता)	डॉ. संगीता सक्सेना	287–290
22. दहेज बनाम आत्मबल (कहानी)	ज्ञानवती धाकड	291–299

- **आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों पर आधारित कहानियाँ**

  प्रस्तुति : इंदिरा दांगी 303–320

- **पुस्तक समीक्षा**

  "सामाजिक न्याय और मानवाधिकार"

  समीक्षक : अंजली सिन्हा 323–328

  "मानवाधिकार की संस्कृति" 329–331

  समीक्षक : डॉ० राजेन्द्र उपाध्याय

दो शब्द

मानव अधिकार : नई दिशाएँ के ग्यारहवें अंक के प्रकाशन के अवसर पर हम सुधी पाठकों, लेखकों और चिंतकों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन करते हैं। आयोग के ऐसे उपयोगी, महत्वपूर्ण एवं सूचनाप्रद प्रकाशन के माध्यम से हम निश्चित रूप से एक विशाल समुदाय के समीप पहुँचने के अपने लक्ष्य में सफल हो सकेंगे।

मेरा ऐसा मानना है कि मानव अधिकारों की विचार भूमि समस्त मानवता के वैश्विक धरातल पर टिकी हुई है तथा वह सम्पूर्ण सृष्टि के प्रत्येक चर एवं अचर प्राणियों से गहरे रूप से भी जुड़ी हुई है। साथ ही, इसकी परिधि में संपूर्ण सृष्टि के प्रत्येक चर व अचर प्राणियों के कल्याण का भाव भी गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। अधिकारों के संरक्षण के भाव के साथ–साथ संपूर्ण विकास की दृष्टि भी इसी पृष्ठभूमि को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि समाज के सभी वर्गों में मानव अधिकारों के संरक्षण के भाव को पुष्पित, पल्लवित व विकसित किया जा सके।

आयोग द्वारा प्रकाशित यह जर्नल पिछले कुछ वर्षों से अकादमिक क्षेत्र से जुड़े बुद्धिजीवियों, शोद्यार्थियों तथा विद्यार्थियों के मध्य एक सशक्त प्रभावी एवं लोकप्रिय माध्यम बन कर अपनी उपस्थिति को दर्ज कराने में सक्षम हुआ है। साथ ही, इस जर्नल ने पिछले दस वर्षों की अपनी यात्रा में आम जन की भाषा में मानव अधिकारों की जमीनी हकीकत को समझाने, जाँचने व परखने का एक सशक्त मंच भी प्रदान किया है।

इस अंक में जिन सुधी लेखकों, विद्वानों, वरिष्ठ अधिकारियों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े प्रतिनिधियों द्वारा सहयोग प्रदान किया गया है, उन सभी को मैं आयोग की ओर से हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनका इसी प्रकार सहयोग प्राप्त होता रहेगा। इस आशा के साथ, मैं यह अंक पाठकों को समर्पित करता हूँ।

(न्यायमूर्ति श्री के. जी. बालाकृष्णन)

आमुख

मानव अधिकार का विचार – दर्शन वैश्विक धरातल पर टिका हुआ है तथा इसकी विकास यात्रा से गहरे रूपों से संपृक्त है। मानव–मात्र हम सब में निहित है। मानव अधिकार प्रकृति प्रदत्त हैं एवं इनका केन्द्रीय भाव प्रत्येक मानव को समाज में सम्मान एवं गरिमा प्रदान करने के साथ–साथ उनकी क्षमताओं का समुचित विकास करना भी है। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारत में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना की गई ताकि समकालीन समय में मानवीय मूल्यों और आदर्शों की प्रभावी ढंग से रक्षा करने के साथ–साथ एक ऐसे समाज की रचना की जाये। जहाँ कोई भी व्यक्ति किसी के अधिकारों का हनन न कर सके।

अपने स्थापना काल से ही आयोग, मानवाधिकार के अभियान को जनांदोलन के रूप में विकसित करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहा है। आयोग इसका प्रणेता भी है और सूत्रधार भी। आयोग का आदर्श वाक्य है – **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** अर्थात् सभी सुखी हों। आयोग का अभीष्ट लक्ष्य इसी उक्ति को वास्तविकता में बदलना है। आयोग का उद्देश्य जहाँ एक ओर देश के शोषित–पीड़ित बहुसंख्यक वर्ग को उसके मानवाधिकारों से परिचित कराना है, वहीं दूसरी ओर शासन–प्रशासन से जुड़े लोगों और नीति–निर्माताओं को इस मानव केंद्रित दृष्टि के प्रति संवेदनशील करना भी है। यह पहल अपने आप में महत्वपूर्ण है तथा एक नये युग का सूत्रपात भी।

जब हम मानव अधिकारों की चर्चा करते हैं तो राष्ट्रपिता **महात्मा गांधी** का नाम सहज ही ध्यान में आता है। गांधीजी देश को केवल अंग्रेजों की गुलामी से ही नहीं बल्कि सदियों से चले आ रहे सामाजिक अन्याय, शोषण और उत्पीड़न से भी मुक्ति दिलाना चाहते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य एक ऐसे समतामूलक समाज को बनाना था ।

जिसमें जाति, पंथ, क्षेत्र आदि के आधार पर किसी तरह का भेदभाव न हो। कोई व्यक्ति भूखा न रहे तथा सबकी बुनियादी जरूरतों की पूर्ति हो सके। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने जीवनभर कोशिश की। अस्पृश्यता यानी छुआछूत को उन्होंने सामाजिक अपराध और अभिशाप माना।

'मानव अधिकारः नई दिशाएँ' आयोग का वार्षिक प्रकाशन है इस वर्ष ग्यारहंवा अंक प्रकाशित हो रहा है। हमें बड़ी प्रसन्नता है कि यह निर्बाध एवम् अनवरत प्रकाशित होता रहा है।

आज मानवाधिकार से जुड़े संवेदनशील मुद्दे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनमानस को झकझोर रहे हैं। जिसके कारण संपूर्ण विश्व के शासकों को इन महत्वपूर्ण मुद्दों के प्रति सोचने को विवश होना पड़ रहा है।

आयोग का यह निरंतर प्रयास रहता है कि वह आम आदमी के दुख–सुख से जुड़े, उसकी चिंताओं को संज्ञान में ले और आवश्यकतानुसार सतर्क हस्तक्षेप भी करे। इस प्रकार आयोग के द्वार सबके लिए सदैव खुले हुए हैं। हम आशा करते हैं कि आम आदमी के साथ आयोग का संवाद बनाये रखने में यह जर्नल महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहेगी।

एक सफल लोकतंत्र के लिये जिस प्रकार राजनैतिक–सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता होती है उसी प्रकार उसके लिए एक सजग, व सर्तक समाज भी अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान अंक **'आदिवासियों के अधिकार'** से जुड़ा हुआ है। जो आज की दृष्टि में बहुत ही महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत मुद्दा है। मुझे विश्वास है कि इस तरह के विचार–विमर्श को आगे बढ़ाते हुए यह जर्नल समाज में मानवीय चिंतन को एक नए रूप में आगे बढ़ाने में सक्षम हो सकेगा।

मैं जर्नल के प्रकाशन के कार्य से जुड़े सभी सहकर्मियों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ तथा उन्हें इसके प्रकाशन पर बधाई देता हूँ।

शुभाः ते पन्थानः

(आप के मार्ग शुभ हों)

(शरदचंद्र सिन्हा)

सम्पादकीय

प्रकृति के साहचर्य में मानव सभ्यता पल्लवित एवं पुष्पित हुई है। तब प्रकृति की गोद में इंसान जीवन–बसर करता था। चैन से रहता था। प्रकृति माँ सरीखी थी। मनुष्य की आवश्यकताएँ पूरी करती थी। साहचर्य का सुख देती थी। इसी विकास क्रम में संस्कृति भी पनपी, पल्लवित पुष्पित हुई। यह संस्कृति सीख देती थी कि इंसान को अपनी आवश्यकताएँ सीमित रखनी चाहिए। कुदरत से उतना ही लेना चाहिए, जितने से उसका जीवन यापन चल सके। इसी जीवन–दृष्टि का नतीजा था। संतोष को परम सुख का दर्जा देना। कालांतर में जीवन–दर्शन बदला। असर संस्कृति पर पड़ा। सभ्यता के मानदंड भी बदले। अब माना यह गया कि प्रकृति का जितना दोहन करेंगे, उतना विकसित बनेंगे। विकास की परिभाषा बदल गई। प्रतिमान भी बदल गए। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने याद दिलाया कि **''प्रकृति के पास सबकी जरूरतें पूरी करने लायक संसाधन हैं, पर किसी एक व्यक्ति के भी लोभ को पूरा करने लायक नहीं।''**

आज हम जिसे आदिवासी या वनवासी के नाम से जानते हैं, वह प्रकृति की गोद में रहने वाला तबका है। प्रकृति के साहचर्य में जीवन–बसर करने वाला समाज है। आदिवासी समाज का बहुतायत उसी जीवन–दर्शन में विश्वास करता है, जहां प्रकृति के दोहन की मनाही थी। यही वजह है कि आज भी आदिवासी लोग प्रकृति की गोद में रहना पसंद करते हैं। आदिवासी समाज जिन इलाकों में है। वहां प्रकृति और प्राकृतिक संसाधन पर्याप्त धनी है।

वर्तमान में विकास के नज़रिये से पूंजीपति इन इलाकों की ओर रूख करते नज़र आ रहे हैं। आदिवासी इलाकों के संसाधनों के दोहन पर आधारित विकास के मौजूदा

मॉडल के साथ आदिवासी समाज कदमताल मिला पाने में असफल साबित हो रहा है। इन दोनो नजरियों के बीच का द्वन्द्व कई तरह की चुनौतियों को जन्म देता है। मानवाधिकार के प्रश्न भी इन्हीं जटिलताओं की पैदाइश हैं। विकास की इस संस्कृति में जो तबका जितना नीचे रहता है, उसके मानवाधिकार का उतना ही अधिक हनन होता है।

जनजाति और दलित तबके के साथ स्त्री को इसीलिए इस चिंतन में शामिल किया गया है। प्रकृति के करीब रहकर संस्कृति की रचना और रक्षा करने में स्त्रियाँ, पुरुषों से आगे रहती हैं। परंतु विडंबना यह है कि स्त्रियों की स्थिति दोयम बनी हुई है। कर्त्तव्यों का भारी बोझ उनके ऊपर समाज लाद देता है, परंतु उनके अधिकारों के प्रति सचेत नहीं रहता।

साथ ही, पूर्व की भांति इस अंक में मानव अधिकारों से संबंधित महत्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षाओं के साथ–साथ आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों की साहित्यिक प्रस्तुति के स्थायी स्तंभ के अंतर्गत रोचक एवं पठनीय सामग्री भी प्रस्तुत की जा रही है।

प्रस्तुत अंक इन्हीं चुनौतियों के विभिन्न आयामों पर गहन विचार–विमर्श करता है। साथ ही, विकास को बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उसकी जटिलताओं के साथ मानवाधिकार के मसले को सुलझाने का प्रयास भी इन रचनाओं में मिलेगा।

(डॉ० रणजीत सिंह)

खण्ड — एक

जनजाति, विकास एवं मानवाधिकार

प्रकृति, विकास एवं जनजातीय समाज : एक विमर्श

* डॉ. प्रतिभा

जनजातीय समाज से आशय एक ऐसे समूह से लिया जाता है, जिसके पास अपना एक विशिष्ट नाम, बोली एवं क्षेत्र हो, साथ ही विशिष्ट रीति–रिवाज, विश्वास एवं धार्मिक अनुष्ठान हो तथा जो सामान्य उद्देश्य के लिए साथ काम करता हो। आदिवासी, वनवासी, गिरिजन तथा आदिम समूह आदि अन्य नामों से जाने जाने वाले इस समूह को **ऑक्सफोर्ड शब्दकोश** एक ऐसे जनसमूह के रूप में परिभाषित करता है, जो विकास की आदिम या बर्बर अवस्था में रह रहा हो, जिसका एक प्रमुख हो तथा जो अपने को एक ही वंश का माने।

अपनी दीर्घ जीवन यात्रा में जनजातियां प्रमुखतः पहाड़ों और जंगलों में निवास करती रही हैं और अपने अस्तित्व के लिए उन्हीं पर निर्भर रही हैं। जातीय समाज की भाँति स्तरीकरण का प्रचलन इनमें नहीं रहा है। विभिन्न आदिवासी कबीले रक्त सम्बन्धों के आधार पर निर्मित थे और स्वतंत्र समाज के रूप में व्यवहार करते थे। प्रत्येक जनजातीय समाज अपनी जातीय पहचान और विशिष्ट संस्कृति के प्रति संवेदनशील होता था तथा आर्थिक संसाधनों के सामूहिक स्वामित्व को स्वीकार करने वाला होता था। उनकी अपनी विशिष्ट सरल किन्तु सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था थी, जिसमें अधिकारों एवं कर्तव्यों का स्पष्ट विभाजन था। मुखिया का पद वंशानुगत होता था जिसका नेतृत्व और आदेश सभी स्वीकारते थे। इनकी परम्परागत संचार व्यवस्था भी थी।

जनजाति विकास यात्रा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सुदूरस्थ तथा निर्जनतम स्थानों पर निवास करने के कारण जनजातीय समाज सभ्यता की मुख्यधारा से कटा रहा। संभवतः इसी कारण प्रगति तथा विकास उसके लिए अनजाने शब्द रहे हैं। अंडमान–निकोबार के कुछ क्षेत्रों में तो आज भी आदिवासी आदिम

* उपाचार्य, इतिहास विभाग, मो.ला.सु.वि.वि., उदयपुर

रूप में देखे जा सकते हैं। इस अलगाव और पहुँचहीनता के कारण इस समाज को प्रशासनिक अनदेखी, उपेक्षा और फलतः अविकास का सामना करना पड़ा है। दूसरी ओर, इनकी अलग तथा विशिष्ट पहचान का कारण भी यही अलगाव रहा है।

स्वतन्त्रता पूर्व विकास यात्रा

आधुनिक समाज से जनजातीय समाज का प्रथम सम्पर्क 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ माना जाता है, जब राजमहल पहाड़ों के पहाड़िया आदिवासी जागीरदारों के विरुद्ध विद्रोह के माध्यम से ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के सम्पर्क में आए, जो अब तक भारत में अपनी जड़ें जमा चुकी थी। कम्पनी की कानून तथा राजस्व सम्बन्धी नई नीतियों ने सामान्य भारतीयों के साथ–साथ जनजातियों पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाला। कम्पनी जनजातीय क्षेत्रों से अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहती थी, अतः उनकी जीवन पद्धति और आर्थिक संगठन को समझने का प्रयास प्रारम्भ किया गया। जनजातियों ने इसका विरोध किया और कोल तथा संथाल जैसे कई विद्रोह इसके परिणामस्वरूप सामने आए। तथापि जनजातीय समाज को मुख्यधारा में लाने हेतु कई प्रशासनिक सुधारों का आरम्भ कम्पनी सरकार ने किया।

1857 ई. के बाद ब्रिटिश ताज ने कम्पनी से सत्ता अपने हाथ में ले ली। इसके बाद जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासनिक ढ़ांचे तथा कानूनों को संहिताबद्ध करने का प्रयास किया गया। साइमन कमीशन द्वारा जनजातियों को शिक्षित और जागृत किए जाने की आवश्यकता महसूस की गई। फलतः 1935 में एक अधिनियम द्वारा पिछड़े क्षेत्रों का वर्गीकरण करते हुए अपवर्जित तथा आंशिक अपवर्जित क्षेत्रों का निर्धारण किया गया। बाद में 1946 में कैबिनेट मिशन द्वारा कठित तीन उपसमितियों ने आदिवासी क्षेत्र के बसावट वाले क्षेत्रों को अनुसूचित क्षेत्र घोषित किए जाने की सिफारिश की।

जनजातीय क्षेत्रों में अंग्रेजी कानून तथा राजस्व व्यवस्था के प्रसार से ब्रिटिश शासनकाल में जनजातियों की समस्याओं में वृद्धि ही हुई। ब्रिटिश नीतियों और महाजनों के सम्मिलित प्रयास से भूमि पर से आदिवासियों का अधिकार छिनने लगा। असंतुलित, कठोर तथा एकपक्षीय नए वन कानून से भी नई समस्याएं सामने आई। जनजातीय समुदाय में नशाखोरी तथा गरीबी में वृद्धि हुई। न्यायिक समुदाय में नशाखोरी तथा गरीबी में वृद्धि हुई। न्यायिक व्यवस्था भी उनके साथ न्याय नहीं कर पाई क्योंकि न्यायिक अधिकारी उनकी भाषा, रीति–रिवाज तथा विचारधारा से अंजान थे। कुल मिलाकर अंग्रेजों ने सम्पूर्ण देश से जनजातीय क्षेत्र को अलग–थलग रखने की नीति बनाई जिससे विकास की दृष्टि से जनजातियां अन्य क्षेत्रों से पीछे छूट गई।

उपनिवेशवादी ब्रिटिश सरकार की ही भांति देशी रियासतों की सरकारों ने भी जनजातीय विकास के लिए कोई नीति नहीं बनाई। और तो और, प्रशासनिक सहूलियतों के आड़े आने वाले आदिवासियों पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार भी किए। इस त्रासदी को और आगे बढ़ाते हुए समाज के उच्च वर्गो, व्यापारियों और सूदखोरों ने भी इनका मनमाना शोषण किया। ईसाई मिशनरियों के कल्याणकारी प्रयास भी विकास अथवा उत्थान के स्थान पर धर्मान्तरण के उद्देश्य से थे।

स्पष्टतः स्वतंत्रता से पूर्व जनजातियों के विकास के लिए नाममात्र के प्रयत्न किये गये और पूर्व की भांति ही यह समुदाय देश की मुख्यधारा से कटा रहा।

स्वातंत्र्योत्तर विकास यात्रा

1947 के बाद स्वतन्त्र भारतीय सरकार ने उपेक्षित एवं मुख्यधारा से कटे इस वर्ग के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। संविधान निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्य को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर व पिछड़े हुए वर्गो को विकास के विशेष अवसर दिए जाएंगे, ताकि ये वर्ग देश की आर्थिक एवं राजनैतिक मुख्यधारा में स्वयं को आत्मसात कर सकें। भारतीय संविधान में प्रमुख जनजातीय समूहों को उनकी स्थिति के अनुसार, अनुसूचित घोषित किया गया और अनुसूचित जनजाति के नाम से संबोधित किया गया। निस्संदेह यह बड़ी उपलब्धि थी, क्योंकि इससे उन्हें अपनी जातीय, भाषायी तथा सांस्कृतिक अस्मिता को मजबूत करने में सहायता मिली।

जनजातीय समाज तथा संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास हेतु भारतीय संविधान ने विविध प्रकार के सुरक्षात्मक तथा विकासात्मक प्रावधान किए, जिससे जनजातियां स्वयं को प्रगति के सोपानों पर कुछ हद तक स्थापित कर सकें। उन्हें विविध प्रकार के शोषणों से मुक्त करने के प्रावधान भी संविधान ने किए। संविधान की धारा 15, 16, 19, 23, 46, 164, 244, 275, 300, 330, 332, 334, 333 आदि के प्रावधानों के द्वारा कानूनी संरक्षण प्रदान करते हुए उनके सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।

स्वतंत्र भारत की लोकतांत्रिक तथा न्यायिक सरकार का मानना था कि एक सन्तुलित तथा उन्नत राष्ट्र के रूप में भारत देश का निर्माण तभी संभव है, जब उसमें सभी वर्गो और समुदायों की सहभागिता हो। इसके लिए आवश्यक है कि वे सभी वर्ग विकास के प्रतिमानों पर खरे उतरें। प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरु ने जनजातीय विकास पर बल देते हुए जिन प्रमुख बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित किया, वे हैं –

- जनजातियों को अपनी संस्कृति के विकास के लिए प्रोत्साहित किया जाए और उन पर बाहरी संस्कृति न लादी जाए।
- खेती योग्य जमीन और वन क्षेत्रों पर जनजातियों के अधिकारों को सम्मान दिया जाए और उनकी सुरक्षा की जाए।
- इन क्षेत्रों के प्रशासनिक कार्यो में बाहरी लोगों की नियुक्ति के बजाय स्थानीय लोगों को तैयार और प्रशिक्षित किया जाए।

1952 की प्रथम पंचवर्षीय योजना से जनजातीय विकास कार्यक्रमों की व्यावहारिक शुरुआत हुई। प्रथम योजना में जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक विकास, सड़क निर्माण तथा संचार साधनों के विकास पर बल दिया गया। द्वितीय योजना में जनजातियों के आर्थिक विकास पर बल दिया गया और कृषि, कुटीर उद्योग, वन, सहकारी संस्थाओं और विशेष अधिकार प्रखंडों की योजनाओं का विशेष तौर पर उल्लेख किया गया। तृतीय योजना में भी यह नीति जारी रही जबकि चतुर्थ तथा पंचम योजनाओं में क्षेत्र विशेष के विकास का दृष्टिकोण अपनाया गया। इसके अन्तर्गत तीव्र विकास के लिए विषेश क्षेत्रों की पहचान तथा चयन का कार्य किया गया।

बहुउद्देश्यीय जनजातीय विकास खंडों के माध्यम से प्रारंभ किए गए विविध कार्यक्रमों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। जनजातीय समस्याओं के निवारण एवं जनजाति बहुल क्षेत्रों के कुशल प्रशासन हेतु भारत सरकार द्वारा समय–समय पर अनेक समितियों का गठन किया गया तथा उनकी सिफारिशों के आधार पर भूमि सुधार, बंधुआ मजदूर निवारण आदि के कानून बनाकर उन्हें अधिक से अधिक लाभान्वित करने का प्रयास किया गया। जनजातियों को शोषण से बचाने के लिए सहकारी समितियां बनाई गयीं। 1988 ई. की वन नीति जनजातियों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके द्वारा उन्हें वनों के संहारक के स्थान पर वनों के रक्षक के रूप में स्वीकार किया गया, क्योंकि उनका जीवन उसी पर निर्भर है। उन्हें छोटे वन उत्पाद, ईंधन, गृह निर्माण, बाड़े हेतु लकड़ी, चारा आदि ले जाने की भी अनुमति दी गई।

इस प्रकार स्वतंत्र भारत की सरकार ने जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर को उठाने और उन्हें मुख्यधारा में लाने के लिए पर्याप्त प्रयास किए। प्रमुख रूप से शिक्षा में छूट तथा नौकरियों में आरक्षण ने उनके शैक्षणिक और आर्थिक अवसर बढ़ाए हैं। भूमि कानून, जिसके द्वारा एक आदिवासी की भूमि गैर–आदिवासी नहीं खरीद सकता, से उन्हें सुरक्षा मिली है। शताब्दियों तक अधिकार विहीन और दीन–हीन जीवन के बाद

समाज में उनका आत्मसातीकरण संभव हो सका है और अधिकार युक्त वर्ग के साथ बराबरी के स्तर पर रहने का स्वप्न वे देख सके हैं। इस प्रकार संविधान के लक्ष्य को प्राप्त करने में भी एक हद तक सफलता मिली है।

मूल्यांकन

वस्तुतः जनजातीय समाज के विकास का प्रश्न प्रारम्भ से ही विवादों के घेरे में रहा है। इस संबंध में भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। एक दृष्टिकोण विकास के लिए जनजातीय समाज के गैर जनजातीय अथवा तथाकथित सभ्य समाज के साथ पूर्ण विलय को स्वीकार करता है तो दूसरा दृष्टिकोण मानता है कि विकास के साथ–साथ जनजातीय अस्मिता खतरे में पड़ जाती है। 20 वीं शताब्दी के तीसरे दशक में प्रकाशित अपनी पुस्तक **द लॉस ऑफ नर्व** में वेरियन एल्विन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि नगरीय तथा जातीय समुदायों के अधिक निकट सम्पर्क में आने पर जनजातीय समुदाय अपनी पहचान को संकट में डाल देगा। उनके सम्पर्क से उसमें गलत आदतों का विकास होगा और उसका जीवन बदतर हो जाएगा। इसलिए जनजातीय समुदाय को जातीय सभ्य समाज से अलग रखना चाहिए और इस पृथक्करण से ही वे अपनी प्राकृतिक अवस्था में आनन्द से रह सकेंगे।

इस तर्क के पीछे तथ्य यह है कि नगरीय तथा जातीय सभ्यता के साथ लगातार अन्तर्सम्बन्ध के बाद जनजातियां अपनी विशिष्ट पहचान, जो दीर्घकालीन पृथकत्व से ही बनी है, को बनाए नहीं रह सकतीं अतः यह पृथकत्व बनाए रखा जाना चाहिए।

वर्तमान में अधिकतर विद्वान जिस दृष्टिकोण से सहमत हैं वह यह है कि जनजातियों के विकास का प्रयास उनकी संस्कृति और अस्मिता को बिना किसी प्रकार का नुकसान पहुंचाए होना चाहिए।

भारतीय परिदृश्य में जनजातीय विकास की दृष्टि से देखें तो सरकारी तथा गैर सरकारी सभी स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं और जनजातियों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो भी रहे हैं। जनजातियां भी परिवर्तन के लिए इच्छुक हैं तथा विभिन्न योजनाओं में सहयोग प्रदान कर उनके क्रियान्वयन में सक्रिय सहयोग प्रदान कर रही हैं।

परन्तु विचारणीय है कि स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी अपेक्षित जनजातीय विकास नहीं हो पाया है। यद्यपि विधानसभाओं और सरकारी नौकरियों में आरक्षण द्वारा

इन समुदायों को देश की वृहत् सामाजिक–राजनैतिक संरचना में प्रवेश संभव हो सका है, तथापि अभी भी निरक्षरता, अस्वास्थ्य, असमानता, बेरोजगारी, गरीबी तथा आधारभूत सुविधाओं में कमी उन्हें हाशिए की ओर जाने को विवश करती है। उद्देश्यों और भावनाओं की स्पष्टता के बावजूद संसाधनों और अधिसंरचनाओं में कमी तथा कुप्रबंधन के कारण जरुरतमंदों तक विकास की बयार पहुंच ही नहीं पाती। नीतियां उच्च्य स्तर पर निर्मित की जाती हैं और स्थानीय जनजातीय समुदायों की भागीदारी उनमें नहीं होती अतः समस्याओं की गम्भीरता का यथार्थ ज्ञान और विश्लेशण भी नहीं हो पाता। संग्रहालय की वस्तु बनाए जाने के स्थान पर जनजातीय समाज को अपने विशय में नीति बनाने में भागीदारी की कहीं अधिक आवश्यकता है।

विचारणीय तथ्य यह भी है कि विकास जनजातीय समाज के लिए किस हद तक हितकारी रहा है ? हितकारी रहा भी है अथवा नहीं ? डेनियल लर्नर के मत में आधुनिकता का प्रारम्भ परम्पराओं के क्षरण की नींव पर ही होता है। तो क्या विकास और आधुनिकता की आहट जनजातीय समाज की विशिष्ट पारम्परिक पहचान के लिए संकट का संकेत है? भारत में नगरीय और जातीय समुदाय के सम्पर्क तथा विकास के परिणामस्वरूप जनजातीय समाज में दृष्टिगोचर विभिन्न परिवर्तनों पर दृष्टिपात करें तो यह आशंका निर्मूल नहीं।

जनजातीय समाजों की आर्थिक–सामाजिक प्रथाएं प्राकृतिक परिवेश तथा स्थानीय परिस्थितियों से निर्धारित होती थीं। आर्थिक दृष्टि से आदिवासी आत्मनिर्भर थे और अपने जीने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के सामूहिक तथा संतुलित दोहन में विश्वास करते थे। जंगलों के स्वामी और संतान की दुहरी भूमिका में सफल आदिवासियों की अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत कम जटिल थी, जिसमें प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग का बाहुल्य था। परन्तु आज इन जनजातियों का परम्परागत आर्थिक ढांचा पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गया है। अब उनके द्वारा प्रकृति के उपयोग पर विभिन्न प्रतिबंध हैं। पहाड़ और जंगल राज्य के लिए राजस्व के प्रमुख स्रोत हैं। विभिन्न वन नीतियों द्वारा उनके सभी अधिकार ले लिए गए हैं। यद्यपि कुछ छूटें दी गई हैं परन्तु वन अधिकारी और कर्मचारी अपने अधिकारों के बल पर उनका शोषण करते हैं। जीवन यापन और बेहतर जीवन की चाह उन्हें अवैध और आपराधिक गतिविधियों की ओर ले जाती है।

जनजातीय क्षेत्रों में खनिज पदार्थो के उद्भव और उद्योगों की स्थापना के बाद बाह्य जातियों द्वारा जनजातीय समुदायों के शोषण की घटनाएं बढ़ी हैं। जनजातीय

समाज का एक बड़ा वर्ग कर्ज के बोझ से दबा है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी यह कर्ज बढ़ता ही जाता है और महाजनों के पास घरों की अधिकांश वस्तुएँ गिरवी हो जाती हैं। क्रमशः उनके शोषण का शिकार भी यह वर्ग बनता जाता है।

जनजातियों की सामाजिक संरचना भी जातीय समुदायों के सम्पर्क के परिणामस्वरूप संक्रमण के दौर में है। वहां भी जातीय समाजों की भांति स्तरीकरण उभर कर आ रहा है। सरकारी विकास योजनाओं का लाभ अपेक्षाकृत उन्नत जनजातियों ने उठाया और अभी भी उठाते जा रहे हैं। इस प्रकार पहले बाहरी समुदायों के शोषण का शिकार जनजातीय समाज अब अपने ही आत्मीयों के आन्तरिक शोषण का शिकार भी हो रहा है।

परिवार संस्था, विवाह संस्था में परिवर्तनों के साथ–साथ स्त्रियों की स्थिति में भी पर्याप्त परिवर्तन आया है और दुर्भाग्य से यह परिवर्तन नकारात्मक अधिक है। जातीय समाजों के सम्पर्क से स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में पूर्वापेक्षया गिरावट आई है।

वर्तमान में विकास तथा आधुनिकता की एक अभिव्यक्ति पर्यटन भी है। जनजातियों की अनूठी विशेषताओं के कारण पर्यटक उनकी ओर आकर्षित होते हैं। भारत सरकार ने भी जनजातीय क्षेत्रों के आर्थिक विकास हेतु पर्यटन को रणनीति के रूप में सम्मिलित किया है। जनजातियों के रीति–रिवाज, त्यौहार, नृत्य–गीत, परम्परागत वस्त्र और रंग–बिरंगे हस्तशिल्प आदि से अभिभूत पर्यटक इन क्षेत्रों के आय–अर्जन का साधन सिद्ध हो रहे हैं, परन्तु इसके साथ जनजातियों के सांस्कृतिक मूल्यों और रीति–रिवाजों के वाणिज्यीकरण का खतरा भी बढ़ गया है। लोभी व्यापारी, बिचौलिए तथा पर्यटन उद्यमी जनजातियों के हस्त शिल्पों और जमीनों पर कब्जा कर रहे हैं।

जनजातियों का शोषण भी बढ़ा है। पर्यटन विपणन और प्रबंधन से जुड़ी संस्थाएं पर्यटकों के मनोरंजन के नाम पर भूख–प्यास से त्रस्त कलाकारों को प्रस्तुतियों हेतु बाध्य करती हैं और उन्हें अर्थ लाभ भी नाम मात्र का ही होता है। जनजातीय कला की स्वाभाविकता भी प्रभावित हुई है और उसमें व्यावसायिकता तथा अर्थ प्रधानता हावी हो रही है। पर्यटकों के लिए कृत्रिम रूप से रचे गए शिल्पग्राम जैसे परिवेशों में जनजातीय प्रस्तुतियां भावहीन, रसहीन कृत्रिम और बेजान प्रतीत होती हैं।

स्पष्ट रूप से जनजातीय समाज के विकास के मार्ग पर चुनौतियां भी प्रस्तुत हैं और उनसे निपटने के लिए कदम संभालकर कर रखने की आवश्यकता है। मुख्यधारा और विकास से उन्हें जोड़ते समय उनकी विशेष सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं और आर्थिक व्यवस्थाओं का ध्यान रखा जाना जरुरी है। जनजातियों से जुड़ी नीतियों और विकास योजनाओं के निर्माण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। पर्यटन इत्यादि से जुड़े उद्यमियों को भी जनजातीय संस्कृति तथा भावनाओं का सम्मान करना होगा। उनका उद्देश्य पर्यटकों के साथ जनजातीय संस्कृति को साझा करना हो, न कि उसे बेचना। जनजातीय सांस्कृतिक अस्मिता को सहेजते हुए धैर्यपूर्ण और संयमपूर्ण विकास की प्रक्रिया स्वागत योग्य है।

* * * * *

सन्दर्भ

1. प्रकाश चन्द्र मेहता, भारत के आदिवासी, शिवा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, उदयपुर।
2. प्रकाश चन्द्र जैन, मधुसूदन त्रिवेदी, आदिवासी विकास योजनाएँ, शिवा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, उदयपुर।
3. शिव बहाल सिंह, विकास का समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. अनु कुमारी सिंह, जनजातियों पर ग्रामीण विकास का प्रभाव, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
5. हरिशचन्द्र उप्रेती, भारतीय जनजातियां : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
6. नरेश कुमार वैद्य, जनजातीय विकासः मिथक एवं यथार्थ, रावत पब्लिशर्स, जयपुर
7. एम. कुमार, आदिवासी संस्कृति एवं राजनीति, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. Madhuri Chaubey, Status of Deprived Tribal Youth, Shiva Publishers & Distributors, Udaipur.
9. Devendra Thakur, D.N. Thakur (ed.) Tribal Life and Forest, New Delhi.
10. P.C. Mehta, Tribal Development, Shiva Publishers, Udaipur

जनजातीय लोगों के लिए भूमि अधिकार ही मानव अधिकार

*** डॉ0 प्रमोद कुमार अग्रवाल**

जनजातीय लोग विश्व में प्रायः सबसे अधिक अभावी समूह है। अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका के कई देशों में वे बहुसंख्यक हैं, पर वे आज भी वर्तमान पूंजीवादी तन्त्र के कारण शोषित हैं। इसी कारण अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका में प्रायः हिंसक नागरिक आन्दोलनों के समाचार आते रहते हैं। भारत जैसे बड़े देश में जनजातीय लोगों की जनसंख्या कुल आबादी का प्रायः आठ प्रतिशत है पर कई क्षेत्रों में वे बहुसंख्यक हैं। आज इन क्षेत्रों में भी नक्सलवादी हिंसक आन्दोलन जड़ जमा चुका है। इस आन्दोलन के मूल में इनकी जमीन सम्बन्धी अधिकारों की मांगें हैं। वैसे तो भूतकाल में इनका काफी भूमि पर अधिकार था पर शनैः–शनैः आधुनिक सभ्यता ने उन्हें वनवासी बना दिया तथा इनके भूमि सम्बन्धी अधिकार छीन लिए। ये लोग मुख्यतः कृषिजीवी हैं तथा परिश्रमशील हैं। अतः यदि इन्हें जमीन दी जाये तो जनजातीय लोग अपना जीवनयापन कर सकते हैं। **'जीने का अधिकार'** मुख्य मानव अधिकार है। हम यहाँ पर विश्लेषण करेंगे कि किस प्रकार इन्हें जमीन सम्बन्धी अधिकार सुनिश्चित करके इनके मानव अधिकारों को संरक्षण दिया जा सकता है।

वियना घोषणा एवं कार्य–योजना, 1993 के भाग 1 अनुच्छेद–14 के अनुसार व्यापक रुप से घोर गरीबी फैली होने के कारण मानवाधिकारों के पूर्ण और प्रभावकारी उपभोग में बाधा पड़ती है। इसलिए उसका तात्कालिक शमन और अन्ततः उसकी पूर्ण समाप्ति को अंतराष्ट्रीय समुदाय के लिए उच्च प्राथमिकता का विषय बना रहना चाहिए। अनुच्छेद 20 के अनुसार मूलवासी अर्थात् जनजातीय लोगों के मानवाधिकारों और मूल स्वतन्त्राओं का, समानता के स्तर पर और बिना किसी विभेद के, सम्मान किया जाये और साथ ही इन राज्यों को संगठन के महत्व तथा उनकी विविधता को स्वीकार करना चाहिए।

---

* आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त), एवं वरिष्ठ लेखक, दिल्ली

भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची तथा छठी अनुसूची में सन् 1950 से ही जनजातीय क्षेत्रों के लिए विशेष प्रावधान है ताकि वे अपने हितों के लिए स्वशासित इकाइयों, जिला–परिषदों तथा प्रादेशिक परिषदों के माध्यम से स्थानीय निर्णय ले सके। ये स्वशासी इकाइयां खनिजों के लिए भूमि के पट्टे भी दे सकती है। ये प्रावधान आसाम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों में लागू हैं। ये क्षेत्र घटाये या बढ़ाये जा सकते हैं। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति हिदायतउल्ला के अनुसार ये प्रावधान संविधान के भीतर संविधान जैसे हैं तथा इनकी पवित्रता का सम्मान होना चाहिए।

कई जनजातीय समुदाय के लोग वनों पर निर्भर हैं पर अधिकांश कृषि भूमि पर निर्भरशील हैं। वे ही आदिकाल से भूमि स्वामी थे पर विकास के नाम पर तथा उत्तम हथियारों के बल पर उन्हें जंगल में धकेल दिया गया तथा उनकी जमीनों तथा खनिज–सम्पत्ति पर शनैः–शनैः विकास या उदारीकरण के नाम पर धनी–वर्ग का कब्जा होता जा रहा है। सभी देशों में भूमि–सुधारों के माध्यम से उनको जमीन लौटाने के प्रयास किये जा रहे हैं पर उनके पालतू पशुओं के लिए सार्वजनिक चारागाह आरक्षित किये गये पर वे भी शनैः–शनैः उनके समुदाय से बाहर चले गये। कई देशों में जनजातीय लोगों द्वारा अन्य लोगों को भूमि हस्तान्तरण पर विधि द्वारा रोक लगाई गई पर अभाव के कारण तथा पूंजीवादी तन्त्र की शक्ति के सामने यह नहीं रुक सका। उनके समुदाय के नेतष्त्व वर्ग को यह अधिकार दिया गया कि वे उद्योग एवं खनन के लिए अन्य लोगों को भूमि पट्टे पर दे सके पर इस अधिकार का जनजातीय लोगों के हित के संरक्षण की अपेक्षा दुरुपयोग अधिक हुआ। यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी रेड इंडियन्स को जंगलों में धकेल दिया गया ताकि कानून और व्यवस्था के हित में उनमें एवं अन्य अधिवासियों में खूनी संघर्ष को रोका जा सके पर आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे समृद्ध एवं प्रजातान्त्रिक राष्ट्र भी उन्हें अपनी अभूतपूर्व समृद्धि तथा विकास में समान भागीदार बनाने में कतरा रहा है।

कुछ ऐसी अवस्था समृद्ध आस्ट्रेलिया के मौलिक–जनजातीय लोगों की है। उनसे मुख्य ग्रामों तथा नगरों की ज़मीनें छीन ली गई हैं तथा उन्हें आरक्षित वनों में निवास करने के लिए मजबूर कर दिया गया है।

मोजाम्बिक में विदेशी शासन के समय फ्रेलिमों के मूल लोगों को दूर ग्रामों में जाने को मजबूर कर दिया गया। फिर उन्होंने फ्रेलिमो गुरिल्ला संगठन बनाकर 1961 से

1975 तक संघर्ष करके स्वतन्त्रता प्राप्त की। रिनेमों पर सरकार बनने के बाद फेलिमों सरकार कृषकों की समस्या हल करना भूल गई तब रिनेमो संगठन ने कृषक असंतोष को केन्द्र करके संघर्ष जारी रखा। ग्वेटमाला में अपनी ज़मीनें तीन महीने में पंजीकृत न करा सकने के कारण सन् 1879 में जनजातीय लोगों की काफी ज़मीनें अधिगृहीत हो गई तथा बड़े–बड़े कॉफी उत्पादकों को आबंटित कर दी गईं। इन जमीनों को उनसे मुक्त कराने के लिए पचास वर्षों तक गुरुल्लिा संघर्ष चलता रहा। इसी प्रकार कोलंबिया में जमीन पर खेती करने वाले कृषक और बड़े–बड़े भूमि–स्वामियों में संघर्ष हुआ जो 1940–65 से शुरु होकर फिर 1984 में तेज हो गया। अतः जनजातियां अपनी सामूहिक भूमि पर अपना हित कायम रखने के लिए निरन्तर संघर्षरत हैं। पेरु में भारतीयों कृषकों को कृषि उत्पादन से विलग रखने के कारण शाइनिंग पाथ गुरिल्ला आन्दोलन शुरु हुआ। इस कारण वहां से पूंजी ने पलायन किया।

चीन, रुस, फ्रांस की रक्तिम क्रान्तियां कष्षकों के अधिकारों के लिए ही हुईं एवं इन क्रान्तियों के माध्यम से दुनिया में कृषकों एवं खेतिहर श्रमिकों के भूमि पर अधिकारों को सर्वदेशीय तथा सार्वजनिक मान्यता भी प्राप्त हुई यद्यपि इन क्रान्तियों में करोड़ों कृषकों ने बलिदान दिया।

पर यह सर्वमान्य रुप से स्थिर हुआ कि भूमि अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्धन करके ही निर्धन जनजातीय तथा अन्य कृषि श्रमिकों के मानव अधिकारों को सुनिश्चित किया जा सकता है।

भूमि वितरण– मानव अधिकार हेतु पदक्षेपः

जमीन के असमान स्वामित्व को समाप्त करने के लिए ज़मीन का पुनः वितरण मानव अधिकार सुनिश्चित करने के लिए एक आवश्यक कदम है। जिन लोगों के पास जमीनों के बड़े–बड़े क्षेत्र हैं, लोकप्रिय सरकारों ने उनके पास से आवश्यकता से अधिक ज़मीनें सरकारी अधिनियम द्वारा लेकर भूमिहीनों तथा निर्धनों में बांटने के प्रयास किये हैं तथा ये कार्यक्रम पूरे विश्व में चल रहे हैं। यह सर्वविदित है कि भूमिहीनों को यदि जातीय आधार पर चिन्हित किया जाये, तो जनजातीय लोग उनमें सर्वाधिक होंगे। अतः लोकप्रिय सरकारों ने जनजातीय लोगों को भूमि वितरण में अग्राधिकार दिया है तथा भूमि–वितरण के लिए जो सूचियां तैयार की जाती हैं उनके नाम उनमें स्वयं ही ऊपर आ जाते हैं। भारत के सभी राज्यों में विभिन्न भूमि सुधार अधिनियमों में यह प्रावधान है कि जनजातीय लोगों को सरकारी भूमि के वितरण में प्राथमिकता दी जायेगी। उनमें से

अधिकांश अधिनियमों को भारत के संविधान की नवीं अनुसूची का कवच उपलब्ध है तथा इनकी वैधता या संवैधानिकता पर किसी भी कारण प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। यद्यपि हाल में उच्चतम–न्यायालय ने बाद के अधिनियमों की वैधता इस मुद्दे पर देखने के लिए कहा है जहाँ पर इन अधिनियमों से समानता नहीं स्थापित होती है अर्थात् जब तक ये अधिनियम अपने उद्धेश्य में सफल हैं, उच्चतम न्यायालय भी इनका सम्मान करेगा।

भारत जैसा प्रावधान दक्षिण अफ्रीका, अलबानिया, ब्राजील, केन्या, मलावी, नामीबिया, फिलीपाइन्स, जिम्बाबे तथा विभिन्न राष्ट्रमंडलीय देशों में है जहाँ ब्रिटिश शासन का राज्य था एवं भूमिहीनों का ब्रिटिश राज्य में वर्षों तक शोषण होता रहा। केन्या एवं जिम्बाम्बे में विशेषतः विदेशी अंग्रेजों के स्वामित्व वाले बड़ी–बडी जागीरों को अधिग्रहण करके देशीय गरीबों में वितरण किया जा रहा है जबकि ब्राजील, फिलीपाइन्स तथा कोलंबिया में उन जमीनों को लेकर वितरण किया जा रहा है जो या तो खाली पड़ी हैं अथवा जिनका पूर्णरुप से उपयोग नहीं हो रहा है। स्वभावतः जमीन खेती के लिए है तथा उनका उपयोग न होना एक अपराध है। बड़ी–बड़ी जागीरों या भूमि के मालिक स्वयं तो खेती नहीं करते। अतः वे इन जमीनों पर स्वयं ठीक तरह से पैदावर नहीं कर सकते जबकि भूमिहीन या कम जमीन के मालिक सरकारों से जमीन मिलने पर उन पर मन लगाकर परिश्रम करेंगे तथा देश के उत्पादन में वृद्धि करेंगे।

चीनी क्रान्ति का संदेश था कि जो खेती करेगा, वही जमीन का मालिक होगा। जो खेती करेगा, वही फसल काटेगा। रुस तथा फ्रांस की क्रान्तियाँ भी भूमिहानों या जनजातियों को उनके जमीन सम्बन्धी अधिकारों के लिए हुई। ऐसा ही पूर्वी यूरोप के देशों तथा क्यूबा में हुआ। भारत, मेक्सिको, बोलिविया, निकारगुआ, वियतनाम, चीन, क्यूबा में सरकारें इसी जनादेश को लेकर आईं और उन्होंनें इस दिशा में कार्य भी किया। विश्व–बैंक, खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ0 ए0 ओ0) तथा अन्तराष्ट्रीय श्रमिक संगठन (आई0 एल0 ओ0) जनजातीय लोगों के अधिकार साकार करने की दिशा में काफी काम कर रहे हैं ताकि उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी सरकारी सहायता न देनी पड़े। कुछ स्वयं सेवी संगठन यहाँ तक कि कुछ ईसाई संगठन भी इन जनजातीय लोगों को जमीनें उपलब्ध कराने के लिए संलग्न हैं। अफ्रीका के कई देशों में ईसाई धार्मिक संगठनों ने उत्तम काम किया पर बाद में वे भी भूमि–स्वामियों के चंगुल में आ गये। भारत में विनोबा भावे ने करोड़ों एकड़ जमीन दान में लेकर लाखों भूमिहीन जनजातीय एवं तपशीली

जाति के लोगों में वितरण करवाईं पर उनके बाद इतना बड़ा काम और कोई न कर सका। भारत में जनजातीय एवं तपशीली जाति में गरीब बहुसंख्यक हैं तथा आज भी संत विनोबा भावे द्वारा प्राप्त सम्पूर्ण भूमि लोकप्रिय सरकारें भूमिहीनों में वितरित नहीं कर पाई हैं। उनकी पृथक रुप से पहचान करने की आवश्यकता नहीं होती। इनमें भी जनजातीय गरीब लोग भूमि वितरण में प्राथमिकता के पात्र हैं। यही वास्तव में सामाजिक न्याय है। डॉ0 आम्बेडकर ने कहा है कि बिना आर्थिक स्वालम्बन के सामाजिक–न्याय या समता हास्यास्पद है। इससे अधिक उदासीनता का और कौन ज्वलंत उदाहरण हो सकता है? बांग्लादेश में सरकारी प्रयासों से अधिक काम निजेरा कोरि बलास्ट, जी0 एस0 एस0 तथा भूमि सुधार एवं विकास संगठन (ए0 एल0 आर0 डी0) जैसे स्वंयसेवी संगठनों ने किया।

बटाईदारों को सुरक्षा

बड़ी–बड़ी जायदादों पर भूमिहीन जनजातीय तथा तपशील जाति के लोगों द्वारा ही खेती की जाती है। यदि सरकारें उन्हें ये जमीन नहीं उपलब्ध करा सकती तो कम से कम उनके द्वारा इन जमीनों पर उनके काश्तकारी के अधिकारों को तो मान्यता दे ताकि वे इन जमीनों पर मन लगाकर परिश्रम करें जिससे समाज एवं देश के हित में अधिक कृषि उत्पादन हो। इस प्रथा को भारत के कई राज्यों में वैधानिक मान्यता प्राप्त है तथा पश्चिम बंगाल में तो इस प्रकार प्रायः पन्द्रह लाख बर्गादार या बटाईदारों के नाम सरकारी आलेखों में शामिल हो जाने के बाद पश्चिम बंगाल में अभूतपूर्व अन्नोत्पादन में वृद्धि हुई तथा सरकारी भूमि आबंटन तथा बर्गादारों को उनके अधिकार सुनिश्चित करने के बाद पश्चिम बंगाल अन्नोत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया। क्यूबा तथा वियतनाम की अभूतपूर्व प्रगति तथा स्थिरता के भी यही कारक हैं। अतः काश्तकारों, सहमति से दखलदारों तथा सहमति से काबिज रहने वाले लोगों को जमीन जोतने की सुरक्षा प्रदान करना भी जनजातीय एवं अन्य निर्धन लोगों के मानव अधिकारों को सुरक्षित करने की दिशा में महत्वपूर्ण घटक हैं।

उपर्युक्त मुख्य दो पदक्षेपों के अतिरिक्त जनजातीय लोगों के जमीन सम्बन्धी अधिकारों का संवर्द्धन करने के लिए निम्नलिखित पदक्षेप लिये जायें।

(क) जनजातीय लोगों को उनके वन–क्षेत्र में पुराने कब्जों को नियमित किया जाये तथा उन्हें कृषि योग्य जमीन के पट्टे प्रदान किये जाने तथा उनके वन–क्षेत्रों में पत्ते, फल, सूखी लकड़ी बीनने का अधिकार नियमित किया जाये। ऐसा एक प्रयास

भारत में **भस्टॉरफा अधिनियम** के माध्यम से किया जा रहा है पर उसकी प्रगति अभी धीमी है। ऐसा ही एक पदक्षेप जनजातीय लोगों द्वारा मत्स्य क्षेत्रों के कब्जों को नियमित करके किया जाये।

(ख) जनजातीय लोगों के स्थानीय संगठनों को उचित मान्यता प्राप्त हो। यदि उनका संगठन न हो तो स्थानीय पंचायतें या अर्द्धसरकारी संस्थायें जनजातीय लोगों द्वारा खेती, मत्स्य पालन या वन–सरंक्षण को प्रश्रय दें तथा उनके प्रतिनिधियों की आवाज ठीक तरह से सुनें। यदि भू–स्वामी पट्टादार या बटाईदार को खेती नहीं करने देता, तो जनजातीय निर्धन व्यक्ति को पुलिस की सुरक्षा उपलबध हो। जो परिश्रम करना चाहता है, सरकार को उसे अपनी जीविका का उपार्जन करने का उचित अवसर प्रदान करना ही चाहिए।

(ग) छोटे और सीमांत कृषक जो अपनी भूमि को उपजाऊ नहीं बना सकते, उन्हें गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों, ग्रामीण विकास योजनाओं, बैंक ऋणों से जोड़ा जाये जिससे वे अपनी भूमि को सम्यक् उत्पादन योग्य बना सकें। यदि उनके पास कृषि योग्य औजार या मशीनरियों अथवा सिंचाई की सुविधा नहीं हैं तो उन्हें ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध कराई जायें। उन्हें हल, मवेशी, खाद एवं बीज खरीदने के लिए बैंक ऋण उपलब्ध हों।

(घ) भू–अभिलेखों का उचित रख–रखाव तथा आधुनिकीकरण हो तथा जनजातीय लोगों को उनकी जमीनों से सम्बन्धित पासबुक उपलब्ध कराई जाये ताकि कोई भी धोखा देकर उनकी जमीनें न हड़प सके।

(ड़) जनजातीय लोगों की परम्परागत स्थानीय सामुदायिक न्याय–व्यवस्था को छोटे–छोटे दीवानी एवं राजस्व मामलों में मान्यता प्राप्त हो तथा ग्राम–पंचायतों या पंचायत समितियों की न्याय–पंचायतों को भी छोटे–छोटे राजस्व मामले निबटाने का अधिकार प्राप्त हो। जब ये मामले जिला न्यायालयों में जाये, तो उन्हें निःशुल्क विधि–सहायता उपलब्ध कराई जाये। यह विधिक सहायता यदि उन्हें उच्च–न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय तक भी प्राप्त हो तो उत्तम होगा।

(च) जनजातीय लोगों को आवास हेतु भू–आवंटन हो यदि सरकार की ओर से निर्मित आवास प्राप्त हो तो और उत्तम होगा। तब जमीन मालिक उनका शोषण न कर पायेगें तथा उनकी मनमानी शर्तों पर उनसे खेती न करा पायेंगे।

(छ) जनजातीय लोगों द्वारा अभाव में अपनी जमीनें हस्तान्तरित कर देने के कारण वे सदैव भूमिहीन रहते हैं। इन हस्तान्तरणों पर विधि द्वारा रोक लगे तथा इस प्रकार की व्यवस्था हो कि इनके अभाव के कारण बेची गई जमीनें सरकार मुआवजा देकर उन्हें वापिस दिलवायें।

(ज) जनजातीय लोगों में सामाजिक तथा सांस्कृतिक सुधार आवश्यक हैं तभी ये अपनी जमीनों को स्थायी रख पायेंगे। ये लोग अपना काफी समय, ऊर्जा तथा धन अपने त्यौहारों को मनाने में व्यय करते हैं और अंधविश्वासों तथा रुढ़िवादी परम्पराओं से ग्रस्त रहते हैं। आजकल के वैश्वीकरण के युग में उत्सवों को मनाने के लिए काम पर न जाने के कारण ये क्रमशः ऋणग्रस्त होते चले जाते हैं। सामाजिक सुधारों के माध्यम से ही इन्हें जुआ तथा शराब जैसी कुरीतियों से मुक्त किया जा सकता है।

निष्कर्षः

आज वे देश ही प्रगति की दौड़ में आगे हैं जिन्होंने अपने भूमिहीन या छोटे तथा सीमांत कृषकों के हितों पर उचित ध्यान दिया है। जापान में प्रायः 81 प्रतिशत भूमिहीनों को सरकारी जमीनें वितरित की गई हैं जबकि चीन में नब्बे प्रतिशत से अधिक भूमिहीनों को सरकारी जमीनें दी गई हैं। भारत में यह प्रतिशत केवल प्रायः 28 प्रतिशत है। अतः आवश्यक है कि कोई भी जनजातीय व्यक्ति भूमिहीन न रहे तथा यदि आवश्यकता पड़े तो लोकप्रिय सरकारें उनके पड़ोस के क्षेत्रों में जमीनें खरीदकर उन्हें छोटे–छोटे जमीन के टुकड़े 16 डेसीमल तक वितरित करे। यदि काश्तकार दूसरे की जमीन पर खेती करता है, तो उसको काश्तकारी के अधिकार को मान्यता प्राप्त हो ताकि वह शांति तथा निरापदता से अपनी कृषि–जीविका का निर्वाह कर सके।

यह संतोष का विषय है कि खाद्य एवं कृषि संगठन, रोम ने सन् 2012 में अधिकांश देशों की सहमति से विश्व के सभी देशों के लिए स्वैच्छिक दिशा–निर्देश जारी किये जो काश्तकारी का और अधिक जिम्मेदारीपूर्वक प्रबन्धन की दिशा में अभूतपूर्व कदम है। इन स्वैच्छिक दिशा–निर्देशों के अनुसार भूमि, मत्स्य पालन तथा वन–क्षेत्रों में काम करने वाले काश्तकारों, दखलदारों तथा निर्धन काबिज व्यक्तियों के अधिकारों को और उत्तम ढंग से सुरक्षा देने की परम आवश्यकता है। काश्तकारी के अधिकारों के द्वारा ही जनजातीय लोग भूमि तक पहुँच सकते हैं तथा मत्स्य पालन एवं वन–क्षेत्र में अपने परम्परागत अधिकारों को कुछ सीमा तक प्राप्त कर सकते हैं।

मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणा के अनुच्छेद 25 में तथा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 में विहित सम्यक् **'जीने के अधिकार'** तथा स्वास्थ्य, खाद्य एवं आवास सम्बन्धी मानव अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए जनजातीय लोगों को उनके भूमि–सम्बन्धी अधिकारों को सुरक्षित एवं उनका संवर्द्धन करना अत्यावश्यक है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि जनजातीय लोगों के लिए भूमि सम्बन्धी अधिकार ही मानव अधिकारों के पर्याय हैं।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. डॉ0 प्रमोद कुमार अग्रवाल — 1. भूमि एवं गरीबी निवारण, कल्पाज पब्लिकेशन्स, सी–30, सत्यवती नगर, दिल्ली–110052 (प्रकाश्य)

2. अनुवाद राहुल सहाय विसारिया — 2. भूमि सुधारः समस्या एवं समाधान विश्व साहित्य प्रकाशन, 7/129 आवास विकास कॉलोनी योजना–3, झूंसी, इलाहाबाद (उ0 प्र0) वर्ष–2004–2005, कुल पृष्ठ–64

3. मोहम्मद शब्बीर (अंग्रेजी में) : — इक्कीसवीं सदी में मानवाधिकार, रावत पब्लिकेशन्स सं0– 4858/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002 वर्ष–2008 कुल पृष्ठ–418

4. द्विवेदी, डॉ0 के0 एस पॉल, डॉ0 देविका एवं निजामी, जेड, ए0 (सम्पादक) — मानवाधिकार का दर्शन, श्रीमती शक्ति प्रकाशन, रवीन्द्रपुरी कॉलोनी, वाराणसी (उ0 प्र0) किर्स पब्लिकेशन्स, 22 वसुन्धरा इन्क्लेव, दिल्ली–110096 वर्ष–1994, कुल पृष्ठ–281

सरकारी प्रकाशन, अंतरराष्ट्रीय दिशा–निर्देश, पत्रिकाएं आदि

1. भारत का संविधान — विधि एवं न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, वर्ष–1999, कुल पृष्ठ–417

2. मानव अधिकार स्त्रोत ग्रन्थ	राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, वर्ष 1998 कुल पृष्ठ–217
3. वोलंटरी गाईडलाईन्स ऑन दि रिसपॉन्सिबिल गवर्नेन्स ऑफ टेन्योर, ऑफ लैंड, फिसरीज, फोरेस्ट्स इन दि कॉन्टेक्स्ट ऑफ नेशनल फुड सेक्युरिटी	एफ0 ए0 ओ0, यू0 एन0 ओ0, बीएलि, डेले शीर्न, दी काराकाला, रोम इटली, वर्ष 2012, कुल पृष्ठ–41
4. मानव अधिकार–संचायिका भाग–1 मानव अधिकार–नई दिशायें वार्षिक अंक– 1, 2004 मानवाधिकार– नई दिशायें वार्षिक अंक– 10, 2013	राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सी–ब्लॉक, जी0 पी0 ओ0 कॉम्प्लेक्स, आई0 एन0 ए0, नई दिल्ली–110 023, ई–मेल–covdnhrc@nic.in

* * * * *

विकास एवं जनजातियों का भविष्य

*** डॉ. विन्देश्वर पाठक**

भारत भौगोलिक दृष्टिकोण से विशाल देश है। यहाँ का भौगोलिक क्षेत्र एक–दूसरे से भिन्न तथा पृथक् विशेषताओं के कारण अपनी भिन्न पहचान रखते हैं। सामान्यतया इन क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों के रहन–सहन, कर्म, कला, भाषा और साहित्य के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों में भी भिन्नता पाई जाती है। इन्हीं भिन्नताओं में एक वर्ग है आदिवासी समुदाय का, जो देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढाँचे का अभिन्न हिस्सा है। विकासात्मक गतिविधियों एवं समाज की मुख्यधारा से जुटने की इस समुदाय की बड़ी चुनौती है। आदिवासी–समुदाय दुर्गम बीहड़ क्षेत्रों तथा जंगलों में फैला हुआ है। भारत के कई क्षेत्रों में आदिवासी–समाज आज भी विकास की बाट जोह रहा है। कई क्षेत्रों में ये आधुनिक सभ्यता के लाभों से वंचित, प्रगति की दौड़ में पिछड़ा, शिक्षा के वरदान से अछूता, शोषण का शिकार, आधुनिक कृषि एवं उद्योग–धन्धें से अनभिज्ञ तथा सभ्यता के आरम्भिक सोपानों में अवस्थित है। पहाड़ी धरातल, अनुपजाऊ भूमि, अविकसित यातायात एवं सघन वन आदिवासी क्षेत्रों की प्रमुख विशेषता रही है।

आदिवासी–समुदाय की जनसंख्या की दृष्टि से देखा जाए तो विश्व में अफ्रीका के बाद भारत का स्थान आता है। भारत की जनजाति–संख्या, जो 1981 की जनगणना के अनुसार 5.38 करोड़ थी, 1991 में बढ़कर 6.77 करोड़ हो गई। 2001 की जनगणना के अनुसार जम्मू–कश्मीर को छोड़कर जनजातियों की संख्या 8,43,26,240 है, जो कुल जनसंख्या का 8.02 प्रतिशत है। 2011 की जनगणना के अनुसार जनजातियों की संख्या 10,42,81,034 है, जो कुल जनसंख्या का 8.06 प्रतिशत है। इस बड़ी जनसंख्या के अतिरिक्त इनकी प्रमुख विशेषता विविधता है। सम्पूर्ण भारत में सम्प्रति 425 जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें से 75 को आदिम जनजातियों की श्रेणी में रखा गया है।

---

* संस्थापक एवं अध्यक्ष सुलभ इंटरनेशनल, दिल्ली

आदिवासी–समूह इस भू–भाग के प्राचीनतम निवासियों के प्रतिनिधि हैं और उनकी संस्कृतियों को हम देश की विकसित सभ्यता का मूलधन मानते है। विशिष्ट भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण कतिपय समूहों ने भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की प्रमुख धारा से अलग रहकर स्वतन्त्र रूप से अपनी संस्कृतियों का विकास किया। प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से इन समूहों ने समाज के विकास की इस धारा को प्रभावित किया और स्वयं भी थोड़े या अधिक परिणाम से उससे प्रभावित हुए, किन्तु आधुनिक युग तक उन्होंने अपनी संस्कृतियों के अनेक तत्त्वों को जीवित रखकर उनके वैशिष्ट्य को नश्ट नहीं होने दिया। सांस्कृतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करनेवाले आदिवासी–समूहों की संस्कृतियाँ अनेक दृष्टियों से विशेष महत्त्व रखती हैं। भारतीय समाज विविधताओं का संगम है। भारत में आज भी ऐसे आदिवासी समूह हैं, जो सभ्यता के प्रभावों से अपेक्षाकृत दूर जंगलों और पहाड़ों की गोद में जीवन का सरगम छेड़ते हैं। उनका जीवन अब भी प्राचीन परम्पराओं से घिरा हुआ है। उनके रीति–रिवाज, विश्वास और आस्थाएँ सभी विशिष्ट और पड़ोसी समाजों से सर्वथा भिन्न हैं। आधुनिक सभ्यता के साथ उनका परिचय बहुत नया है। फिर भी उसने उनके शान्त और सरल जीवन में अनेक समस्याएँ और विशमताएँ उत्पन्न कर दी है।

जनसंख्या के अनुपात की दृष्टि से आदिवासी–जनसंख्या का प्रतिशत प्रत्येक राज्य में भिन्न हैं, उदाहरणार्थ लक्षद्वीप एवं मिजोरम में आदिवासी लोग उन प्रदेशों की जनसंख्या के 90 प्रतिशत से भी ज्यादा हैं। उत्तर–पूर्व के राज्यों मेघालय, नागालैन्ड की जनसंख्या में यह प्रतिशत 80 से अधिक है। इसके पश्चात् अरुणाचल–प्रदेश, दादर एवं नागर हवेली में भी लगभग दो–तिहाई लोग आदिवासी हैं। असम, मणिपुर, सिक्किम, त्रिपुरा, मध्य–प्रदेश एवं ओडिशा में इनका प्रतिशत 20 से 30 के बीच है। गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र तथा अण्डमान एवं निकोबार द्वीप–समूहों में इनका प्रतिशत 10 के लगभग है। 6 अथवा इससे भी कम प्रतिशत की आदिवासी–जनसंख्या वाले राज्यों में हिमाचल–प्रदेश, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, केरल, तमिलनाडु, गोवा तथा दमन एवं द्वीप आते हैं। इस प्रकार यह कहा जा रहा है कि भारत के प्रायः हर प्रान्त में आदिवासी पाए जाते हैं। यद्यपि उनकी जनसंख्या का प्रतिशत प्रत्येक प्रान्त की जनसंख्या के कुल योग से भिन्न–भिन्न है। इस दृष्टिकोण से विकास एवं जनजातियों का भविष्य एक गम्भीर मुद्दा है।

जनजाति–व्यक्ति जिन प्रमुख समस्याओं का सामना करते हैं, वे हैं –

- उनके पास अलाभकर जमीनें होती हैं, जिससे उनकी पैदावार कम होती है और इस कारण वे सदैव कर्जे में डूबे रहते हैं।
- जनसंख्या का केवल एक छोटा–सा प्रतिशत ही व्यावसायिक गतिविधियों के द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्रों में भाग लेता है।
- आदिवासी क्षेत्रों में जमीन का काफी बड़ा हिस्सा कानून के जरिए गैर–आदिवासियों को हस्तान्तरित कर दिया गया है। आदिवासियों की माँग है कि ये जमीन उन्हें वापस की जाए। दरअसल, आदिवासी जंगल का उपयोग करने और उसके जानवरों का शिकार करने में अधिक स्वतन्त्र थे। जंगल उन्हें न केवल मकान बनाने के लिए सामग्री उपलब्ध कराते हैं, बल्कि उन्हें ईंधन, बीमारियों को ठीक करने के लिए जड़ी–बूटियाँ, फल, जंगली शिकार इत्यादि भी देते हैं। उनका धर्म उन्हें विश्वास दिलाता है कि उनकी कई आत्माएँ; वन देवता और वन देवी पेड़ों और जंगलों में रहती हैं। उनकी लोक–गाथाओं में मानवों और आत्माओं के सम्बन्धों का प्रायः वर्णन मिलता है। इस प्रकार के वन के प्रति भौतिक और भावनात्मक लगाव के कारण आदिवासियों ने सरकार–द्वारा उनके पारम्परिक अधिकारों पर लगाए गए अंकुशों पर गहरी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।
- जनजाति–विकास–कार्यक्रमों ने आदिवासियों के आर्थिक स्तर को उठाने में अधिक सहायता नहीं की। अँगरेजों की नीति ने आदिवासियों का कई प्रकार से भीषण शोषण किया, क्योंकि उसने जमींदारों, भूस्वामियों, साहूकारों, जंगल के ठेकेदारों और आबकारी, राजस्व और पुलिस–अधिकारियों का पक्ष लिया।
- बैंकिंग सुविधएँ आदिवासी क्षेत्रों में इतनी अपर्याप्त हैं कि आदिवासियों को प्रमुखतया साहूकारों पर निर्भर रहना पड़ता है, आदिवासियों की इसलिए यह माँग है कि कृषि–ऋण–राहत–कानून बनाया जाए, जिससे कि उन्हें उनकी गिरवी रखी हुई जमीन वापस मिल सके।
- आदिवासियों में से 90 प्रतिशत खेती करते हैं और उनमें से अधिकतर भूमिहीन हैं और स्थान बदल–बदलकर स्थानान्तरित कृषि करते हैं। इन्हें खेती के नए तरीके अपनाने में मदद करनी चाहिए।
- बेरोजगार और अल्प–रोजगार वाले व्यक्तियों की आय के अनुपूरक स्रोतों का पता लगाने में सहायता की आवश्यकता है, जैस–पशुपालन, मुर्गीपालन, हथकरघा, बुनाई और दस्तकारी क्षेत्रा का विकास।

- अधिकतर आदिवासी बहुत कम जनसंख्या वाली पहाड़ियों पर रहते हैं और आदिवासी–क्षेत्रों में संचार और यातायात बहुत कठिन होते हैं। इसलिए आदिवासियों को कस्बों और शहरों से दूर एकाकी जीवन जीने से रोकने के लिए नई सड़कों का जाल बनाना चाहिए।
- कई आदिवासी–क्षेत्रों में ब्रिटिश–काल में व्यापक धर्म–परिवर्तन हुआ था। यद्यपि मिशनरी आदिवासी–क्षेत्रों में शिक्षा के क्षेत्रा में अग्रणी रहे हैं और उन्होंने अस्पताल भी खोले हैं, परन्तु वे आदिवासियों को अपनी संस्कृति से विमुख करने के भी उत्तरदायी हैं।

  आदिवासियों के लिए पृथक् राज्यों की माँग ने मिजोरम, नागालैन्ड, मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल–प्रदेश और त्रिपुरा में विद्रोह का रूप ग्रहण कर लिया है। इन राज्यों में विदेशी नागरिकों की घुसपैठ, बन्दूकों की तस्करी, मादक पदार्थों का व्यापार और तस्करी बहुत भीषण समस्याएँ हैं।

संक्षेप में, आदिवासियों की प्रमुख समस्याएँ हैं निर्धनता, ट्टण, निरक्षरता, बंधुआपन, बीमारी और बेरोजगारी।

जनजातीय अशान्ति और असन्तोष के प्रमुख कारण हैं –

- अकर्मण्यता, उदासीनता और प्रशासकों तथा अफसरों में जनजाति लोगों की शिकायतों को दूर करने में सहानुभूति का अभाव।
- जंगल के कानूनों और नियमों का कठोरपन।
- जनजातीय लोगों की जमीनों को अजनजाति के व्यक्तियों के कब्जे में जाने की रोक के लिए कोई कानून नहीं होता।
- ऋण की सुविधाओं का अभाव।
- जनजातीय लोगों के पुनर्वास के लिए सरकारी कार्यवाही में अकुशलता।
- जनजातीय समस्याओं को हल करने में राजनीतिक अभिजनों में अभिरुचि और सक्रियता का अभाव।
- उच्चस्तरीय समितियों की सिफारिशों को कार्यान्वित करने में विलम्ब।
- सुधारक उपायों की कार्यान्विति में पक्षपात।

संक्षेप में, जनजातीय–अशान्ति के कारणों को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कहा जा सकता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही आदिवासी–विकास का मुद्दा गहन विवाद एवं चिन्तन का विषय रहा है। जनजातीय समस्याओं के निराकरण एवं जनजातीय कल्याण के लिए पृथक्करण की नीति को समर्थन दिया गया। इस समर्थन के पीछे जनजातीय जीवन की शान्ति एवं उनके सामंजस्य को अक्षुण्ण बनाए रखना है एवं उनको स्वयं उनके ढंग से विकसित होने का अवसर प्रदान करना है

स्वतन्त्रता के पश्चात् संविधान–सभा ने ए.वी. ठक्कर की अध्यक्षता में एक उप–समिति का गठन किया जिसकी सिफारिशों के बाद जनजाति क्षेत्रों का विकास समस्त भारतीयों के विकास का एक अभिन्न अंग बन गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद धर्म–निरपेक्ष एवं सामंतवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया गया है तथा पृथक्करण की नीति को त्याग कर आत्मसातीकरण की नीति को अपनाया गया। भारत सरकार में आदिवासी लोग और आदिवासी संस्कृतियों के प्रति नेहरू के पाँच सिद्धान्त आदिवासी–विकास के सम्बद्ध में अपनाया गया, जिसे पंचशील के नाम से जाना जाता है

1. लोगों को उनकी अंतर्निहित क्षमताओं के अनुरूप विकसित होने देने चाहिए तथा उन पर हमें किसी भी विचार को थोपने की प्रवृत्ति को टालना चाहिए। हमें हर तरीके से उनकी कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए।
2. आदिवासी समुदायों के भूमि एवं वन सम्बन्धी अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए।
3. प्रशासन तथा विकास कार्यों के संचालन में उन लोगों की भागीदारी को बढ़ाना चाहिए।
4. इन क्षेत्रों में न तो अति प्रशासन व्यवस्था पनपने देनी चाहिए, न ही अनेक प्रकार की योजनाओं के कुचक्र में उन्हें उलझाना चाहिए।
5. हमें अपने विकास प्रयासों के परिणामों का मूल्यांकन मात्र समंकों या खर्च की गई धनराशि के आधार पर नहीं करना चाहिए। वास्तविक सफलताओं को जमीनी स्तर पर देखा जाना चाहिए।

स्पष्ट है कि आदिवासी विकास के पंचशील सिद्धांत विकास के स्थायी एवं मार्गदर्शी सिद्वांत हैं और आज भी आदिवासी विकासात्मक योजनाओं को लागू करते समय इन सिद्धांतों को ध्यान में रखने को अत्यंत आवश्यकता है।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के बाद सरकार ने आदिवासी–विकास की ओर प्राथमिकता के आधार पर कार्य करने की नीति अपनाई। संविधन–निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर एवं पिछड़े वर्गों को विकास के विशेष अवसर प्रदान किए जाएँ ताकि ये वर्ग देश की मुख्यधारा में अपने आपको समाहित कर सके तथा इनकी जीवन–पद्धति कम–से–कम औसत ग्रामीण स्तर तक पहुँच जाए। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् जनजातीय विकास हेतु देश में किए गए प्रयासों को अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है

1. रक्षात्मक व्यवस्था
2. प्रशासनिक व्यवस्था
3. विकासात्मक गतिविधियाँ

रक्षात्मक संवैधानिक प्रावधन आदिवासी समाजों को अन्य समाजों की अपेक्षा विशेष सुरक्षा प्रदान करते हैं। ये निम्नलिखित हैं

1. अनुच्छेद 15 में अनुसूचित जनजातियों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभाव को वर्जित किया गया है। इसके खण्ड 4 के अन्तर्गत अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के विकास के लिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान है।
2. अनुच्छेद 16 में दी गई अवसर की समानता के बावजदू इसके खण्ड 4 में राज्य पिछड़े एवं कमजोर तबकों के लोगों के लिए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था लागू कर सकता है।
3. अनुच्छेद 23 द्वारा बेगार–प्रथा तथा बालश्रम को प्रतिबन्धित किया गया है। बाद में संसद् द्वारा 1976 में कानून बनाकर बंधुआ मजदूरी को प्रतिबन्धित कर दिया गया है।
4. अनुच्छेद 29 आदिवासी–समुदाय को अपनी भाशा, बोली तथा संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है।
5. अनुच्छेद 46 आदिवासियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की सुरक्षा हेतु राज्य से विशेष व्यवस्था का आग्रह करता है।
6. अनुच्छेद 164 बिहार, ओडिशा, छत्तीसगढ़ तथा मध्य–प्रदेश राज्यों में आदिवासियों के हितों तथा कल्याण की देख–रेख के लिए एक जनजातीय कल्याण–मन्त्री की नियुक्ति का प्रावधन करता है।

7. अनुच्छेद 330, 332 तथा 334 के द्वारा संसद् एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।
8. अनुच्छेद 335 के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए शासकीय सेवा में 7.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए। इसके साथ–साथ आयु–सीमा में छूट, अर्हता मानदण्ड में छूट, पदोन्नति में छूट तथा अन्य तकनीकी स्तरों पर छूट के प्रावधान किए गए।
9. अनुच्छेद 338 में अनूसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण–हेतु राष्ट्रपति द्वारा आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है, जिसका दायित्व संविधान–द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रदत्त सुरक्षाओं का मूल्यांकन करना, जनजातीय लोगों और राज्य–सरकारों से सम्पर्क बनाए रखना, उनके कार्यक्रमों की जाँच करना तथा योजनाओं के लिए मार्गदर्शन देना आदि है। यह आयुक्त प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन भी भेजता है जिसमें अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के सम्बन्ध में उपलब्धियों एवं कमियों को वर्णित किया जाता है।
10. अनुच्छेद 339 संघ सरकार को अधिसूचित क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासियों के प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है।
11. अनुच्छेद 340 जनजातियों को सरकारी शिक्षण–संस्थानों में नामांकन तथा अध्ययन के लिए आरक्षण का उपबन्ध करता है।
12. अनुच्छेद 342 के माध्यम से राष्ट्रपति जनजातियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्रदान करता है।

जनजातीय समुदाय शेष समाज से कटा हुआ तथा सदियों से पिछड़ा है। साथ ही इस समुदाय की अपनी पृथक् संस्कृति, परम्परा एवं भिन्न पहचान रही है। इसी कारण भारतीय संविधान में जनजातियों के लिए शेष समाज से भिन्न प्रशासनिक व्यवस्था का प्रावधान संविधान की पाँचवीं एवं छठी अनुसूची में किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद 244 तथा (1) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का प्रावधान है। संविधन की पाँचवीं अनुसूची के अनुसार भारत के राष्ट्रपति किसी भी राज्य का कोई क्षेत्रा अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकते हैं। ऐसे घोषित क्षेत्र निम्न नौ राज्यों में हैं – आन्ध्र–प्रदेश, झारखण्ड, गुजरात, हिमाचल–प्रदेश, मध्य–प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान और छत्तीसगढ़। इन अनुसूचित क्षेत्रों के गठन के पीछे मुख्यतः दो उद्देश्य रहे हैं पहला, लघु प्रक्रिया तथा बिना बाधा के आदिवासियों की

सहायता करना तथा दूसरा, अनुसूचित क्षेत्रों को विकास के पथ पर लाना एवं जनजातियों के हितों की रक्षा करना।

गौरतलब है कि घोषित अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य के राज्यपाल को विशेष और व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं। राज्यपाल ही यह तय करता है कि संसद् या विधन–मण्डलों द्वारा पारित कानून इन क्षेत्रों में लागू होंगे या नहीं। राज्यपाल इन क्षेत्रों में शान्ति बनाए रखने एवं प्रशासन के भली–भाँति संचालन के लिए नियम भी बना सकते हैं। भूमि हस्तान्तरण को रोकना, भूमि आवँटन को नियन्त्रित करना, साहूकारों एवं व्यापारियों की गतिविधियों को रोकना आदि ऐसे विशय है, जिनपर राज्यपाल कारवाई कर सकते हैं।

पाँचवीं अनुसूची के खण्ड 4 में अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रत्येक राज्य में आदिवासी–सलाहकार–समिति के गठन का प्रावधान है। राष्ट्रपति के निर्देश पर अन्य राज्यों में भी, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं, आदिवासी–सलाहकार–समिति के गठन का प्रावधान है। तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल ऐसे ही दो राज्य हैं, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं होने के बावजूद वहाँ आदिवासी–सलाहकार–समितियाँ गठित हैं। आदिवासी–सलाहकार–समिति में अधिक–से– अधिक 20 सदस्य हो सकते हैं। इस समिति का यह दायित्व है कि यह आदिवासी–कल्याण तथा प्रगति के सम्बन्ध में राज्यपाल को सलाह दे।

पाँचवीं अनुसूची के खण्ड तीन में यह प्रावधान है कि राज्यपाल आदिवासी–सलाहकार–समिति की गतिविधियों से संबंधित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के पास भेजता है।

आदिवासी क्षेत्र एक अर्थ में तो अनुसूचित क्षेत्र है, किन्तु संवैधानिक भाषा में आदिवासी क्षेत्र वे हैं, जो संविधन की छठी अनुसूची में घोषित किए गए हैं। ये क्षेत्रों हैं असम, मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा। इन राज्यों में आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन–हेतु स्वायत्त जिला एवं क्षेत्रीय परिशदों का गठन किया जाता है। प्रत्येक स्वायत्त जिले के प्रशासन के लिए एक–एक जिला परिषद् की स्थापना की जाती है। जिला–परिषद् के सदस्यों की संख्या अधिक–से–अधिक 30 होती है, जिनमें से चार को राज्यपाल मनोनीत करता है। शेष सदस्यों का चयन वयस्क मताधिकार के आधर पर किया जाता है। राज्यपाल चाहे तो यह सभी चुनाव–क्षेत्रों को आदिवासियों के लिए आरक्षित कर गैर–आदिवासी लोगों को चुनावी प्रतिनिधि–पद से वंचित कर सकता है।

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् देश में आर्थिक एवं सामाजिक विकास में गति लाने के लिए प्रशासन की ओर से पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से वृहत् उद्देश्य एवं समयपरक कल्याणकारी योजनाएँ लागू की गईं। शासन के स्तर पर संविधान में उल्लिखित विविध प्रावधानों की पूर्ति के हेतु विभिन्न समितियों/आयोगों/अध्ययन–दलों का गठन किया गया। आदिजातियों के विकास को विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के संदर्भ में देखा जाए तो देश के योजनागत विकास के प्रारम्भ से ही आदिम जातियों के कल्याण एंव विकास को उच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। इन पंचवर्षीय योजनाओं में आदिवासी समुदायों के कल्याणार्थ समुचित धनराशि की व्यवस्था की गई। 1951 से 2014 तक देश में 12 पंचवर्शीय तथा पाँच वार्षिक योजनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं। इन पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय संदर्भ में जो महत्त्वपूर्ण विकासात्मक कार्यक्रम एवं नीतिगत परिवर्तन किए गए, उनका संक्षेप नीचे प्रस्तुत है

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–56) में आधरभूत रूप से यह बात कही गई कि सामान्य विकास–कार्यक्रमों की रचना पिछड़े वर्गों के घनीभूत विकास की पृष्ठभूमि में तैयार किए जाने चाहिए। साथ ही अनुसूचित जनजातियों के लिए अतिरिक्त और गहन विकास हेतु विशेष उपबन्धों का प्रयोग किया जाना चाहिए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में मुख्यतः अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को समझते हुए नीतियाँ बनाई गईं। वास्तव में यह आयोजना देश के प्रथम प्रधान मन्त्री पं0 जवाहरलाल नेहरू–द्वारा प्रतिपादित पंचशील के सिद्धान्तों की दार्शनिक प्रणाली पर आधरित थी। इस योजना के अन्तर्गत देश में सर्वप्रथम 43 बहुउद्देशीय आदिवासी–विकासखण्ड स्थापित किए गए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61) में यह वादा किया गया कि कमजोर वर्गों को आर्थिक विकास का लाभ अधिक–से–अधिक मिले, जिससे समाज की विषमता को कम किया जा सके। आदिम जातियों के सन्दर्भ में कहा गया कि कल्याण–कार्यक्रमों का निर्धारण आदि जातियों की संस्कृति और परम्परा को दृष्टिगत रखते हुए उनकी सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक समस्याओं की पृष्ठभूमि में होना चाहिए। यह पं0 जवाहरलाल नेहरू के आदिमजाति–विकास के पंचशील के अनुरूप था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की एक विशिष्ट उपलब्धि यह रही कि 43 विशिष्ट बहुउद्देश्यीय आदिवासी–विकासखण्ड बनाने का मार्ग–प्रशस्त हुआ। बाद में ये आदिवासी–विकासखण्ड कहलाए। ये 25,000 लोगों के लिए नियोजित किए गए, जबकि सामान्य विकासखण्डों

में यह संख्या 65,000 थी। इसके हेतु 15 लाख की केन्द्रीय सहायता प्रत्येक विकासखण्ड को प्रदान की गई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में विशिष्ट बहुउद्देशीय आदिवासी–विकासखण्डों तथा आदिवासी–विकास के अन्य कार्यक्रमों का मूल्यांकन राष्ट्रीय सन्दर्भ में वेरियर एल्विन एवं ढेबर–आयोग–द्वारा किया गया। एल्विन–समिति ने अपने अध्ययन में इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि 10 वर्षों में इतने ज्यादा बहुमुखी कार्यक्रम चलाए गए कि स्वयं अधिकारी भ्रमित हो गए तथा यह निश्चित नहीं कर पाए कि कब क्या करें, कौन–सा कार्यक्रम पहले चलाए? साथ ही 'योजनाबद्ध बजट–पद्धति' के कारण एक योजना का धन दूसरी योजना पर खर्च नहीं कर पाए, इस कारण भी धन का अधिक अपव्यय हुआ। एल्विन समिति के साथ ही ढेबर–आयोग (1960–61) ने आदिवासियों में व्याप्त ऋणग्रस्तता, निरक्षरता, आदिवासियों की सुरक्षा और विकास–हेतु विशिष्ट सुझाव दिए।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66) में इस बात की वकालत की गई कि अवसर की समानता स्थापित की जाए तथा आर्थिक शक्तियों का इस तरह से वितरण हो, जिससे आय एवं पूँजी की असमानता को कम किया जा सके। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969–74) ने यह उद्देश्य निर्धरित किया कि ऐसे त्वरित उपाय किए जाएँ, जिससे लोगों का जीवन–स्तर ऊपर उठ सके तथा ऐसे उपाय किए जाएँ, जिनसे समानता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित किया जा सके। तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में एल्विन तथा ढेबर–आयोग के सुझावों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने विशिष्ट बहुमुखी आदिवासी–विकासखण्ड योजना को बदलकर आदिवासी–विकासखण्ड नामक योजना प्रारम्भ की। 1968 में आदिवासी–विकासात्मक कार्यों का निरीक्षण करने के लिए योजना–आयोग, भारत–सरकार–द्वारा शिलू आओ की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। समिति ने अपने अध्ययन में स्पष्ट रूप से कहा कि आदिवासी–विकासखण्ड की नीति कुछ ही क्षेत्रों में सपफल हो पाई है तथा योजना का अधिकांश लाभ पढ़े–लिखे आदिवासियों ने उठाया है। इस समिति का मत था कि आदिवासी–विकास की नीतियों में लचीलापन लाना आवश्यक है तथा विकास के तीव्र परिणाम पाने के लिए 'क्षेत्र –दृष्टिकोण' अपनाना चाहिए।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनान्तर्गत लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिए कृषि–मन्त्रालय, भारत–सरकार–द्वारा 'जनजातीय विकास–अभिकरण' नामक छह परियोजनाएँ प्रारम्भ की गईं, जिनमें से दो का लाभ मध्य–प्रदेश को मिला। यह आशा की गई थी कि जनजातीय अभिकरण सामाजिक सेवा के साथ–साथ आर्थिक विकास को भी गति

प्रदान करेगा, लेकिन वास्तविकता में यह केवल एक कृषि–योजना बनकर रह गई और अधेसंरचनात्मक विकास में कोई विशेष सपफलता प्राप्त नहीं की जा सकी।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–78) आदिमजाति–विकास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही। इसमें आदिवासी उप–योजना का सूत्रपात हुआ, जो आदिमजातियों को विकास के लाभ सीधे पहुँचाने की दषेिट से बनाई गई। आदिवासी–उप–योजना ने राज्य एवं केन्द्र के वित्तीय संसाधनों को जनसंख्या के अनुपात के आधर पर बाँटा, जिसमें आदिवासी–विकास एवं कल्याण को केन्द्र में रखा गया। सम्प्रति आदिवासी–उप–योजना–नीति 194 समेकित आदिवासी–विकास– परियोजनाओं, 259 आदिवासी बहुल सवंर्द्धित क्षेत्र विकास–स्थलों, 82 संकुलों एवं 75 आदिम आदिवासी–समूहों के रहवासी स्थलों में लागू की गई है। इन क्षेत्रों में धन का प्रवाह बढ़ते क्रम में रहा है। पाँचवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करते समय सम्पूर्ण आदिवासी–विकास के प्रश्नों मुख्यतः तीन दृष्टिकोणों से देखा गया। प्रथम, आदिवासी–केन्द्रीकरण वाले क्षेत्र, द्वितीय, बिखरी हुई आदिवासी जातियाँ और तृतीय, आदिम जनजातीय समूह। इन तीनों ही समूहों की पहचान कर पृथक्–पृथक् विकास की नीतियाँ तथा परियोजनाएँ बनाई गईं। आदिवासी उपयोजनान्तर्गत विकास की जो रणनीति बनाई गई, कमोबेश उसी के अनुरूप अब–तक देश के आदिवासी–क्षेत्रों में विकासात्मक गतिविधियों का संचालन किया जा रहा है।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) ने वित्त के अधिकतम हस्तान्तरण की बात कहीं, जिससे कम–से–कम 50 प्रतिशत आदिवासी–परिवारों को सहायता प्रदान कर गरीबी की रेखा से ऊपर लाया जा सके। इसमें इस बात पर जोर था कि परिवार–मूलक आर्थिक योजनाएँ चलाई जाएँ, बजाय इसके कि अधोसंरचनात्मक विकास की योजनाओं को लागू किया जाए।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90) में आदिवासी–विकास–हेतु आवण्टित किए जानेवाले वित्त में नियामक वृद्धि की गई। इसमें अधोसंरचनात्मक विकास एवं क्षेत्र–विस्तार पर जोर था। विशेष बल शिक्षा के विकास पर दिया गया। आर्थिक विकास–हेतु दो राष्ट्रीय संस्थानों की स्थापना की गई, जिसमें–(1) आदिवासी सहकारी विपणन–विकास–संघ (ट्रायफेड) एवं (2) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास–निगम (1989) सम्मिलित है।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) में आदिवासी विकास सामान्य जन–विकास के स्तर के मध्य की दूरी के बीच सेतु बनाने का प्रयास किया गया, शताब्दी की समाप्ति तक ये पिछड़े वर्ग समाज की मुख्यधरा के स्तर को प्राप्त कर सके। इसमें इस बात पर बल दिया गया कि न सिर्फ शोषण की समाप्ति हो, वरन् यह भी सुनिश्चित किया जाए कि अधिकारों के वंचन, भू–अलगाव, न्यूनतम मजदूरी का भुगतान न होना एवं लघु वनोपज के संग्रहण के अधिकार से आदिवासियों को दूर न रखा जाए। सामाजिक–आर्थिक उन्नयन पर यह जोर यथावत् बना रहा। नब्बे के दशक के प्रारम्भ में आदिवासी उप–योजना की समीक्षा ने यह स्पष्ट किया कि बदलाव तो हुआ है, लेकिन यह वित्तीय निदेश के अनुपात में कम है।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) में इस बात पर बल दिया गया कि आदिवासी लोगों का विकास सशक्तीकरण के माध्यम से होना चाहिए, जिसमें उन्हें अपने अधिकारों के प्रयोग हेतु उचित वातावरण मिले एवं समाज के अन्य लोगों की तरह वे अपने आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा का उपयोग कर सकें। इसके हेतु तीन आधरभूत बातें कहीं गईं–(1) सामाजिक सशक्तीकरण, (2) आर्थिक प्रगति एवं (3) सामाजिक न्याय। इस दिशा में प्रयास करते हुए स्वतन्त्रा आदिवासी–कार्य मन्त्रालय की स्थापना अक्टूबर 1999 में केन्द्र में एक कैबिनेट स्तर के मन्त्राी के अधीन की गई।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) में यह कहा गया कि आदिवासी–समाज न केवल गरीब, साधनहीन एवं अशिक्षित है, वरन् सामान्य समाज के मुकाबले उनकी अक्षमता इस बात में भी उजागर होती है कि यह अपनी बात को पूर्ण क्षमता से रखने एवं एकीकरण की प्रक्रिया से सामंजस्य बनाने में भी असमर्थ पाते हैं। इस कारण इनमें मुख्यधरा की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में यह स्थान नहीं मिल पाया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से पृथक्करण के कारण उनसे दूर रही है।

योजना के क्रियान्वयन के पश्चात् इस समुदाय के उत्थान के लिए राष्ट्रीय स्तर पर जो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कदम उठाए गए, उनमें 1985 में 20 सूत्राीय गरीबी–उन्मूलन–कार्यक्रम तथा आदिवासी–क्षेत्रों में अधोसंरचनात्मक सुविधाओं का विस्तार करना, 1987 में आदिवासी–सहकारी विपणन–विकास–महासंघ एवं 1989 में अनुसूचित जाति एवं जनजाति वित्त एवं विकास–निगम का गठन, 1999 में स्वतन्त्रा आदिमजाति–कार्य–मन्त्रालय का गठन तथा 2001 में स्वतन्त्रा अनुसूचित जनजाति वित्त एवं पंचवर्षीय तथा वार्षिक योजनाओं अर्थात् नियोजन–काल के बाद जनजातीय

समुदाय की समग्र स्थिति का मूल्यांकन करने, पूर्व में क्रियान्वित आदिवासी विकासात्मक कार्यों तथा नीतियों की समीक्षा करने एवं भविष्य की रणनीतियों पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से योजना–आयोग, भारत–सरकार–द्वारा श्यामाचरण दुबे एवं ललिता प्रसाद विद्यार्थी की अध्यक्षता में दो समितियों का गठन किया गया। इन दोनों समितियों ने अपने अध्ययन में आदिवासी–विकासात्मक गतिविधियों की विफलता को स्वीकार करते हुए इसके मूल कारणों को स्पष्ट किया। इसमें पहला, आदिवासी–विकास के लिए आवण्टित राशि का उपयोग समाज के अन्य वर्गों के अन्य कार्यक्रमों पर खर्च किया जाना; दूसरा, आदिवासी–विकासखण्ड से बाहर की आदिजातियों को विकास का लाभ न मिलना, तीसरा, योजनाओं में आदिवासियों की भागीदारी का न होना, चौथा, पंचवर्षीय योजनाओं में आदिवासी–विकास पर आवण्टित राशि के प्रतिशत में कमी आना तथा पाँचवाँ, सभी क्षेत्रों की परिस्थितियों को जाने बिना एक ही प्रकार की नीतियों को लागू करना मुख्य था।

इन सभी कारणों के चलते योजना–आयोग ने आदिवासी–योजना की अवधारणा को लागू किया तथा विकास–योजनाओं को सरलतम ढंग से प्रस्तुत किया, जिससे आदिवासी उसे ग्रहण कर, उससे जुड़ सकें तथा विकासात्मक कार्यों का लाभ सीधे आदिवासियों को ही मिल सके।

आर्थिक विकास के साथ–साथ आदिवासी–समुदाय को राष्ट्र की लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के साथ जोड़ने सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अधिनियम बने। पहला, पी.वी. नरसिम्हा राव सरकार ने राजीव गाँधी–सरकार–द्वारा तैयार पंचायती राज–संस्थाओं से सम्बद्धत विधेयक को संशोधित कर दिसम्बर, 1992 में पारित करवाया, जिसे 73वाँ संविधान संशोधन के नाम से जाना जाता है। यह अधिनियम 24 अप्रैल, 1993 से सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया गया। इस अधिनियम के द्वारा वर्शों से भंग पड़ी पंचायतों को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ तथा पंचायती राज–व्यवस्था में आदिवासियों की भागीदारी को बढ़ाने, उनमें नेतृत्व–क्षमता विकसित करने तथा महिलाओं को पंचायत– व्यवस्था में सहभागी बनाने के हेतु स्थान सुनिश्चित किए गए।

दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भूरिया–समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर पंचायत ;अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार अधिनियम, 1996 का पारित होना है। इस अधिनियम के द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों में रहनेवाले जनजातीय समुदायों के लोगों को उनके सामाजिक जीवनवृत्त और सांस्कृतिक स्वरूप को ध्यान में रखते हुए ग्रामसभा को मौलिक अधिकार

दिए गए तथा यह आशा व्यक्त की गई कि इससे जनजातीय समाज की परम्परागत स्वशासी व्यवस्था और आधुनिक औपचारिक संस्थाओं के बीच पनपी विसंगतियाँ समाप्त होंगी, जो जनजातीय समाज में व्याप्त असन्तोष और भड़कते विद्रोह का मूल कारण रही है।

इस अधिनियम का क्रियान्वयन देश के 9 राज्यों–आन्ध्र–प्रदेश, झारखण्ड, गुजरात, राजस्थान, मध्य–प्रदेश, छत्तीसगढ़, हिमाचल–प्रदेश, ओडिशा तथा महाराष्ट्र में हो चुकी है। इसके अतिरिक्त हाल ही में वन–अधिनियम, 2006 क्रियान्वित किया गया है, जिसके द्वारा अनुसूचित जनजातियों को परम्परागत वन–भूमि पर पुनः अधिकार दिया गया है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय सन्दर्भ में इन 67 वर्षों में आदिवासी विकास के लिए जो महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक कदम उठाए गए, उनमें 1956 में आदिवासी– विकास–प्रक्रिया के पाँच मार्गदर्शी सिद्धान्त पंचशील का अपनाना, 1958 में बहुउद्देशीय जनजातीय विकासखण्ड, 1961 में आदिवासी–विकासखण्ड, 1969 में जनजातीय विकास– अभिकरण, 1974 में आदिवासी–उप–योजना, 1987 में ट्रायफेड का गठन, 1993 में 73वाँ संविधन–संशोधन, 1996 में पंचायत ;अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार– अधिनियम, 1999 में पृथक् आदिवासी–कार्य–मन्त्रालय का गठन, 2001 राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास–निगम की स्थापना, 2004 में पृथक् अनुसूचित जनजाति–आयोग की स्थापना तथा वन–अधिनियम, 2006 प्रमुख हैं। इन प्रावधानों के अतिरिक्त प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में आदिवासी–विकास के लिए कई सामुदायिक एवं व्यक्तिगत लाभ की योजनाएँ भी संचालित की गईं।

विकासात्मक गतिविधियों के साथ–साथ मूल्यांकन एवं समीक्षा, विकास–प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त हैं। इसके हेतु समय–समय पर भारत–सरकार–द्वारा आदिवासी–समस्याओं, प्रशासन तथा विकासात्मक गतिविधियों की समीक्षा के हेतु कई समितियों का गठन भी किया गया है। इन समितियों में प्रमुख हैं रेणुका राय–समिति (1959), वेरियर एल्विन–समिति (1980), यू. एन. ढेबर–समिति (1961), शिलू आओ–समिति (1986–1969), बाबा–समिति (1971), श्यामाचरण दुबे–समिति (1972), अप्पू–समिति (1971) एवं दिलीप सिंह भूरिया–समिति (1995)। इनके अतिरिक्त भी आदिवासी–क्षेत्रों में प्रशासनिक सुधरों हेतु कई राज्य–स्तरीय समितियाँ एवं उपसमितियाँ गठित की गईं। आदिमजातियों के विकास की सरकारी प्रतिबद्धता स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही दिखाई देती है।

अनेक समाजसेवी संस्थाओं ने भी आदिवासियों की गिरी हुई दशा पर चिन्ता व्यक्त की और उनके उत्थान के लिए अपनी रीति–नीति के अनुसार प्रयत्न किए। इन संस्थाओं में भारतीय आदिमजाति–सेवक–संघ, नई दिल्ली, आन्ध्र–प्रदेश आदिमजाति–सेवक–संघ, हैदराबाद, रामकृष्ण मिशन, केंद्रीय समाज–कल्याण–बोर्ड, ठक्कर बापा–आश्रम, भारतीय रेडक्रॉस एवं ईसाई मिशनरियाँ इत्यादि प्रमुख हैं। महात्मा गाँधी अँगरेजों से लड़ाई लड़ने के हेतु देश के गरीब और पिछड़े वर्ग का सहयोग प्राप्त करना और उनकी कमजोर आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को सुधरना चाहते थे। अतः उन्होंने उन्हें राजनीतिक न्याय दिलाने के लिए भरसक प्रयत्न किए। ज्योति रॉय फुले तथा ठक्कर बापा ने भी देश के पिछड़े वर्ग की दशा सुधरने का प्रयत्न किया। ठक्कर बापा जनजातियों को आधुनिक सुविधाएँ दिलाकर उन्हें गरीबी, अज्ञान, बीमारी एवं कुप्रशासन से मुक्ति दिलाना चाहते थे। इस प्रकार स्वयंसेवी संस्थाओं का उद्देश्य जनजातियों का अस्तित्व बनाए रखकर उन्हें अभावों से मुक्ति दिलाना था।

आदिवासियों की दयनीय स्थिति में सुधार के लिए कई धर्मिक संस्थाओं ने भी प्रयत्न किए हैं, उनमें ईसाई मिशनरियाँ एवं हिन्दुओं के कुछ धार्मिक समुदाय, जैसे आर्य–समाज आदि प्रमुख हैं। ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों को भौतिक सुख–सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया।

ऊपर जनजातियों की समस्याओं का उल्लेख किया गया है और साथ ही उन प्रयत्नों की भी चर्चा की गई है, जो अब–तक उन समस्याओं के समाधान लिए किए गए हैं, फिर भी उनकी समस्याओं का समाधन पूरी तरह नहीं हो पाया है। यहाँ उनकी समस्याओं के समाधान के कुछ लिए सुझावों का उल्लेख करेंगे

आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए आदिवासी–परिवारों को कृषि के लिए पर्याप्त भूमि दी जाए। उन्हें कृषि के आधुनिक तरीकों से परिचित कराया जाए। स्थानान्तरित खेती पर रोक लगाई जाए। उन्हें बैल, बीज एवं नवीन यन्त्रों तथा कुएँ आदि खोदने के लिए कम ब्याज पर ऋण की सुविधा दी जाए, घरेलू उद्योग–धन्धों का विकास किया जाए, सहकारी समितियों की स्थापना की जाए, औद्योगिक श्रमिकों के लिए उचित मजदूरी, अच्छे मकान एवं बिजली की व्यवस्था की जाए। उनका आर्थिक शोषण रोकने हेतु कानून बनाया जाए। उनके लिए उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाए, जिससे वे नौकरियों में स्थान पा सकें। सामाजिक समस्याओं के हल के लिए बाल–विवाह एवं कन्या मूल्य पर कानूनी रोक के साथ–साथ इनके विरुद्ध

जनमत तैयार किया जाए। युवा–गृहों का पुनरुत्थान किया जाए और उनमें शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाए। जनजातियों की आर्थिक स्थिति सुधरी जाए, जिससे वेश्यावृत्ति समाप्त हो सके।

स्वास्थ्य–सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए आदिवासी क्षेत्रों में चिकित्सालय, डॉक्टर एवं आधुनिक दवाइयों का प्रबन्ध किया जाए। उनके लिए पौष्टिक आहार तथा विटामिन की गोलियों की व्यवस्था की जाए, ताकि इनमें कुपोषण से होनेवाली बीमारियों को समाप्त किया जा सके। चेचक, हैजा इत्यादि के टीकों का प्रबन्ध किया जाए। उन्हें स्वास्थ्य के नियमों से परिचित कराया जाए। इसके लिए समय–समय पर अलग–अलग स्थानों पर स्वास्थ्य–शिविर लगाए जाए। चलंत अस्पतालों की व्यवसथा की जाए। स्कूलों, पंचायत–भवनों एवं युवा–गृहों में दवा आदि की व्यवस्था की जाए।

शैक्षणिक समस्या को हल करने के लिए आदिवासियों के लिए सामान्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए। प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के लिए शिक्षण–संस्थाएँ खोली जाए। शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा हो। स्कूलों में उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाए, जिससे कि शिक्षा–ग्रहण करने के बाद उन्हें बेरोजगारी का सामना नहीं करना पड़े। कृषि, पशु–पालन, मुर्गी–पालन, मत्स्य–पालन, मधुमक्खी–पालन एवं अन्य प्रकार की हस्तकलाओं का उन्हें प्रशिक्षण दिया जाए। सांस्कृतिक समस्याओं के हल के लिए डॉ. एल्विन का मत है कि ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए, जिससे आदिम ललित–कलाओं की रक्षा हो सके। जनजातियों के लिए किए जानेवाले मनोरंजनात्मक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम उन्हीं की भाषा में हो। इससे भाषा की समस्या भी हल होगी। धार्मिक समस्याओं के हल के लिए यह आवश्यक है कि तर्क एवं वैज्ञानिक कसौटी के आधार पर धार्मिक अंधविश्वासों को समाप्त किया जाए।

जनजातियों की समस्याओं के समाधान–हेतु केंद्रीय सरकार एवं राज्य–सरकारों को एक उचित नीति बनानी चाहिए, ताकि इनके हितों की रक्षा की जा सके। जनजातीय कल्याण की नीति इस प्रकार की होनी चाहिए।

किसी भी योजना को जनजातीय समूहों पर लागू करने से पूर्व उसका परीक्षण किया जाए और उसकी त्रुटियों को दूर करने के बाद ही उसे लागू किया जाए। प्रत्येक जनजाति की अपनी कुछ व्यक्तिगत समस्याएँ भी हैं। अतः कोई भी नीति सभी जनजातियों के लिए लाभप्रद नहीं हो सकती, जब–तक कि उसमें स्थानीय समस्याओं के हल का उद्देश्य न हो। जनजातियों के उत्थान के लिए किसी भी नीति को लागू करने

में ऐसे कर्मचारियों का ही सहयोग लिया जाए, जो इस कार्य में रुचि रखते हों और जिन्हें जनजातीय समस्याओं का ज्ञान हो।

समाजशास्त्री और मानवशास्त्री नई कल्याणकारी–नीतियों को लागू करने में अपना सहयोग प्रदान कर सकते हैं। कोई भी नीति आदिवासियों पर थोपी नहीं जाए, वरन् जनसहयोग से ही उसे लागू किया जाए। आदिवासियों की कल्याणकारी–नीतियों में आर्थिक हितों को प्रमुखता दी जाए, क्योंकि गरीबी ही अनेक बुराइयों की जड़ है। आदिवासियों के सुधार के पीछे हमारा ध्येय उन्हें आधुनिक समाज की प्रतिलिपि–मात्रा बनाना न हो, वरन् यह होना चाहिए कि वे अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ भी बनाए रखें। जो जनजातियाँ राजनीतिक स्वायत्तता की माँग कर रही है, उन्हें इस बात के लिए आश्वस्त किया जाए कि देश की प्रजातंत्रीय व्यवस्था में उनके हितों की पूर्ण रक्षा की जाएगी।

जनजातियों की समस्याएँ अत्यध्कि जटिल मानवीय समस्याएँ हैं, जिनके समाधन–हेतु प्रशासकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और समाज–वैज्ञानिकों को अपने साधन एक साथ जुटाकर कार्य करना चाहिए।

सभी भारतीय जनजातियों को किसी एक श्रेणी अथवा वर्ग में नहीं रखा जा सकता। प्रत्येक जनजाति की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है, विकास का एक पृथक् स्तर है, साथ ही उसकी अपनी निजी समस्याएँ भी हैं। अतः उनके कल्याण–हेतु नीति–निर्धारण करते और योजना बनाते समय इस मानवशास्त्रीय तथ्य को ध्यान में रखा जाना परम आवश्यक है। यह सही है कि केंद्र और राज्य–सरकारें जनजातीय उत्थान–हेतु कृतसंकल्प हैं और उस दिशा में अथक प्रयत्न भी कर रही है तथा उनके कल्याण–कार्यों पर करोड़ों रुपए खर्च भी किए जा रहे हैं। यहाँ सरकारी और जनजाति–कार्य में लगे उच्च–पदाधिकारियों को इस दृष्टि से हर समय सजग रहना होगा कि साधनों का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है, विकास–सम्बन्धी योजनाओं का लाभ कुछेक गिने–चुने मुट्ठी–भर लोगों को तो नहीं मिल रहा है, स्वार्थी लोग जनजातीय कल्याण के नाम पर कहीं अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति में तो नहीं लगे हैं।

भारत में जनजातियों की समस्या एक अद्भुत चुनौती है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुए जनजातियाँ और उनकी समस्याओं का हल एक नीति के तहत किए जाएँ, ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके। करनी चाहिए। उनका भविष्य उन्हें समाज की

मुख्यधारा से जुड़ने और देश के विकास का एक अभिन्न अंग बनने में है। आज का भारत उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशील है एवं पिछले छह दशकों में बड़ी जनजातियाँ की विकास की मुख्यधारा में जुड़ने की कई महत्त्वपूर्ण सफलता इसके उदाहरण हैं। मगर कसौटी पर है छोटे जनजातियों का कल्याण एवं उन्हें मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास। भारत में जनजातियों का भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि इनपर विशेष संवैधानिक एवं प्रशासनिक सुरक्षा एवं विकासशील हस्तक्षेप–द्वारा उनके जीवन के आर्थिक और सामाजिक स्तर में सुधर लाया जा रहा है और आनेवाले समय में उनकी समस्याओं का निराकरण मानवीय दृष्टिकोण से करने हेतु केंद्र और राज्य–सरकारें कृतसंकल्प हैं।

* * * * *

संदर्भ

1. अलेक्जेण्डर, के.सी. ऐन्ड आर्.आर्. प्रसाद (1991), **ट्राइबल रिहेबिलिटेशन ऐंड डेवलपमेन्ट,** रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
2. भान्गे, एन्.पी. (1993), **ट्राइबल कमीशन ऐन्ड कमिटीस एन इन्डिया,** हिमालय पब्लिकेशन्स, बम्बई।
3. चौधरी, बी.डी. (1982), **ट्राइबल आईडेनटिटी,** रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. चौधरी, के. सुकान्त एवं पटनायक सोमेन्द्र मोहन (संपा) (2008), **इन्डियन ट्राइबल ऐन्ड द मैनस्ट्रीम,** रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. देवगाँवकर, एस्.जी. (1983), **ट्राइबल एडमिनिस्ट्रेसन प्लान्स : इक्लिमेन्टेशन ऐन्ड इवैलुएशन,** कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।
6. राजपूत, उदय सिंह (2010), **आदिवासी विकास एवं गैर–सरकारी संगठन,** रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
7. अटल, योगेश एवं सिसोदिया, यतीन्द्रसिंह (2011), **आदिवासी भारत, एक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विकासात्मक विवेचन** (द्वितीय संस्करण एवं परिवर्धित संस्करण), रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

* * * * *

जनजातियों की समस्याएं एवं मानवाधिकार

*** डॉ0 एस. पी. मीना**

भारत में आजादी के भी बाद भी समाज का एक बड़ा वर्ग अपने विरूद्ध होने वाली हिंसा से आज भी पीड़ित है तो वह है अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग हैं। देश में बढ़ती घटनाओं से यह साबित होता है कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग किस प्रकार बिना किसी गलती के लम्बी कालावधि से अमानवीय स्तर का जीवन जी रहे हैं, ये समस्याएं वर्षों से स्थिति को विकट बनाये हुए हैं और उत्पीड़ित और दासता का जीवन जीने को मजबूर हैं।

भारत में इन जनजातियों को समाज के हाशिए पर रखे जाने का इतिहास पुराना है। औपनिवेशिक काल में ऐसे अनेक कानून बनाए जो जनजाति लोगों को भूमि, वन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों से वंचित करते थे। 1927 के भारतीय वन अधिनियम के जरिए 'रेस नलियस' का सिद्धान्त लागू किया गया, जिसका अर्थ यह था कि सरकार किसी भी ऐसी संपत्ति को अपने कब्जे में ले सकती थी जिसके लिए मालिकाना हक का कोई वैधानिक दस्तावेज प्रस्तुत न किया गया जा सके। इस सिद्धान्त का इस्तेमाल करते हुए ब्रिटिश सरकार ने विस्तृत भू–भाग वन विभाग को सौंप दिए गए थे, जिसकी स्थापना इस कानून को लागू करने के लिए की गई थी। इसी प्रकार 'एमीनेंट डोमेन' के विद्यान ने सरकार को यह अधिकार प्रदान कर दिया कि वह सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए किसी भी भूमि का अधिग्रहण कर सकती थी। इस कानून की उत्पत्ति 1994 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम से हुई थी। भूमि और प्राकृतिक संसाधनों से जनजातियों के परम्परागत अधिकारों को छीने जाने कारण इस कानून की व्यापक आलोचना की जाती रही है।[1] सदियों से पददलित अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग अपने दैनिक जीवन में न केवल गहन आर्थिक ,राजनीतिक व शैक्षिक समस्याओं से ग्रसित हैं, वरन सामाजिक क्षेत्र में भी विकट परिस्थितियों का सामना का प्रतिदिन करते रहते हैं।

---

* सहायक आचार्य, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्गों के लिए सरकार द्वारा संविधान में निहित संरक्षणात्मक उपायों के संदर्भ में बनाये गये प्रयासों का वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हुआ है। हालांकि संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत प्रदत्त सुविधाओं को समय –समय पर बढाया गया है।इन सभी संविधानिक एवं विधिक संरक्षणों के बाबजूद आज भी इनके प्रति असमानता, अत्याचार, उत्पीडन की घटनाएँ बढी है। इस बात का उल्लेख राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष के.जी. बालाकृष्णन ने अनसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति अत्याचार निवारण कानून के कार्यान्वयन की स्थिति पर जारी जन रिपोर्ट के अवसर पर माना कि अनसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम,1989 एवं अनसूचित जनजाति अत्याचार निवारण नियमावली 1995 के लागू होने के बावजूद दलित और आदिवासियों के खिलाप अत्याचारों में कमी के बजाय तेजी आई है। इससे यह साबित होता है कि मानवाधिकारों के हनन की आज भी बदस्तूर जारी है।

जनजातीय व्यक्ति : अर्थ

चंदा समिति ने 1960 में अनुसूचित जनजाति के अंतर्गत किसी भी जाति को शामिल करने के लिए 5 मानक निर्धारित किए हैंः–

1. भौगोलिक एकाकीपन
2. विशिष्ट संस्कृति
3. संकुचित स्वभाव
4. पिछडापन
5. आदिम जाति के लक्षण

भारम में जनजातियों को आदिवासी, वनवासी, गिरिजन आदि नाम से जाने जाते हैं। लेकिन भारत के संविधान में आदिवासियों के लिए जनजाति के नाम का उल्लेख किया गया है। महात्मा गांधी ने आदिवासियों को गिरिजन अर्थात् पहाड पर रहने वाले लोग नाम दिया था। इनके भारत के मूल निवासी के रूप में मान्यता प्राप्त है। भारत में जनजातियों में मुख्यतः भील, मीणा, संथाल, मुंडा, सहरिया, बोडो, गौंड आदि जनजातियॉ हैं। जनजातियों को भारत के मूल निवासी के रूप में जाना जाता है। इन्होंने भारतीय सभ्यता को समृद्ध व विविघ बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत में जनजातियों को अनुसूचित जनजातियों के नाम से जाना जाता है। 'अनुसूचित जनजातियां'

शब्द की परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 366; 25 अनुसूचित जनजातियां ऐसी जनजातियां हैं या जनजाति समुदायों के भाग या उनमें एक समूह अभिप्रेत है। जिन्हें संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजाति समझा जाता है। भारत में विभिन्न साहित्यिक विद्वानों के द्वारा जनजातियों को आदिवासी नाम दिया गया। वर्तमान समय में आदिवासी शब्द ज्यादा प्रचलन में है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जनजातियों को 'इन्डीजिनियस पीपुल्स' नाम दिया गया इनको परिभाषित किया है

एन.डी.मजूमदार के अनुसार ''एक जनजाति परिवारों अथवा परिवार समूहों का एक ऐसा समुदाय है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भू–भाग में रहते हैं, एक सामान्य भाषा बोलते हैं, और विवाह, व्यवसाय या उद्योग के विषय में कुछ वर्जनों का पालन करते हैं और उन्होने परस्पर आदान–प्रदान और कर्त्तव्यों की पारस्परिकता की एक अच्छी तरह जाँची हुई व्यवस्था विकसित कर ली है।''[4] उच्चतम न्यायालय ने अपने एक निर्णय में यह निर्णय दिया कि जनजाति समुदाय का कोई व्यक्ति यदि धर्मान्तरण के कारण अपनी परम्पराओं, संस्कारों और विषमताओं का पालन नहीं कर रहा जो जनजाति व्यक्ति के लिए आवश्यक है और उत्तराधिकार, विरासत एवं विवाह जैसे परम्परागत कानूनों का पालन नहीं करता तो वह जनजाति समाज का नहीं माना जाएगा।[5]

जनजातियां एवं मानवाधिकार

मानवाधिकारों का अर्थ मानवीय मूल्यों की संरक्षा से है। व्यक्ति के निजी विकास के लिए संपूर्ण संसाधनों का उपयोग अधिकार के रूप में किया जाना ही सामान्यता मानवाधिकार है। राज्य के उद्भव से पूर्व मनुष्य इन अधिकारों का दावा निजी सुरक्षा के लिए करता था। वर्तमान में राज्य मानव विकास के लिए युक्तियुक्त अवसर की सुरक्षा देता है। अतः यही मानव सुरक्षा मानवाधिकार कहलाते हैं। प्रो. हार्ट का कथन है कि यदि मानव प्राणी साथ–साथ रहना चाहता है तो उसके लिए कुछ मूल नियमों का अनुपालन करना नितांत आवश्यक है। इस प्रकार के अनुपालन को मानव के अधिकार के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है।

मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 की धारा 2 घ के अनुसार मानवाधिकार ऐसे संवैधानिक प्रत्याभूत हैं जो जीवन से संबंधित स्वतंत्रता और व्यक्ति की गरिमा को

समाहित करते हैं तथा इनको अंतराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में स्थान प्राप्त है। भारत में इन्हें न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय बनाया जाता है।

वर्तमान समय में जनजातियों के मानवाधिकारों के हनन की घटनाएँ ज्यादा धटी हैं। विशेषकर भूमि के संपरिवर्तन हो या विस्थापन, उनके शोषण, अत्याचार, स्वास्थ, कुपोषण ,भूखमरी आदि इनकी समस्याएँ रहीं है। हयूमन राइटस वॉच की रिपोर्ट के अनुसार दलित और स्वदेशी लोग जिन्हें अनुसूचित जनजातियों के रूप में जाना जाता है। वे लगातार भेदभाव ,बहिष्कार एवं हिंसा का शिकार रहे हैं। यह भी उल्लेख किया कि भारत सरकार द्वारा बनाए कानून एवं नीतियॉ इनको संरक्षण तो प्रदान करती हैं लेकिन उनका कार्यान्वयन सही तरीके से नहीं हो रहा है।

अंतरराष्ट्रीय मानकों में जनजातियों को प्रदत्त अधिकार

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर जनजातियों के संरक्षण एवं विकास के लिए सर्वप्रथम प्रयास अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के माध्यम से 1989 में हुआ। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की अभिसमय संख्या 169, स्वदेशी एवम् जनजातिय लोग अभिसमय, में जारी की गई। इस अभिसमय में विश्व की जनजातियों को 'इन्डीजिनियस पापुलेशन' के नाम से सम्बोधित किया गया। बाद में पापुलेशन के स्थान पर पीपुल्स शब्द का प्रयोग किया गया। भारत सहित कई देशों में इसका विरोध किया गया क्यों कि इस शब्द में स्वतंत्र पृथक राष्ट्रीयता का अर्थ निहित है। भारत सरकार द्वारा इस अभिसमय का अनुसमर्थन नहीं किया गया है। इसके पश्चात संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार आयोग ने अप्रैल 2010 में एक प्रस्ताव पारित कर जनजातियों विषयों पर स्थायी मंच का गठन किया गया। इसमें विभिन्न देशों के जनजातिय नेताओं को सदस्य बनाया गया था। जिसमें भारत से एक भी नहीं लिया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ में यह आज भी विवादास्पद है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत के जनजातिय क्षेत्रों में औशधीय पौधों के संरक्षण एवं शुष्कीय जैव विविधता कार्यक्रमों के लिए 2003 में सहायता दी गई। इसी प्रकार 21 जुलाई 1992 को विश्व बेंक मूल निवासी कोष का गठन हुआ। जिसका मुख्य उद्देश्य 17 लैटिन देशों के 4 करोड जनजातिय लोगों के राजनैतिक प्रक्रिया में सम्मिलित होने के लिए उनमें जागृति पैदा करने के लिए किया गया था।[6]

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनजातियों के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए निम्न अभिसमयों का उल्लेख है–

- मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा–पत्र,1948

- सिविल तथा राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा,1960
- आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा,1966
- सभी प्रकार की जातिय भेदभाव की समाप्ति अभिसमय,1966
- महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति अभिसमय,1979
- अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन, अभिसमय,1989 संख्या,169
- 'देशज लोग' ड्राफट उद्घोषणा, 2006 – इसमें 46 अनुच्छेद हैं ,जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि जनजातियों यानि देशज लोगों के अधिकारों के संरक्षण जिनमें सांस्कृतिक संरक्षण ,शिक्षा, स्वास्थ, रोजगार, भाषा, धर्म को भी संरक्षण प्रदान किया है। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद द्वारा 29 जून 2006 को स्वीकार किया गया। इसको 9 भागों में बॉटा गया है, जो निम्न प्रकार हैं–

प्रथम भाग–मूलभूत अधिकार

दितीय भाग–जीवन एवं सुरक्षा

तृतीय भाग–संस्कृति, धर्म और भाषा विधि

चतुर्थ भाग–शिक्षा, मीडिया एवं रोजगार

पंचमभाग– सहभागिता एवं विकास

छटवॉ भाग– भूमि एवं संसाधन

सप्तम भाग – स्थानीय सरकार एवं जनजातियॉ

अष्टम भाग–कार्यान्वयन

नवॉ भाग–न्यूनतम मानक

जनजातियों को जन्म से ही समान अधिकार तथा बिना किसी भेदभाव के उनको समाज में समानता का स्तर संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा प्रदान किया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा ,1948 प्रथम अन्तर्राष्ट्ीय दस्तावेज है जिसके अनुच्छेद 1 में यह उल्लेख किया कि '' सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र एवं समान हैं। उन्हें बुद्धि और अंतश्चेतना प्रदान की गई है। उन्हें परस्पर भ्रातृत्व की भावना से कार्य करना चाहिए।'' यह अनुच्छेद मानव अधिकारों को मान्यता प्रदान करता है। अनुच्छेद 2 '' प्रत्येक व्यक्ति इस उद्घोषणा में वर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है; इसमें मूलवंश,

वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक एवं अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक उद्भव, संपत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जायेगा। अर्थात् जनजातियों पर भी ये प्रावधान लागू होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा पत्र के अनुच्छेद 3 ''प्रत्येक व्यक्ति को जीने का स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार है। लेकिन जारवा जनजाति क्षेत्र में भूख के कारण महिलाओं एवं बच्चों से अर्द्धनग्न नृत्य करवाना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। प्रत्येक व्यक्ति को एक अच्छा जीवनस्तर जीने का अधिकार है जिसमें वह स्वास्थ्य व अन्य चीजों की देखभाल कर सके। भारत के संविधान के अनुच्छेद 47 में लोगों के स्वास्थ को सुदृढ बनाये रखने का दायित्व राज्य को दिया गया है। इसी प्रकार के उपबन्ध आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार अराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 में उपबन्धित है तथा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 25(1) में उपबन्धित है। आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 11(1) में प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार सहित जीवन के उच्च मापदण्डों के अनुरूप भोजन, वस्त्र और मकान प्राप्त करने का अधिकार है। उपबन्धित है अनुच्छेद 11(2) के द्वारा व्यक्ति को भूखा नहीं रहने का अधिकार दिया गया है। भारत में एक तरफ माल गोदामों में खाद्यान्न सड रहा है दूसरी ओर जारवा जनजाति को भोजन के लिए जंगली जानवरों की तरह नग्न नृत्य के लिए मजबूर किया जा रहा है।

भारतीय संवैधानिक परिदृश्य में जनजातियों को अधिकार

हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक न्याय की संकल्पना की थी और इसी न्याय की प्राप्ति हेतु संविधान में महत्वपूर्ण प्रावधान दिये हैं संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान में आर्थिक और राजनैतिक समता के साथ सामाजिक समता का लक्ष्य रखा गया। अतः सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हुए, अछूत लोगों और अलग थलग पड़ी जनजातियों की सामाजिक सहभागीदारी बढ़ाने के लिए लोकसभा, विधानसभा, शिक्षण संस्थाओं और सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण का संवैधानिक प्रावधान रखा गया।

हमारे संविधान में अनुसूचित जनजातियों संरक्षण से संम्बंधित महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं जिनमें अनुच्छेद 14, 15 (4), 16, 16(4), 16(4) क, 46, 225, 243 घ, 244 12, 275, 330, 332, 335, 338, 339, 340, 342, 371, एवं पांचवीं एवं छठी अनुसूची निम्न हैं। अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा एवं अर्थ सम्बंधी हितों की अभिवृद्धि के लिए राज्य को निर्देश दिया गया है। जो इस प्रकार है– '' राज्य जनता के दुर्बल वर्गो के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।''

भारत में अन्य देशों के मुकाबले जनजातियों को संविधानिक एवं विधिक प्राप्त हैं। विधिक रूप से अधिकार प्राप्त होने के वाबजूद इनके मानवाधिकारों के हनन की घटनांए सामने आती रही हैं। इसके पीछे प्रशासनिक उदासीनता के साथ कुछ हद तक स्वयं भी जिम्मेदार हैं।

जनजातियां एवं उनकी समस्याएं

वर्तमान समय में जनजातियों के समस्याओं के सम्बन्ध में निम्न मुद्दे हैं जो उनके मानवाधिकारों से जुड़े हैं–

1. जनजाति क्षेत्र में खनन

भारत में 4175 खानों में से 3500 खानें जनजातिय क्षेत्र में हैं। हालांकि ये जनजातियों के फायदेमंद नहीं हैं क्योंकि ये कोयले, मैंगनीज, लोहे, ग्रेफाइट आदि की हैं। और इन खानों में खनन कार्य में अधिकांशतः आदिवासी ही काम करतें हैं। जो विभिन्न प्रकार की बीमारियों से ग्रसित हो जातें हैं। इनमें से एक सिलीकोसिस नामक बीमारी हैं। जो खानों में काम करने वाले श्रमिकों को धूल के कण फेंफडों में जम जातें हैं। जिससे वे सिलीकोसिस बीमारी की चपेट में आ जातें हैं। जिससे उमकी मृत्यु हो जाती है। वर्तमान समय में सिलीकोसिस से पीडित लोगों में आदिवासी ही है। कई राज्यों गुजरात, राजस्थान, उडीसा, मध्य प्रदेष, झारखंड प्रमुख हैं। इस पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने राज्य सरकारों को नोटिस दिया है साथ ही मुआवजा देने के निर्देश दिए।

राजस्थान के जोधपुर, डूगरपुर, बांसवाडा, करौली, धौलपुर, अलवर, किशनगढ आदि क्षेत्र में सिलीकोसिस से पीडित लोग अधिक हैं। राजस्थान राज्य खनन मजदूर यूनियन जिला प्रभारी एवं प्रदेश सदस्य बुधाराम मेघवाल ने जोधपुर के जिला कलेक्टर

को ज्ञापन देकर सिलीकोसिस मरीजों के विधवाओं को मुआवजा देने की मांग की गई है जिसमें 22 विधवाओं में से एक वंचित विधवा शांति देवी बेलदार की सूची में से 10 लोग मुआवजे की इंतजार में मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। के. एन. चेस्ट हास्पिटल जोधपुर द्वारा सर्वे सूची के अनुसार 1157 लोगों में से 700 लोग मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं जिन्हें राज्य सरकार द्वारा सहायता राशि पहले दी गई है जिला कलेक्टर से 21 विधवाओं को उसी तरह मुआवजा देने का निवेदन किया।[7] दूसरा मुद्धा झारखण्ड के धनबाद जिले में आदिवासी अमानवीय दशा में जी रहे हैं ।धनबाद देश का सबसे पुराना खनन क्षेत्र है तथा अवैध कोयला व्यापार में लिप्त गैंगों का अड्डा है। ये गैंग अपने लिए अवैध रूप से कोयला खनन करने तथा इसे दूर वसूली केंद्र तक ले जाने के लिए आदिवासियों की भर्ती करते हैं। रांची से धनबाद जाते हुए कोयला ले जाते हुए साईकिलों कि कतार दिख जाती है। अवैध खनन की प्रक्रिया में अनेक लोग मारे जाते हैं, किन्तु इन मामलों की सूचना गैंगस्टरों के दबाव में तथा अवैध खनन में लगे आदिवासियों द्वारा झेली जाने वाली आर्थिक परेशानियों के कारण नहीं दी जाती है। इन आदिवासियों की दुर्दशा देखने के बावजूद, जो वास्तव में अमानवीय जीवन जी रहे हैं, न तो कोयला माफिया को रोकने के लिए न ही अवैध व्यापार को वैध प्रबन्ध के दायरे में लाने के लिए कोई ठोस कदम उठाए गए हैं।

जनजातीय लोगों को होने वाली आर्थिक कठिनाइयों, अवैध कोयला खनन तथा व्यापार जिसके कारण कई स्थानीय लोगों की मौत हो जाती है जो धनबाद जिले में असलियत में अमानवीय दशाओं में जीवन जी रहें हैं, के संबंध में एक विस्तृत रिपोर्ट मांगते हुए आयोग ने झारखण्ड सरकार को उसके मुख्य सचिव के माध्यम से एक नोटिस जारी किया आयोग ने निम्नलिखित निश्कर्शों पर स्वतः संज्ञान लेते हुए यह नोटिस जारी किया : लोक सेवकों को मानव अधिकार हनन में अथवा उसके संरक्षण में लापरवाह पाया गया आयोग ने पीड़ितों अथवा उनके निकटतम रिश्तेदारों के लिए कुल 1,70,00,000/– रुपये की वित्तीय राहत की स्वीकृति की:–

धनबाद की सीमा में आने वाले क्षेत्रों को भूमिगत कोयले की आग के कारण खतरे का सामना करना पड़ रहा है। भारत के राष्ट्रपति के कहने पर भारत सरकार ने जोखिम वाली आबादी को सुरक्षित क्षेत्र में ले जाने के लिए एक पुनर्वास योजना तैयार किया था। हालांकि, भारत सरकार द्वारा किए गए आंबटन के बावजूद जमीनी स्तर पर प्रभावी कार्रवाई काफी धीमी है। यदि पुनर्वास प्रक्रिया में तेजी नहीं लाई जाती तो इन क्षेत्र में

आग के कारण जो अकस्मात बड़ी तेजी से फैलती है, सभी घरों के जलने से सैंकड़ों जाने चली जाएंगी।[8]

2. नक्सलवाद

भारत में कुछ राज्य नक्सल प्रभावित जिले है। बिहार ,झारखंड ,छत्तीसगढ राज्यों में सबसे ज्यादा हैं। धनबाद नक्सली हिंसा का एक उभरता केंद्र मुख्यतः इसलिए है क्योंकि गरीबी निवारण तथा अन्य सामाजिक कार्यक्रमों का प्रभावी ढंग से कार्यान्वयन नहीं हो रहा है। गरीबी, भ्रष्टाचार एवं पिछडापन ही नक्सलवाद का मुख्य कारण है। ऐसे पिछड़े क्षेत्रों में अनेक सामाजिक समस्याओं से लोग त्रस्त रहते है। सुप्रसिद्व सामाजिक कार्यकर्ता ठक्कर बापा ने इनकी समस्याओं के प्रमुख कारण गरीबी, अशिक्षा, बिमारी, प्रशासनिक खामी और नेतृत्व की कमी बताया हैं। आज अगर हम समग्रता में देखे तो इनकी प्रमुख समस्याएँ अशिक्षा, निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण, ऋणग्रस्तता, अत्याचार, बँधुआ प्रथा, आवास की कमी, विस्थापन, आबकारी कानून, जल, जंगल एवं जमीन से वंचना, प्रशासनिक भेदभाव आदि है। इस सभी समस्याओं के कारण नक्सलवादी आन्दोलन इन क्षेत्रों में तेज गति से फैल रहा है। **नन्दिनी सुन्दर बनाम छत्तीसगढ राज्य,**[9] के प्रकरण में राज्य सरकार ''सलवा जूडम'' के सदस्यों को विशेष पुलिस अधिकारी नियुक्त करके नक्सल ग्रस्त क्षेत्रों में नक्सलियों से युद्ध में अग्रिम पंक्ति में लगाकर उनके जीवन में किस प्रकार खिलवाड कर रही थी क्योंकि वे या उनके पारिवारिक सदस्य या उनके मित्र नक्ससियों की हिंसा से उत्पीडित रहे हैं। राज्य का अभिवचन कि राज्य ऐसा करके स्थानीय युवकों को रोजगार दे रही थी और इस प्रकार जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के संवैधानिक मूल्यों की अभिवृद्धि कर रही थी, उच्चतम न्यायालय ने नकार दिया क्योंकि वे नियमित बलों के सदस्यों की अपेक्षा उतने शिक्षित व प्रशिक्षित नहीं थे कि वे स्थितियों के अनुसार निर्णय ले सके जबकि यह विशेष पुलिस अधिकारी अधिक जोखिम के अध्यधीन थे जो कि उनकी बडी संक्ष्या में मृत्यु से स्पष्ट था। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विद्रोहियों के विरूद्ध जबाबी कार्यवाही में स्थानीय युवकों को विशेष पुलिस अधिकारी नियुक्त किए जाने की नीति विवेकहीन, निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थी।

3. जनजातियों के विरूद्ध अपराध

भारत में सदियों से सवर्णों द्वारा निम्न जातियों को अछूत समझा जाता रहा है। स्वतंत्रता उपरान्त भारतीय संविधान में मानव निर्मित इस निर्योग्ता को दूर करने की व्यवस्था की

गयी है। इस सम्बन्ध में व्यापक रोकथाम हेतु वर्ष 1955 में नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम एक अधिनियम पास किया। इसके अन्तर्गत नागरिक अधिकारों का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि वे अधिकार जो संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर देने के कारण किसी व्यक्ति को प्राप्त हैं। यथा धार्मिक, सामाजिक, स्वास्थ, वस्तु विक्रय व सेवा प्रदान, अस्पृश्यता निवारण से जनित अधिकार के उपयोग में बाधा, प्रतिशोध की भावना से छुआछूत संबंधी अपराध, जबरजस्ती बेगार लेना, को अपराध घोषित कर समुचित दण्ड की व्यवस्था की गयी है, यथा लाइसेंस रद्व या निलम्बन,अनुदान पुर्नग्रहणव निलम्बन, सामूहिक जुर्माने की व्यवस्था है।

जनजातियों के लिए संवैंधानिक व विधिक रूप से कानूनी संरक्षण प्राप्त होने के बावजूद इन पर हत्या, अपहरण, बलात्कार के रूप में अत्याचार की घटनांए बडी हैं। इस बात का उल्लेख अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण कानून के कार्यान्वयन की स्थिति पर जारी जन रिपोर्ट के अवसर पर भारत के पूर्व प्रधान न्यायाधीश एवं राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष ने भी माना कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण नियमावली 1995 के लागू होने के बावजूद दलित और आदिवासियों के खिलाप अत्याचारों में कमी के बजाय तेजी आई है। सर्वप्रथम तो एस.सी व एस.टी के खिलाप केस रजिस्टर नहीं होता है और यदि केस दर्ज दर्ज हो गया तो दोषसिद्धी की दर भी काफी कम हैं। उन्होने सुझाव दिया कि सभी राज्यों में विशेष अदालतें बने और उनमें अनुभवी प्रोसीक्यूटर हों। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के खिलाप होने वाले अपराधों की सही जांच होनी चाहिए।[10] अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण कानून के कार्यान्वयन की स्थिति पर जारी जन रिपोर्ट के अनुसार गलत तथ्य के आधार पर 1/4 केस अन्वेषण के दौरान ही निपटान हो जाता है। रिपोर्ट के अनुसार अनुसूचित जनजाति के खिलाप केस बढे हैं। 2010 में 5885 केस थे जिसमें हत्या के 142 मुकदमें थे। 1714 रजिस्टर्ड केस में से 223 को बंद कर दिया।[11]

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की वर्ष 2008–09 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों पर अत्याचार के कुल 455 मामले का आयोग द्वारा निपटारा किया गया ।

क्र. सं.	राज्य/संघ	अनुसूचित जाति/अनुसूचिज जनजातियों पर अत्याचार
1.	आंध्र प्रदेश	112
2.	असम	1
3.	बिहार	42
4.	गुजरात	18
5.	हरियाणा	22
6.	हिमाचल प्रदेश	3
7.	कर्नाटक	7
8.	केरल	3
9.	मध्य प्रदेश	13
10.	महाराष्ट्र	9
11.	मिजोरम	1
12.	उडीसा	8
13.	पंजाब	4
14.	राजस्थान	121
15.	तमिलनाडू	35
16.	उत्तर प्रदेश	117
17.	दिल्ली	6
18.	छत्तीसगढ	2
19.	झारखंड	12
20.	उत्तराखंड	8
	कुल	455

स्रोतः वार्षिक रिपोर्ट वर्ष 2008–09

अखिल भारतीय उपभोक्ता कांग्रेस बनाम मध्य प्रदेश राज्य[12] के वाद में यह अभिनिर्धारित किया कि किसी व्यक्ति को अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की कोटि में आने वाली जाति के नाम से कहना या रेस्टोरेंट में भिन्न बर्तन आदि देना या सम्मान के लिए मृत्यु देने के बराबर है एवं दोषी पाए जाने पर कठोर दंड दिया जाना चाहिए।

4. महिलाओं के विरूद्ध अपराध

जनजातीय समाज में महिलाओं को उच्च दर्जा प्राप्त है जो कि स्त्री–पुरूष अनुपात, कार्यों में महिलाओं की सहभागिता, निर्णय लेने में उनकी भूमिका आदि कई सूचकांकों में परिलक्षित होता है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमारे देश में जनजातिय महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज में कुछ कुरीतियाँ है, जिनके कारण सर्वाधिक मानवाधिकारों के हनन की घटना से जनजातिय महिलाओं को ही प्रभावित किया। दक्षिण राजस्थान में मौताणा प्रथा का सर्वाधिक प्रभाव महिलाओं पर रहा है। समाज में नाता प्रथा भी विद्यमान है। भारत में जनजातीय महिलाओं के प्रति अपराधों में हत्या ,अपहरण ,बलात्कार, लज्जा भंग, छेडछाड की घटनाएं सर्वाधिक हुई हैं।

प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अनसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति के लोग निर्धन और असहाय होते हैं और भूमिपतियों एवं सम्पन्न लोगों के घरों पर कार्य कर गुजर बसर करते हैं, जब मानव चेतना जागृत होने पर कोई विशेष कारण होने पर कार्य करने से मना कर दिया जाता है। भारत में जनजाति महिलाओं के विरूद्ध अपराध बढे हैं। राजस्थान के बांसवाडा जिले की कुशलगढ तहसील के नाथपुरा गांव में पति की जान बचाने के लिए आदिवासी महिला को निर्वस्त्र होना पडा।[13.] यह घटना 13 मार्च 2012 की है। दूसरी ओर अंडमान निकोबार द्वीप पर जारवा आदिवासी महिलाओं को भोजन का लालच देकर जारवा विदेशी पर्यटकों के सामने अर्द्धनग्न नृत्य करवाया गया।जिसका विडियो बनाकर इंटरनेट पर जारी किया गया। मानवता को शर्मसार करने वाली घटना है। इस प्रकार इनके शोषण के साथ साथ मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। इनके आत्मसम्मान की रक्षा होनी चाहिए। सरकार द्वारा इनको आर्थिक सहायता प्रदान कर इनके अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए।[14] महिलाओं की दुखद स्थिति पर चर्चा करते हुए राष्ट्रीय महिला आयोग की पूर्व अध्यक्ष श्रीमति पूर्णिमा आडवाणी उन्होने कहा कि जनजातीय महिलाओं को चुडैल या डाकन घोषित करके सताया जाता है। बेरोजगारी, व्यवसायिक शिक्षा की कमी तथा नक्सलियों द्वारा अपने गैंग में शामिल होने के लिए प्रलोभन दिया जाता है। शिक्षा की कमी के कारण उन्हें दिहाडी मजदूर के रूप में कार्य करना पडता है, और जिंदगी भर गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करती है।[15]

5. विकास से उत्पन्न विस्थापन

वर्तमान विकास की अवधारणा में जनजातिय लोगों को विस्थापन के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पडा है। सरकार द्वारा नदियों पर बांध बनाए जाने के

कारण भूमि अधिग्रहण सर्वाधिक जनजातियों का ही हुआ है। जनजाति लोग वनों में ही निवास करतें है। ''ओडिशा राज्य में अवैध खनन पर न्यायमूर्ति शाह आयोग ने अपनी रिपोर्ट में माना कि खनन प्रचालन जनजातिय क्षेत्रों में किया जा रहा है तथा वे लोग विस्थापित हैं या उसी क्षेत्र मे दयनीय स्थिति में रहते हैं। खनिज रियायत नियमावली,1960 के नियम 27 पी एवं क्यू के अनुसार नियोजन के मामलों में जनजातीय और विस्थापित लोगों को प्राथमिकता दिया जाना है तथा नियोजित व्यक्तियों को निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी का भुगतान नहीं होना चाहिए। आयोग का कहना है कि इस नियम पर ध्यान नहीं दिया गया है तथा इसे लागू नहीं किया गया है।यह तर्क दिया गया है कि खनन उद्योग खनन प्रचालनों के लिए स्थानीय मजदूरों से सेवा लेता है एवं उन लोगों को नियोजन का अवसर देता है। तथापि यह दावा पूर्णतः खोखला है क्योंकि अभी खनन प्रचालन मुख्यतः यंत्रीकृत है। खान मालिक न्यूनतम से अधिक भुगतान नहीं करते हैं भले ही उनकी आय विलियन रूपयों से अधिक है। उचित मजदूरी देने का कोई विचार या इच्छा नहीं है। वस्तुस्थिति पर विचार करते हुए कहा कि उडीसा राज्य में बृहत स्तर पर गरीबी है तथा 77 प्रतिशत खानें वन क्षेत्रों एवं जनजातिय क्षेत्रों में हैं इसलिए खनन प्रचालनों से जनजातीय लोग निरंतर प्रतिकूल प्रभावित हो रहे हैं। उनकी सुरक्षा एवं उन क्षेत्रों का विकास करने के लिए राज्य सरकार , यदि अनुमति दी जाए, तो कुछ षुल्क या सेस लगा सकती है तब उक्त राशि को उन क्षेत्रो के विकास के लिए उपयोग किया जा सकता है।''

6. गरीबी

हाल ही में मध्य प्रदेश में गरीबी के कारण जनजातीय वर्ग के परिवारों में अपने बच्चों को गिरवी रखने का मामला सामने आया है।यह मामला डिडोरी जिले के देवरा गॉव है। जहॉ चंद रूपयों के खातिर यह किया गया। इसका कारण यह रहा कि वनो से अपना गुजर बसर नहीं कर पा रहेैं हैं। इसका खुलासा तब हुआ जब स्कूल चलो अभियान के तहत शिक्षकों का दल गॉव पहुचा। गाँव में जमींदारों के यहॉ पर 5 से 10 हजार रूपयों में बच्चों को गिरवी रखा गया। जहॉ पर इन बच्चों से जानवर चराने, घर पर कार्य कराना, खेत पर काम कराया जाता था।[16] भारत मे वन क्षेत्र भी अवैध खनन के कारण काफी कम हो रहे हैं। अशिक्षा के कारण रोजगार के अवसर भी काफी कम होने के कारण गरीबी का जीवन जनजाति समुदाय जी रहा है।

हाल ही में भारत में व्याप्त गरीबी के आकलन पर रिपोर्ट जारी हुई जिसमें यह उल्लेख किया गया कि भारत में इसका स्वरूप वंशानुगत हो गया है और आदिवासी व पिछडे इलाके वाले कभी भी गरीबी से बाहर नहीं आ पाएगें।17

जनजाति अधिकार संरक्षण एवं न्यायपालिका

जनजाति लोगों के मानवाधिकारों के संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। न्यायालय के द्वारा न केवल उनके अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया बल्कि समय समय पर केन्द्र व राज्य सरकारों को दिशा निर्देश भी जारी किये गये।

इस विशाल जनसंख्या वाले देश में निवास कर रहने अधिकांश अनसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति वर्गों को अपने अधिकारों व योजनाओं का ज्ञान ही नहीं है विशेषकर ग्रामीण एवं दूर दराज क्षेत्रों के अनसूचित जनजाति अध्ययन का जनजाति से सम्बन्धित सभी कानून व योजनाओं का समीक्षात्मक वर्णन कर कहाँ संशोधन की आवश्यकता है का विवेचन कर न केवल विधि जगत को बल्कि सभी अनसूचित जनजाति वर्गों को लाभ पहुचाना है वं इनके वर्तमान अधिकारों की समीक्षा करना है।

हमारे देश में विधायका द्वारा अनसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति वर्गों के लिए कानून तो बना दिये गये हैं। किंतु अधिकांश इन वर्गों अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण कानूनों का नहीं जान पाते हैं। यद्यपि अनसूचित जाति एवं अनसूचित जनजाति के लोगों को सामाजिक जीवन में अनेक अधिकार प्राप्त है किंतु वे इन अधिकारों का व्यवहार में प्रयोग नहीं कर पाते हैं।,

वर्तमान समय में जनजाति अपनी संस्कृति व सभ्यता को अक्षण बनाए रखना खतरे में है। जैसे अंडमान निकोबार द्वीप पर जारवा आदिवासी महिलाओं को भोजन का लालच देकर जारवा विदेशी पर्यटकों के सामने अर्द्धनग्न नृत्य करवाया गया। जिसका विडियो बनाकर इंटरनेट पर जारी किया गया। मानवता को शर्मसार करने वाली घटना है। इस प्रकार इनके शोषण के साथ साथ मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। इनके आत्मसम्मान की रक्षा होनी चाहिए। सरकार द्वारा इनको आर्थिक सहायता प्रदान कर इनके अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए।[18] उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार जारवा जनजाति क्षेत्र में कोई नहीं जा सकता है। टी.एन.गोडावरमन थिरूमलपाड **बनाम भारत संघ** मामले में उच्चतम न्यायालय ने 2002 में जारवा लोगों की सुरक्षा के लिए अंडमान ट्क रोड बंद करने का आदेष दिया। न्यायालय का यह निर्णय जारवा जनजाति संस्कृति ,रहन सहन ,खानपान के संरक्षण के साथ साथ उनके मानवाधिकारों की दिशा में मील का पत्थर साबित होगा। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में यह निर्देश दिया कि जारवा आदिवासियों के इलाके में किसी को जाने की अनुमति नहीं है। इस क्षेत्र में कुछ कम्पनियां विदेशी पर्यटकों को घुमाने ले जाती हैं एवं स्थानीय प्रशासन

व पुलिस की लापरवाही से इस इलाके में भोजन का लालच देकर जारवा जनजाति के लोगों का अर्द्धनग्न नृत्य देखा जाता है। इस प्रकार इनके शोषण के साथ साथ मानवाधिकारों का हनन हो रहा है। इनके आत्मसम्मान की रक्षा होनी चाहिए। सरकार द्वारा इनको आर्थिक सहायता प्रदान कर इनके अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। भारत के राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद 240 के तहत संघशासित क्षेत्रों में जनजातियों के संरक्षण एवं विकास के कदम उठाने का अधिकार देता है।

भारत में अंडमान निकोबार द्वीप में पाई जाने वाली विश्व की एकमात्र जारवा जनजाति के प्रति पर्यटकों का इनके प्रति दृष्टिकोण को डां बजरंग बिहारी तिवारी ने अपनी अंडमान यात्रा में जारवा जनजातियों के बारे में कहा कि *''कारों में बैठे 'जेंटलमैन' जारवाओं की तरफ ब्रेड, नमकीन, बिस्कुट के पैकेट ऐसे उछाल रहे थे जैसे कुछ लोग चिडियाघरों में कर्मचारियों की नजर बचाकर जानवरों की तरफ खाद्य सामग्री उछाला करते हैं। कितना दया भाव, कितनी हिकारत भरी थी उस उछालने की क्रिया में। इन सभ्य लोगों ने प्रयत्न करके जारवा आदिवासियों को लालची बनाने का काम किया है और निरन्तर कर रहे हैं। उनका स्वाभिमान, उनकी आत्म निर्भरता, उनकी जीवन शैली का कोई मूल्य नहीं। जारवा युवतियां कमर से ऊपर कोई कपडा नहीं पहनती हैं। तमाम लोलुप निगाहें उनके तन को बिधती दिखी।''*[19]

भारत में जनजातियों के अधिकारों के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं राष्ट्रीय महिला आयोग का प्रावधान संवैधानिक निकाय के रूप में किया गया है।

1. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

89 वॉ संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग का सृजन संविधान में अनुच्छेद 338 क जोडकर किया गया। इसका मुख्य उदे्श्य जनजातियों के हितों की रक्षा करना ।

2. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग–

जीवन सें संबंधित अधिकारों, आजादी, समानता , व्यक्तिगत गरिमा जिनकी प्रत्याभूति संविधान एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में दी गई है, जो भारतीय न्यायालयों द्वारा लागू किए जा सकते हैं की सुरक्षा करना राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का उदे्श्य है। इसकी स्थापना 1993 में की गई। मानवाधिकार आयोग द्वारा अनुसूचित जाति एवं जनजातियों

के अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन वर्गों की शिकायतों पर उचित कार्यवाही की गई। समय–समय पर कार्यशालाएं आयोजित कर इनके अधिकारों के बारे में अवगत कराया जाता है। केरल राज्य के व्यानाद जिले में आदिवासी परिवारों पर पुलिस की गोलीबारी में 16 आदिवासियों की मृत्यु हो गयी थी। इस मामले में आयोग की सिफारिशों के बाद सी.बी.आई. द्वारा जांच की गई।[20]

मीडिया में रिपोर्ट आई थी कि छत्तीसगढ़ के धुनधुट्टी रामपुर पंचायत के आदेश के अनुसरण में जिला कोरबा के गांव घौराबाठा में पिछले 14 महीनों से आदिवासी परिवार सामाजिक बहिष्कार का सामना कर रहे हैं। अभिकथित तौर पर 25 फरवरी, 2013 को एक परिवार का सामाजिक बहिष्कार किया गया, जब सरपंच से दुर्व्यवहार के आरोप पर वह 10 हजार रुपये का जुर्माना देने में नाकामयाब रहा। अन्य परिवार को भी इसी प्रकार की नियति का सामना करना पड़ा, जब उसके एक सदस्य को सामाजिक रूप से बहिष्कृत परिवार के अन्य सदस्य के साथ बात करते हुए देखा गया था। सामाजिक बहिष्कार के कारण कोई भी उनसे बात नहीं करना चाहता था। उन्हें उनके मवेशी चराने से भी वंचित किया गया था। आयोग ने मीडिया की रिपोर्ट के बाद प्रसंज्ञान लिया और उचित कार्यवाही की।[21]

वर्तमान समय में अनुसूचित जनजाति वर्गों के मानवाधिकारों के हनन की घटनाएं बढती जा रही है जैसे अंडमान निकोबार द्वीप समूह में जारवा आदिवासियों के मानवता को शर्मसार करने वाली घटना सामने आई है। इसी प्रकार राजस्थान के बांसवाडा जिले की कुशलगढ तहसील के नाथपुरा गांव में पति की जान बचाने के लिए आदिवासी महिला को निर्वस्त्र होना पडा। यह घटना 13 मार्च 2012 की है। झारखंड में खानों में काम करने में जनजातियों की शोषण की घटनाओं इस बात का सबूत हैं कि आज भी मानवाधिकारों का हनन बदस्तूर जारी हैं।

3. राश्ट्रीय महिला आयोग

महिलाओं के संवैधानिक एव विधिक हितों की सुरक्षा के लिए 1990 आयोग का गठन किया गया। प्रथम राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन 31 जनवरी,1992 को हुआ। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं की शिकायतों, जिनमें शारीरिक हिंसा भी शामिल है, शिकायतों का निपटारा करता है। आयोग प्रतिवर्ष अपनी रिपोर्ट संसद को भेजता है।

वैश्विक परिदृश्य : जनजातियां

वर्तमान में वैश्वीकरण के दौर में जहॉ सभी जातियों का विकास हुआ वहीं जनजातियों को विस्थापन, प्रवासी श्रमिकों के रूप में पलायन हुआ जिसके कारण अपनी भाषा एवं संस्कृति से दूर हो रहे है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के द्वारा इनको विदेशों में ले जाया गया। तकनीकि ज्ञान की कमी के कारण जनजातियों को केवल श्रमिक के रूप में कार्य दिया जाता है। जिसमें इनको मजदूरी भी काफी कम मिलती है। जिससे जीवनयापन भी बडी मुश्किल से होता है, इनके बच्चे बाल श्रमिक के रूप में कार्य करते देखे जा सकते है। आज श्रम मंत्रालय की रिपोर्ट के ऑकडे देखे जाएं तो बाल श्रमिकों की संख्या में सर्वाधिक जनजातिय वर्ग से हैं। राजस्थान के दक्षिणी जिले डूंगरपूर, उदयपुर, बॉसवाडा, सिरोही, जालौर, प्रतापगढ आदि जिलों से गुजरात ,महाराष्ट्र आदि जिलों में गाडियों में भरकर बालकों को ले जाया जाता है। वैश्विक परिदृश्य में महिलाओं की स्थिति तो अत्यंत दयनीय है। मानव तस्करी के मामलों में जनजातीय महिलाओं की सर्वाधिक होती है, दैहिक शोषण की घटनाएं सर्वाधिक हुई है। बेरोजगारी की बढ़ी है। असंगठित क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकांशतः श्रमिक जनजाति श्रमिक है।

लेकिन वर्तमान में सरकार ने जनजातियों के संरक्षण के लिए कानून तो बनाये हैं, लेकिन उनका कार्यान्वयन सही तरीके से नहीं हो रहा है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का प्रयास सार्थक रहा है। आयोग के द्वारा समय –समय पर संगोष्ठियों का आयोजन किया जाता है बल्कि आयोग के समक्ष मामला आने पर शीघ्र निपटारा किया जाता है। आयोग के समक्ष मामले को गंभीरता से लिया जाता है। अंतः में यही कहा जा सकता है कि भारत में जनजातियों के मानवाधिकारों का हनन तभी रोका जा सकता है जब उनको शिक्षित किया जाए । जागरूक किया जाए। कानूनों की विस्तृत रूप से जानकारी दी जाए। स्वास्थ ,कुपोषण व गरीबी को ध्यान में रखते हुए रोजगार के अवसर इन क्षेत्रों में सृजन किया जाए तथा विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए तथा इनके औषधीय संबंधी परंपरागत ज्ञान का उपयोग किया जाए।

* * * * *

संदर्भः

1. योजना, जनवरी 2014, संपादकीय लेख ,सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,भारत सरकार,नई दिल्ली, पेज 5
2. अक्षेन्द्र नाथ सारस्वत –सामाजिक न्याय मानवाधिकार और पुलिस, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
3. Indigenous peoples means “ Indigenous communities, peoples and nationa are those which, having a historical continuity with pre-invation and pre-colonial societies that devolved on their territories, consider themselves distinct from their sectors of socities

now prevailing in those territories , or part of them". (Asia –pecific journal of social science, Vol. 1(1), Jan-june 2009,pp.118)

4. मानवशास्त्र : रामनाथ शर्मा व राजेन्द्र कुमार शर्मा ,एटलॉटिंक पब्लिकेशन एवं डिस्ट्रीब्यूटर्सस ,नई दिल्ली। "*A Tribal is a collection of families or group of families bearing a common name, member of which occupy the same territory ,speak the same language and observe certain taboos regarding marriage, profession or occupation and have developed a well assessed system of reciprocity and mutuality of obligation* "D.N. Majumdar, Races and cultural of India, Asia Publishing House, Bombay (1956) p. 355

5. केरल राज्य एवं अन्य बनाम चन्द्रमोहन, आपराधिक अपील संख्या 240/1997 निर्णय दिनांक 28.1.14.

6. विष्णुकान्त–जनजातिय विकास में कार्यरत अन्तराष्ट्रीय श्रम संगठन एक संक्षिप्त परिचय, मेवाड जर्नल आफ लीगल स्टडीज,टवसण्गप 2006.07 पेज 133

7. दैनिक नवज्योति, जोधपुर संस्करण, 26 मई 2012

8. फरवरी 2012,मानवाधिकार समाचार पत्रझारखण्ड में आर्थिक तंगी, अवैध कोयला खनन तथा हत्या (मामला सं0 164/34/4/2012)

9. **ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 975**

10. राष्ट्रीय सहारा 18 मई 2012

11. **हिन्दू 20 मई 2012**

12. ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 1834

13. 13 मार्च 2012, राजस्थान पत्रिका

14. 11 जनवरी 2012 द हिन्दू

15. **आदिवासी महिलाओं का सशक्तीकरणः समस्याएं एवं संभावनाएं, पेज. 30, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, नई दिल्ली।**

16. 2 अगस्त,2014 राजस्थान पत्रिका, मध्य प्रदेष संस्करण– हे भगवान चंद रूपयों की खातिर गिरवी रख देते हैं अपने बच्चे !

17. http://www.bhartiyapaksha.com/2011/07/02/

18. 11 जनवरी 2012 द हिन्दू

19. अरावली उद्घोष, जून 2010 अंक 88 पेज 33

20. **वार्षिक रिपोर्ट 2007.08 पेज 71**

21. आदिवासी परिवारों का सामाजिक बहिष्कार (मामला सं0 307/33/10/2014), **मानव अधिकार समाचार पत्र जून 2014**

जनजातियों का विकास एवं भविष्य

* पंकज कुमार

भारत की जनजातियाँ ही यहाँ की आदिवासी तथा मूलतः निवास करने वाली जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके जीवन–यापन का ढंग वर्तमान में भी प्राचीन पद्धतियों से ही संचालित होता आ रहा है। अब भले ही कुछ जनतियों ने स्थायी ढंग से कृषि, पशुपालन आदि कार्यों में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया है किन्तु इनकी अधिकांश जनसंख्या शिकार करने, मछली पकड़ने, लकड़ी काटने आदि कार्यों द्वारा ही जीवन–निर्वाह करती है। भारत में जनजातीय समुदाय के लोगों की काफी बड़ी संख्या है और देश में 50 से भी अधिक प्रमुख जनजातीय समुदाय है।

भारत में जनजातीय समुदायः

अनुसूचित जनजाति के लोगों को मुख्यरूप से आदिवासी कहा जाता है जो देश के विभिन्न भागों में बसे हुए हैं। इसमें उत्तरी, केंद्रीय, उत्तर–पूर्व व भारत के दक्षिणी क्षेत्र षामिल है। 50 से अधिक आदिवासी समुदायों को मिलाकर अनूसूचित जनजाति का गठन किया गया है जो धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से अलग तो है हीं साथ ही अलग–अलग बोलियाँ भी बोलते है। भारत की स्वतंत्रता के तीन वर्ष बाद वर्ष 1950 में अनूसूचित जनजाति वर्ग की स्थापना की गई थी। ताकि देश के विभिन्न आदिवासी समूहों को एक वर्ग के अंतर्गत लाकर उनकी समस्याओं का समाधान किया जा सकें और भारतीय समाज के मुख्यधारा से उन्हें जोड़ा जा सकें। आदिवासी समाज का भौगोलिक एवं सामाजिक रूप से अलग–थलग रहने का इतिहास रहा है और अपने क्षेत्र में उनका राजनीतिक प्रतिनिधित्व नगण्य है। साथ ही, विकास के दौर में भी वे काफी पीछे हैं। हाल ही में भारत सरकार ने बहु प्रतीक्षित ''जनजातीय विधेयक'' पारित किया

* समाज कार्य विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

है जो आदिवासी समुदाय को वन भूमि पर उनके अधिकारों को वैधता प्रदान करता है ताकि उसके माध्यम से वे अपनी जीविका चला सकें। जनजातीय समाज प्रकृति के सरंक्षक है तथा प्रकृति एवं संस्कृति के मध्य सेतु का कार्य करते हैं।

9 अगस्त को अंतरराष्ट्रीय जनजातीय दिवस मनाया जाता है।

विभिन्न नामों से सम्बोधितः

भारतीय जनजातियों को विद्वानों द्वारा अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया गया है, जैसे आदिवासी, पहाड़ी जनजातियाँ, जंगली आदिवासी, प्राचीन जनजाति, जंगल निवासी, पिछड़ा हिन्दू, विलीन मानवता आदि। भारतीय संविधान में इन्हे 'अनुसूचित जनजाति' कहा गया है जबकि वर्तमान में इनको आदिवासी, वन्यजाति, अरण्यवासी, गिरिजन आदि अनेक नामों से जाना जाता है। भारतीय जनजातियों का मूल स्रोत कभी देश के सम्पूर्ण भू–भाग पर फैली प्रोटो आस्ट्रेलियाड तथा मंगोल जैसी प्रजातियों को माना जाता है। इनका एक अन्य स्रोत नीग्रिटों प्रजाति भी है जिसके निवासी अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में अभी भी विद्यमान हैं।

जनजातीय जनसंख्या एवं साक्षरताः

जनजातीय जनसंख्या के वितरण पर यदि ध्यान दिया जाय तो तीन मुख्य क्षेत्र स्पष्ट होते हैं, जो निम्नलिखित हैं। **(1) उत्तरी एवं उत्तरी–पूर्वी प्रदेश** – इसमें हिमालय के तराई क्षेत्र, उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं। देश की लगभग 80 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या इसी क्षेत्र में निवास करती है। मध्य प्रदेश, दक्षिण राजस्थान, आन्धप्रदेश, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार, उड़ीसा आदि राज्य इसी क्षेत्र में आते हैं। **(2) मध्यवर्ती क्षेत्र** – इसके अन्तर्गत प्रायद्वीपीय भारत के पठारी तथा पहाड़ी क्षेत्र सम्मिलित किये जाते है। देश की लगभग 80 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या इसी क्षेत्र में निवास करती है। मध्य प्रदेश, दक्षिण राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, दक्षिणी उत्तर प्रदेश, गुजरात, बिहार, उड़ीसा आदि राज्य इसी क्षेत्र में आते हैं। **(3) दक्षिणी क्षेत्र** – इसके अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल तथा तमिलनाडु का जनजातीय क्षेत्र शामिल हैं। यह भारतीय जनजातियों के सबसे प्राचीन स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। इन तीन प्रमुख क्षेत्रों के अतिरिक्त अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में भी एकांकी रूप से कुछ विशिष्ट जनजातियाँ जैसे ओंग, ओंग, जारबा, उत्तर सेण्टिनली, अण्डमानी, निकोबारी आदि भी पायी जाती है।

1991 जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजातियां देश की 8.08 प्रतिशत यानि 67.76 मिलियन आबादी है। अनुसूचित जनजातियां देश में खासकर वनों एवं पहाड़ी क्षेत्रों में बसी हुई हैं। 1991 जनगणना आंकड़ों के अनुसार 42.02 प्रतिशत अनुसूचित जनजातियां मुख्य कामगार थीं, जिनमें से 54.50 प्रतिशत किसान तथा 32.69 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे। इस प्रकार, इन समुदायों में से लगभग 87 प्रतिशत मुख्य कामगर, प्राथमिक क्षेत्र की गतिविधियों में संलग्न थे। अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता 52 प्रतिशत औसत राष्ट्रीय की तुलना में 29.60 प्रतिशत के आसपास थी। तीन–चौथाई से अधिक अनुसूचित जनजाति की महिलाएं निरक्षर थीं। यह असमानता औपचारिक शिक्षा के दौरान स्कूल छोड़ने की वजह से है जिसके परिणाम स्वरूप उच्च शिक्षा में कम प्रतिनिधित्व है। आश्चर्यजनक नहीं है कि इसका कुल प्रभाव यह है कि गरीबी रेखा से नीचे अनुसूचित जनजातियों का अनुपात राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक है। वर्ष 1993–94 हेतु योजना आयोग द्वारा लगाया गया गरीबी का अनुमान यह दर्शाता है कि 51.92 प्रतिशत ग्रामीण तथा 41.4 प्रतिशत शहरी अनुसूचित जनजातियां गरीबी रेखा से नीचे रह रही हैं। भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति की शिक्षा एवं आर्थिक हित को बढ़ावा देने तथा सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा के लिए कई विषेश प्रावधान शामिल किए गए हैं। इन उद्देश्यों की पूर्ति जनजातीय उप–योजना नामक रणनीति द्वारा है, जिसे पांचवी पंचवर्शीय योजना की शुरुआत में अपनाया गया था। यह रणनीति जनजातियों के विकास हेतु राज्य योजना आवंटनों, केंन्द्रीय मंत्रालयोंधविभागों, वित्तीय एवं विकासात्मक संस्थाओं की योजनाओंध्कार्यक्रमों द्वारा निधियों के पर्याप्त प्रवाह को सुनिश्चित करती है। इस रणनीति का मुख्य आधार उन राज्यध्संघ राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में राज्यों संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा टीएसपी हेतु निधियों को तय कर सुनिश्चित करना है। अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए जनजातीय उप–योजना तैयार करने और इसे कार्यान्वयन करने से राज्यों संघ राज्य क्षेत्रों तथा केंद्रीय मंत्रालय विभागों के प्रयासों के अलावा जनजातीय कार्य मंत्रालय अनुसूचित जनजातियों को लाभ पहुंचाने हेतु कई योजनाएं एवं कार्यक्रम कार्यान्वित कर रहा है। साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति दर को निम्नलिखित तालिका में देखा जा सकता हैः–

	1961	1971	1981	1991	2001
कुल साक्षर जनसंख्या	24 %	29.4 %	36.2 %	52.2 %	64.84 %
अनुसूचित जनजातियों (एसटी) की जनसंख्या	8.5 %	11.3 %	16.3 %	29.6 %	47.10 %
ल महिला जनसंख्या	12.9 %	18.6 %	29.8 %	39.3 %	53.67 %
कुल अनुसूचित जनजातियों (एसटी) की महिला जनसंख्या	3.2 %	4.8 %	8.0 %	18.2 %	34.76 %

देश में कुल आबादी की 50 प्रतिशत अधिक की अनुसूचित जनजाति की आबादी वाले ब्लॉक या ब्लॉक के समूहों के लिए अब 194 एकीकृत जनजातीय विकास परियोजनाएं (आईटीडीपी) मौजूद हैं। छठी योजना के दौरान, आईटीडीपी क्षेत्रों के बाहरी इलाकों जहां 10,000 की कुल आबादी में से 5,000 अनसूचित जनजाति को जनजाति उप–योजना में संषोधित क्षेत्र विकास दृष्टिकोण (माडा) के तहत कवर किया गया था। अब तक देश में 252 माडा इलाकों की पहचान की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त, कुल 5,000 आबादी वाले 79 इलाकों की पहचान की गई है जिसमें 50 प्रतिशत जनजातियां हैं।

जनजातीय कार्य मंत्रालय इस मंत्रालय का गठन अक्टूबर 1999 में भारतीय समाज के सबसे वंचित वर्ग अनुसूचित जनजाति के एकीकृत सामाजिक–आर्थिक विकास के समन्वित और योजनाबद्ध उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया था। जनजातीय कार्य मंत्रालय, अनुसूचित जनजाति के विकास के लिए चलाई जा रही समग्र नीति, योजना और समन्वयन के लिए नोडल मंत्रालय है। जनजातीय कार्य मंत्रालय की गतिविधियां भारत सरकार (बिजनेस आवंटन) नियमावली, 1961 के तहत आवंटित विषयों से संबंधित हैं, इनमें निम्नलिखित शामिल हैंः–

1. अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा।
2. जनजाति कल्याणः जनजाति कल्याण योजना बनाना, परियोजना तैयार करना, अनुसंधान, मूल्यांकन, सांख्यिकी एवं प्रशिक्षण।
3. जनजाति के कल्याण के संबंध में स्वैच्छिक प्रयासों का संवर्धन और विकास।
4. अनुसूचित जनजातियां, जिसमें इन जनजातियां के छात्रों के लिए छात्रवृत्तियां शामिल हैं।

5. अनुसूचित जनजातियों का विकास 5(क) वन भूमियों पर अनुसूचित जनजातियों के वन आवास अधिकारों से संबंधित कानून सहित सभी मामले।

टिप्पणीः जनजातीय कार्य मंत्रालय अनुसूचित जनजातियों के विकास कार्यक्रमों के लिए समग्र नीति, आयोजना और समन्वय के लिए नोडल मंत्रालय है। क्षेत्र के कार्यक्रमों और इन समुदायों की नीति, आयोजना, निगरानी, मूल्यांकन आदि के विकास की योजनाओं के विषय में, इनका समन्वय संबंधित केन्द्रीय मंत्रालयोंधविभागों, राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासन का दायित्व होगा। प्रत्येक केन्द्रीय मंत्रालयधविभाग जो इस क्षेत्र से संबंध रखता है, नोडल मंत्रालय या विभाग होगा।

6. अनुसूचित क्षेत्रः असम के स्वषासी जिलों से संबंधित मामले, सड़कों एवं पुल और उस पर नौकाओं के काम को छोड़कर।

   भाग क में निर्दिष्ट संविधान की छठी अनुसूची के अनुच्छेद 20 की संलग्न तालिका में अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के लिए राज्यों के राज्यपालों द्वारा तैयार किए गए विनियम।

7. अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर आयोग रिपोर्ट देगा, और किसी भी राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिए आवश्यक योजनाओं को तैयार करने तथा कार्यान्वित करने के संबंध में निर्देश जारी करना।

8. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग।

9. अनुसूचित जनजातियों के संबंध में अपराधों से संबंधित आपराधिक न्याय के प्रशासन के आलावा सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) और अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति (अत्याचारों का निवारण) अधिनियम, 1989 (1989 का 33) का कार्यान्वयन।

जनजातीय मंत्रालय

अनुसूचित जनजातियों के विकास पर और अधिक ध्यान केंद्रित करने के उद्देश्य हेतु अक्टूबर 1999 को एक अलग मंत्रालय बनाया गया, जिसे जनजातीय मंत्रालय के नाम से जाना जाता है। यह नया मंत्रालय, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय में से बनाया गया है, जो कि अनुसूचित जनजातियों के विकास हेतु सभी नीति, आयोजना एंव कार्यक्रमों तथा योजनाओं के समन्वय के लिए नोडल मंत्रालय है।

मंत्रालय के अधिदेश में अनुसूचित जनजातियों हेतु सामाजिक सुरक्षा एवं सामाजिक बीमा, जनजातीय कल्याण आयोजना, परियोजना निरूपण, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण, जनजाति कल्याण हेतु स्वैच्छिक प्रयासों का विकास एवं संवर्द्धन तथा अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित कुछ मामले आदि षामिल हैं। इन समुदायों के क्षेत्रीय कार्यक्रम एवं विकास, नीति, आयोजना, निगरानी, मूल्यांकन आदि के समन्वय की जिम्मेदारी संबंधित केन्द्रीय मंत्रालय विभाग, राज्य सरकारें तथा संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों की है। इस क्षेत्र से संबंधित प्रत्येक केंन्द्रीय मंत्रालयधविभाग आदि नोडल मंत्रालय है। इन समुदायों के समग्र विकास हेतु जनजातीय कार्य मंत्रालय राज्य सरकारोंध्संघ राज्य क्षेत्रों प्रशासनों तथा विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों विभागों के प्रयासों का समर्थन एवं आपूर्ति करता है।

विभिन्न राज्यों में जनजातियों की स्थिति और उनका विकास

(झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड, केरल, दादरा तथा नगर हवेली, अंडमान निकोबार)

झारखण्डः झारखण्ड में जनजातियों को इन विभिन्न नामों से जाना जाता है जो इस प्रकार हैं– संथाल, असुर, बैगा, बन्जारा, बिरहोर, गोंड, हो, खरिया, खोंड, मुंडा, मल पहाड़िया, सोरिया पहाड़िया, चेरू लोहरा, उरांव, खरवार, कोल, भील।

खेरवारः ये अपने–आपको सूर्यवंशी क्षत्रिय मानते हैं और अपना उद्‌गम अयोध्या से बताते हैं। करुसा वैवस्वत मनु का छठा बेटा था। उसके वंशजों को खरवार कहते हैं।

मुंडाः ये खेरवारों से ही निकली जनजाति है। रामायण में उसके दक्षिण की ओर पलायन का उल्लेख है। महाभारत में मुंडों ने कौरवों का साथ दिया था और वे भीष्म की सेना में लड़े थे।

पलामूः पलामू जिले का जनसमुदाय मुख्यतः जनजातीय है। प्रमुख जनजातियों में खेरवार, चेरो, मुंडा, उरांव, बिरजिया और बिरहोर शामिल हैं। जनजातीय विश्वास और रीति–रिवाज जंगल के प्रति लोगों के बर्ताव को निर्धारित करते हैं। पलामू के जनजातीय समुदाय पवित्र वनों की पूजा करते हैं (सरणा पूजा)। वे करम वृक्ष (एडीना कोर्डिफोलिआ) को पवित्र मानते हैं और वर्श में एक बार करमा पूजा के अवसर पर उसकी आराधना

करते हैं। हाथी, कछुआ, सांप आदि अनेक जीव–जंतुओं की भी पूजा होती है। इन प्राचीन मान्यताओं के कारण सदियों से यहां की जैविक विविधता पोशित होती आ रही है।

छत्तीसगढ़: देश के सभी जनजातीय समुदाय की भी अपनी विशेषताएं हैं। इस सांस्कृतिक पहचान को महत्व देते हुए ही उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाया जा सकता है। जनजातीय समाज समग्र विकास और इसके हर पहलू को देखने के लिए सभी संबंधित विभागों एवं संस्थाओं को समन्वित रूप से कार्य करने की जरूरत है। यहां की सहरिया जनजाति घने जंगलों में गरीबी में जीवनयापन करती थी। उनके उत्थान के लिए विशेष परियोजना तैयार करने के लिए उनकी जीवन शैली एवं आजीविका आदि पर विस्तृत अध्ययन के दौरान एक रूचिकर तथ्य उभरकर प्रकट हुआ कि सहरिया जनजाति जहां निवास करती हैं उसके उत्तर में बुंदेलखण्डी तथा पश्चिम में राजस्थान की भाषा एवं बोलियां का प्रभाव था, लेकिन इसके बावजूद वे ब्रज भाषा का प्रयोग करते थे और जिसके ऐतिहासिक कारण थे।

जनजातीय समुदाय अनुवांशिकता की पवित्रता में विश्वास रखते हैं और इसलिए स्वयं को अपनी संस्कृति से जोड़े रखते हैं। सहरिया, पहाड़ी कोरवा, कमार, अबूझमाडिया जैसी विशेष पिछड़ी जनजातियों के कल्याण के लिए शासन द्वारा विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। हमें जनजातीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान को आगे बढ़ाने के लिए जहां लेखन कार्यो को बढ़ावा देने तथा दस्तावेजीकरण करने की जरूरत है, वहीं उनके रहवासी क्षेत्रों के समीप जलवायु के अनुरूप कौन–कौन सी फसल ली जा सकती है, इस पर भी कृषि वैज्ञानिकों को अनुसंधान करने की जरूरत है। हमें उनके जीवन एवं संस्कृति को समझने के लिए समग्र रूप से शोध एवं अध्ययन करने की जरूरत है तथा यह भी सुनिश्चित करना होगा कि इन अनुसंधानों का लाभ समाज को मिले।

आदिवासियों की अपनी परम्परागत बोली है जैसे गोंड की गोंडी बोली, अबूझमाडिया की माड़ी बोली, धुरवा की धुरवी, दोरला की दोरली, हल्बा की हल्बी, उरांव की कुडुख बोली, मुण्डा की मुण्डारी बोली, बैगा की बैगानी, कमार की कमारी, बिझवार की बिझवारी, कोरवा की कोरवा बोली आदि को बढ़ावा देने की जरूरत है। कला एवं शिल्प के बीच की दूरी को कम करने की जरूरत है। प्रदेश की हस्तकला एवं शिल्प उस क्षेत्र विशेष की संस्कृति, भौगोलिक संरचनाओं से जुड़ी रहती है तथा उनके जीवन का अभिन्न अंग होती है। शिल्प के महत्व को समझने के लिए उस क्षेत्र की विशिष्ट

संस्कृति को भी समझना होगा। दुनिया की तमाम सभ्यताएं प्रकृति के अनुरूप कृषक सभ्यताएं रही है। प्राकृतिक बातों के धीरे–धीरे समाप्त होने के कारण जीवन के आयाम बदल रहे हैं।

मध्य प्रदेशः सरकार के मुख्यमंत्री ने जनजातीय समुदाय के विकास एवं कल्याण के लिये अलग–अलग बनी समान उद्देश्यों वाली योजनाएँ एक साथ लाकर बड़ी एकीकृत योजना बनाने के निर्देश दिये हैं। उन्होंने कहा कि कम बजट की ज्यादा योजनाओं का अपेक्षित परिणाम एवं प्रभाव दिखाई नहीं देता। निगरानी एवं अन्य मैदानी व्यवस्थाओं में भी अतिरिक्त मानव संसाधन एवं ऊर्जा लगती है।

मुख्यमंत्री यहाँ मंत्रालय में अनुसूचित जनजाति कल्याण विभाग की समीक्षा कर रहे थे। मुख्यमंत्री ने कहा कि जनजातीय युवाओं के लिये रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध करवाने के लिये विशेष कार्य–योजना बनाने की जरूरत है। आवास इकाइयों के निर्माण पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। बताया गया कि विशेष जनजातियों, जैसे कोल, भारिया, बैगा, सहरिया आदि के लिये बने या प्रस्तावित विकास प्राधिकरणों की गतिविधियों की अलग से विशेष समीक्षा की जायेगी। श्री चौहान ने विभिन्न योजनाओं में जनजातीय समुदाय के हितग्राहियों के खातों में धनराशि जमा करवाने की प्रक्रिया की लगातार समीक्षा करने के निर्देष देते हुए कहा कि इस कार्य में किसी भी स्तर पर लापरवाही बर्दाश्त नहीं होगी। मुख्यमंत्री ने जनजातीय विद्यार्थियों के लिये हॉस्टल, आश्रम, स्कूल भवनों के निर्माण कार्य में तेजी लाने के निर्देश दिये। उन्होंने कहा कि थोड़ी सी धनराशि के लिये निर्माण कार्य अधूरा नहीं रहना चाहिए। उन्होंने इसके लिये पूल फंड स्थापित करने के निर्देश दिये। फंड का उपयोग ऐसे निर्माण कार्यों को पूरा करने में हो सकेगा, जो थोड़ी सी धनराशि के अभाव में अधूरे हैं। शिक्षण संस्थाओं में बेटियों के लिये अलग से शौचालय सुविधा के निर्देश दिये। उन्होंने आदिम–जाति कल्याण के लिये उपलब्ध राशि का बेहतर और रचनात्मक उपयोग करने को कहा ताकि जनजातीय समुदाय को पूरा लाभ मिल सके। उन्होंने शिक्षण–प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर भी निरंतर निगरानी रखने के निर्देश दिये।

मध्य प्रदेश जनजातीय संग्रहालय में 2 अगस्त से सात दिवसीय चित्र–शिविर का समापन 08 अगस्त 2014 को हुआ। शिविर के अंतिम दिन चित्रकला में रुचि रखने वाले युवा बड़ी संख्या में संग्रहालय पहुंचे। उन्होंने गोण्ड चित्रकला को बारीकी से देखा और समझा।

उत्तराखंडः थारू जनजाति" उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती नेपाल और उत्तराँचल के उधमसिंह नगर जनपद में मुख्य रूप से बसी हुई है। प्रत्येक जनजाति अपनी उत्पत्ति इतिहास के किसी श्रेष्ठ व्यक्ति से मानती है। "थारू जनजाति" के लोग स्वयं को भारतीय संस्कृति के स्वाभिमान के प्रतीक महाराणा प्रताप की सेना मानते हैं। थारू जनजातीय समुदाय के लोग पांच शताब्दी पूर्व गंगा की इस तलहटी में आकर बसे थे। जब मुगलों ने राजस्थान के राजपूताना राज्यों पर आक्रमण किया, और भारतीय सभ्यता को नष्ट करने के भरसक प्रयत्न किये। तब महाराणा प्रताप ने ही मुगलों से लोहा लेने का काम किया था। जब जयपुर के राजा मानसिंह ने मुगल राजा अकबर से संधि कर ली। महाराणा प्रताप का छोटा भाई भी, मुगलों से जा मिला। राजा मानसिंह ने मुगलों का सेनापति बन राणा पर आक्रमण किया. महाराणा प्रताप और मानसिंह के बीच हल्दीघाटी का ऐतिहासिक संग्राम हुआ। इस संग्राम में महाराणा की समस्त सेना मारी गयी। सेना के मारे जाने के पश्चात् महाराणा को स्थान–स्थान पर भटकना पड़ा। यही वह समय था जब मुगलों से त्रस्त राजपूताना राज्यों के 12 राजपरिवार हिमालय के तराई क्षेत्र में आकर बस गए। यहीं से थारू जनजाति की व्युत्पत्ति मानी जाती है।

थारू जनजाति की विशेषता– थारू जनजाति को सन 1967 में भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया था। थारू जनजाति के अंतर्गत 7 उपसमूह आते हैं राणा (थारू),बुक्सा, गडौरा, गिरनामा, जुगिया दुगौरा, सौसा, एवं पसिया. इन जनजातीय समुदायों के 12 गाँव उधमसिंह नगर जिले में हैं। थारू जनजाति के लोग स्वयं को थार भूमि का मूल निवासी मानते हैं।

थारू जनजाति की भाषा– थारू लोगों की अपनी एक पृथक भाषा है। यह भाषा लगभग हिंदी के ही समान है। इस भाषा पर राजस्थानी भाषा का भी व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। थारू लोगों की इस भाषा की कोई लिपि नहीं है।

थारू जनजाति में परिवार व्यवस्था– थारू जनजाति के लोगों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था देखने को मिलती है। थारू जनजाति पुरुष प्रधान जाति है। थारू जनजाति की संयुक्त परिवार व्यवस्था ही इस जनजाति की विशेषता है। थारू जनजाति के प्रत्येक गाँव में एक मुखिया(प्रधान) होता है. थारू जनजाति में समाज के वयोवृद्ध व्यक्ति को ही मुखिया बनाने की परंपरा रही है। गाँव का मुखिया ही झगड़ों का निपटारे और विवाह आदि मामलों का निर्णय लेते हैं।

पहनावा और रहन–सहन– थारू जनजाति की स्त्रियों की वेश–भूषा राजपूत रानियों के समान होती है। थारू स्त्रियाँ रानियों के संमान ही गहने पहनती हैं। थारू पुरुषों की भी वेश–भूषा राजपूत राजाओं के समान ही होती है। थारू जनजाति में बाल–विवाह की प्रथा रही है। थारू जनजाति में इस कुप्रथा का चलन मुगल आतताइयों के अत्याचारों के कारण हुआ था। मुगल आतताइयों से कन्याओं की रक्षा की खातिर इस समुदाय में बाल–विवाह की कुप्रथा ने जन्म ले लिया था। थारू समुदाय के लोग अब तक कच्चे मकानों में रहते थे, जो मिटटी की ईंटों, बांस, खरिया, छप्पर आदि से बनाये जाते थे. लेकिन समय बीतने के साथ ही थारू लोगों पर अजनजातीय प्रभाव पड़ना आरंभ हुआ, और थारू लोगों ने भी आधुनिक शैली से बने पक्के मकानों में रहना आरंभ कर दिया।

थारू जनजाति की संयुक्त परिवार व्यवस्था और विधवा विवाह की परंपरा आज के आधुनिक लोगों को भी कुछ सीख देने का काम करती है। थारू जनजातीय समुदाय आज भी भारतीय संस्कृति के स्वाभिमानी प्रतीक–पुरुष महाराणा प्रताप की जयंती को प्रतिवर्ष बड़े ही धूमधाम से मनाता है। थारू लोगों को गर्व है की वे महाराणा प्रताप के सैनिक हैं. सही अर्थों में कहा जाये तो थारू समुदाय ने महाराणा प्रताप की विरासत को बखूबी सहेजने का काम किया है। यह समुदाय आज भी महाराणा प्रताप के आदर्शों से प्रेरणा लेते हुए भारतीय संस्कृति को बचाने की लड़ाई लड़ रहा है।

केरलः केरल की पी.के. जयलक्ष्मी ने राज्य के नए मंत्रीमंडल में शामिल होकर एक नया इतिहास रच दिया है। वह राज्य में जनजातीय समुदाय से बनी पहली मंत्री हैं। वायनाड जिले के मननथावाडी से कांग्रेस विधायक 29 वर्षीया जयलक्ष्मी राज्य की सबसे कम उम्र की मंत्री भी बन गई हैं। उन्होंने मुख्यमंत्री ओमन चांडी के मंत्रिमंडल में शामिल होने के लिए 12 अन्य मंत्रियों के साथ शपथ ग्रहण की। जयलक्ष्मी स्नातक हैं और उन्होंने कम्प्यूटर साइंस में डिप्लोमा किया है। वह राजधानी तिरूवनंतपुरम से 550 किलोमीटर दूर स्थित पूर्वोत्तर के पहाडी जिले वायनाड के कुरिचिया जनजातीय समुदाय की सदस्य हैं।

दादरा तथा नगर हवेलीः दादर और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र में मुख्यतरू जनजातीय समुदाय निवास करते हैं। यहां के संग्रहालय में सजावटी गहने, संगीत वाद्य, मछली पकड़ने और शिकार करने के औजार, खेती तथा घरेलू कार्य की वस्तुएं और अन्य अनेक वस्तुएं रखी गई हैं। जीवन का जनजातीय चित्रण इनके वास्तविक आकार

के मॉडल, विवाह की पोशाक और रंग बिरंगे कार्यक्रमों की तस्वीरों द्वारा किया गया है। यह संग्रहालय पर्यटकों के बीच अत्यंत लोकप्रिय है और यहां मूल जनजातियों के साथ उनकी संस्कृति की झलक एक ही स्थान पर मिलती है।

अंडमान निकोबार अंडमान निकोबार में नंगे लोग रहते हैं। नंगे मर्द, बिन कपड़ों की महिलाएं. हालांकि नंगे मर्दों को देखने में किसी की दिलचस्पी नहीं रहती सो मजबूरन कपड़ों के बिना रहने वाली औरतों को विदेशियों की रासलीला के लिए नचाया गया। इत्तेफाकन ये महिलाएं जनजातीय समुदाय की थी. या फिर यूं कहें कि जनजातीय समुदाय का होने की वजह से ही इनके तन पर कपड़े नहीं थे. पेट में रोटी नहीं थी. और इसी रोटी के लिए इन्हें विदेषी सैलानियों के सामने बिन कपड़े नाचना पड़ा।

आरोप है कि विदेशी सैलानियों से इनकी रक्षा करने के लिए तैनात एक पुलिस वाले ने ही इन्हें पहले लालच देकर, तो फिर जबरन नचाया। मामला सामने आने के बाद केंद्र सरकार के कान खड़े हो गए। केंद्र सरकार ने स्पष्टीकरण मांगा है। जनजातीय मंत्री ने इसे घृणित बताया है तो कानून मंत्री ने इसे क्षमा योग्य न होने की बात कही है। केंद्र सरकार ने अंडमान निकोबार प्रशासन से यह स्पष्ट करने को कहा कि जनजातीय महिलाओं को कैसे पर्यटकों के सामने आपत्तिजनक अवस्था में नृत्य करने के लिए मजबूर किया गया। चारो ओर से इसके लिए दोषी व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई करने की मांग की। लेकिन इनके बदतर हालत के बारे में अब भी कोई चर्चा नहीं हो रही है। इनके कल्याण और जीवन स्तर को ऊपर उठाने के लिए जनजातीय मंत्रालय तक बना है। अब यही मंत्रालय और इसके मंत्री मामले को घृणित बता रहे हैं। लेकिन आजादी के सालों बाद भी जनजातीय की हालत कमोबेश जस की तस बनी हुई है।

राष्ट्रीय जनजातीय पुरस्कार योजना

जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति समुदाय के विकास के लिये अनुकरणीय योगदान देने वाले व्यक्ति स्वयंसेवी संस्था को राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। ये पुरस्कार प्रतिवर्ष खेलकूद, शिक्षा, संस्कृति और विज्ञान, तकनीकी, उद्यमिता, जैव विविधता संरक्षण सहित जनजातीय समुदाय के लिये अन्य क्षेत्र मंत किये गये उल्लेखनीय योगदान के लिये दिए जाते हैं।

राष्ट्रीय जनजातीय पुरस्कार योजना के तहत पुरस्कार के लिए 'अ.ब.स' श्रेणी निर्धारित है। श्रेणी 'अ' के तहत खेलकूद, शिक्षा, संस्कृति, विज्ञान, तकनीकी, उद्यमिता, जैव विविधता संरक्षण अथवा अन्य क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए प्रतिवर्ष दो जनजातीय व्यक्तियों, जिसमें एक महिला और एक पुरूष को दो लाख रूपए एवं ट्रॉफी प्रदान किया जाएगा। श्रेणी 'ब' के अन्तर्गत अनुसूचित जनजाति समुदाय के विकास हेतु अमूल्य योगदान देने वाले व्यक्ति अथवा स्वंयसेवी संस्था या अशासकीय संस्थाओं को पांच लाख रूपए नगद राशि एवं ट्रॉफी तथा प्रमाण–पत्र प्रदान किया जाएगा। श्रेणी 'स' में सर्वोत्कृष्ट निष्पादन करने वाले एकीकृत आदिवासी विकास परियोजना को दिया जाता है। इसके तहत् पांच लाख रूपए नगद तथा ट्रॉफी और प्रमाण–पत्र दिया जाता है।

जनजातियों के संवैधानिक अधिकार

अनुसूचित जनजाति के उत्थान के लिए भारतीय संविधान में विशेष व्याख्या की गई है। भारत सरकार समय समय पर विशेष कार्यक्रम और योजना प्रस्तावित करती रहती है। भारत में सैकड़ो जनजातियां पाई जाती है। एक जनजाति परिवारों या परिवारों के समूह का संकुल होती है, जिसका एक नाम होता है, जिसके सदस्य एक ही क्षेत्र में रहते हैं, विवाह और व्यवसाय से संबंधित कुछ निश्चित निषेधों का पालन करते हैं, एक ही भाषा बोलते हैं तथा लेन देन एवं कर्तव्यों के द्वारा बंधे हुए होते हैं। प्रत्येक जनजाति का अपना एक नाम होता है, सामान्य क्षेत्र, सामान्य भाषा और संस्कृति होती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 के प्रावधानों के तहत राष्ट्रपति के आदेशों द्वारा अनुसूचित जनजाति का निर्धारण किया जाता है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 8.2 प्रतिषत है। भारत के संविधान के अनच्छेद 366 (25) में अनुसूचित जनजातियों को परिभाषित किया गया है।

अनुच्छेद 342 (1) के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य केन्द्र शासित प्रदेश के संदर्भ में और राज्य के मामले में राज्यपाल से परामर्श के बाद जनजातियों या जनजातीय समुदायों या उसके समूहों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित कर सकते हैं। यह अनुच्छेद जनजाति या उसके समूह को उनके राज्य केन्द्र शासित प्रदेश में इन समुदायों को उनके लिए संविधान में प्रदत्त संरक्षण उपलब्ध करवाकर संवैधानिक हैसियत प्रदान करता है। इस सूची में किसी तरह का संशोधन संसदीय कानून की धारा 342 (2) के जरिए ही किया जा सकता है। संसद कानून बनाकर किसी भी जनजाति या जनजातीय समुदाय या उसके किसी समूह को अनुसूचित जनजाति या

उसके किसी समूह को अनुसूचित जनजातियों की सूची में जोड़ सकती है अथवा उससे हटा सकती है।

किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति घोषित करने के कुछ आधार होते हैं, जो इस प्रकार है आदिम विशेशता, भिन्न सभ्यता, सार्वजनिक समाज से दूरी या संपर्क का अभाव, भौगोलिक अलगाव।

अगर कोई जनजाति इन मापदण्डों पर खरी उतरती है तो उसे संबंधित राज्य की सरकार से परामर्श करके राष्ट्रपति के आदेश से अधिसूचना मे जोड़ा जा सककता है। जनजातियों को सूची से निकालने के लिए भी इसी प्रक्रिया का इस्तेमाल किया जाता है। हरियाणा, पंजाब तथा केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़, दिल्ली तथा पांडिचेरी में किसी भी समुदाय को अनुसूचित जनजाति में शामिल नहीं किया गया है।

अनुसूचित जनजातियों को सूची में शामिल करने या सूची से हटाने के दावों का फैसला करने के तौर तरीकों को सरकार ने जून 1999 में मंजूरी दे दी। भारत के संविधान में अनुसूचित जनजातियों के लिए दो प्रकार के प्रावधान है। पहले तरीके के प्रावधान के संरक्षण पर काम करते हैं और दूसरे प्रकार के प्रावधान उनके विकास से संबंधित है।

अनुच्छेद 15– इस अनुच्छेद के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरूध्द केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

अनुच्छेद 16 (4) संविधान के अनुच्छेद 16 (4) के अनुसार ऐसे किसी भी वर्ग को आरक्षण देने का प्रावधान है , जिसके बारे में राज्य को यह लगता है कि उसे सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। इसके अंतर्गत खुली प्रतियोगिता को छोड़कर अन्य तरीके से अखिल भारतीय आधार पर सीधी भर्ती से भरे जाने वाले पदों में अनुसूचित जनजातियों के लिए 7.5 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था है।

अनुच्छेद 17– असपृश्यता का उन्मूलन कर दिया गया और इसे अमानवीय अपराध घोशित किया गया।

अनुच्छेद 46– अनुसूचित जातियो और जनजातियोंकी शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा की जाए और इन्हें सभी प्रकार के शोशण तथा सामाजिक अन्याय से बचाया जाए।

अनुच्छेद 330, 332 और 334— इनके द्वारा संसद और राज्य के विधान मंडलों में 20 वर्ष तक के प्रतिनिधित्व की सुविधाएं देने की व्यवस्था की गई है।

अनुच्छेद 164— इसके अनुसार अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण के सभी विभागों और पृथक सलाहकार परिशदों की व्यवस्था की गई है।

जनजातियों के लिए योजनाएं

शिक्षा—अनुसूचित जनजाति छात्रों के लिए उच्च कोटि की शिक्षाः अकादमी वर्ष 2007—08 से प्रांरभ की गई अनुसूचित जनजाति के छात्रों हेतु यह एक केन्द्रीय क्षेत्र की छात्रवृत्ति योजना है जिसका उद्देश्य जनजातीय मंत्रालय द्वारा निर्धारित किए गए किसी भी संस्थान में डिग्री एंव स्नातकोत्तर में पढ़ने के लिए प्रतिभाशाली अनुसूचित जनजाति छात्रों को प्रोत्साहित करना है। छात्रवृत्ति राशि में ट्यूशन फीस, आवास एंव भोजन का खर्च, पुस्तक अनुदान और एक बार सभी उपकरणों के साथ कम्प्यूटर की खरीद शामिल होती है। इस योजना के तहत, 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि (2007—08 से 2011—12) के दौरान 13.83 करोड़ रूपये जारी कर 814 छात्रों को कवर किया गया। 2012—13 वित्त वर्ष के दौरान, 13 करोड़ रूपये के बीई के आलावा, 6.14 करोड़ जारी कर अभी तक 298 छात्रों को कवर किया जा रहा है।

शिक्षा—जनजातीय उप—योजना क्षेत्रों में आश्रम विद्यालयों की स्थापना : इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जनजाति सहित आदिम जनजातीय समूह को आवासीय विद्यालय उपलब्ध कराकर अनुसूचित जनजाति छात्रों में साक्षरता दर को बढ़ाना है। जिससे उन्हें देश की अन्य आबादियों के बराबर लाया जा सके। यह योजना 1990—91 से संचालित की जा रही है तथा वित्त वर्ष 2008—09 में संषोधित की गई। इस संशोधित योजना के तहत, राज्य सरकार को टीएसपी क्षेत्रों में लड़कियों के लिए आश्रम विद्यालय की स्थापना हेतु 100ः कोष उपलब्ध कराया जाता है। (जैसे—स्कूल बिल्डिंग, छात्रावास, रसोई एवं स्टाफ क्वार्टर) तथा साथ ही (मत्रांलय द्वारा समय—समय पर पहचाने गए) नक्सल प्रभावित टीएसपी क्षेत्रों में लड़कों के लिए भी आश्रम विद्यालय के निर्माण हेतु पूरा कोश उपलब्ध कराया जाता है।

आदिम जनजातीय समूह (पी.टी.जी) के विकास की योजना

17 राज्यों तथा 1 संघ राज्य क्षेत्र अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में कृषि हेतु पूर्व तकनीक, कम साक्षरता दर तथा घट रही या स्थिर आबादी के आधार पर 75 आदिम

जनजातीय समूह (पीटीजी) के रुप में पहचाना गया है। इन समूहों की असुरक्षा को देखते हुए, पी.टी.जी के संपूर्ण विकास के लिए एक केन्द्रीय क्षेत्र योजना वर्ष 1998–99 में शुरु की गई थी। यह योजना बहुत लचीली है और इसमें आवास, बुनियादी ढांचे का विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि संवितरणध्विकास, कृषि विकास, पशु विकास, सामाजिक सुरक्षा, बीमा, आदि शामिल हैं। 2007–08 के दौरान, ग्यारहवीं पंचवर्शीय योजना अवधि के लिए संबंधित राज्य सरकारोंध्संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा किए गए आधारभूत सर्वेक्षणों के माध्यम से व्यापक दीर्घकालिक 'संरक्षण एवं विकास (सीसीडी) योजना''–पी. टी.जी हेतु तैयार की गई। इन योजनाओं में राज्य सरकारों तथा गैर–सरकारी संगठनों के प्रयासों के बीच तालमेल हेतु की परिकल्पना की गई थी।

जनजातीय अनुंसधान संस्थान

आंध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, मणिपुर तथा त्रिपुरा में चौदह जनजातीय अनुसंधान संस्थान (टीआरआई) स्थापित किए गए हैं। ये संस्थान राज्य सरकारों को योजना संबंधी जानकारियां जैसे–अनुसंधान एंव मूल्यांकन अध्ययन, आंकड़ों का संग्रह, प्रथागत कानून का संहिताकरण तथा प्रशिक्षण, संगोश्ठियां तथा कार्यशालाओं का आयोजन में संलग्न है। इनमें से कुछ संस्थानों का संग्रहालय भी है जिसमें जनजातीय कलाकृतियों का प्रदर्शन किया जाता है।

जनजाति लड़कियों/लड़कों हेतु छात्रावास

जनजातीय लड़कियों की शिक्षा हेतु उनको बेहतर आवासीय सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से छात्रावास योजना तीसरी पंचवर्षीय योजना में शुरु की गई थी। इस योजना के तहत निर्माण कार्य हेतु राज्यों को लागत का 50 प्रतिशत तथा संघ राज्य क्षेत्रों को 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है। 1999–2000 के दौरान राज्योंध्संघ राज्य क्षेत्रों को 29 तथा 2000–2001 के दौरान 11 लड़कियों के छात्रावास के निर्माण हेतु निधियां निर्मुक्त की गई थीं। लड़कियों हेतु छात्रावास योजना के अनुसार ही लड़कों के लिए छात्रावास योजना 1989–90 में शुरू की गई थी। वर्श 2000–2001 के दौरान, 15 लड़कों के छात्रावास के निर्माण हेतु निधियां निर्मुक्त की गई थीं।

कम साक्षरता वाले जिलों में जनजाति की लड़कियों के बीच शिक्षा का सुदृढ़ीकरण

यह मंत्रालय की जेंडर आधारित योजना है। इस योजना का उद्देश्य पहचाने गए जिलों एवं ब्लॉकों में जनजातीय लड़कियों को 100ः नामांकन की सुविधा के माध्यम से,

विशेषतः नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में तथा आदिवासी जनजातीय समूह (पी.टी.जी) की आबादी वाले क्षेत्रों में सामान्य महिला जनसंख्या और जनजातीय महिलाओं के बीच शिक्षा के स्तर के अंतर को समाप्त करना तथा शिक्षा के अपेक्षित के परिवेश के सृजन द्वारा प्रारंभिक स्तर पर शिक्षा छोड़ने की दर को कम करना है। यह योजना इस तथ्य को स्वीकार करती है कि जनजातीय लड़कियों की साक्षरता दर में सुधार आवश्यक है जो उन्हें प्रभावी ढंग से सामाजिक–आर्थिक विकास में भाग लेने हेतु सक्षम बनाएगी।

इस योजना में 12 राज्यों और 1 संघ राज्य क्षेत्र के 54 पहचाने गए जिले शामिल है जहां अनुसूचित जनजाति की आबादी 25ः या उससे अधिक है तथा 2001 जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता दर 35ः से या इसके भाग कम है। इसके अतिरिक्त, उपरोक्त 54 जिलों के अलावा, अन्य जिलों में मौजूद जनजातीय ब्लॉक या खंड, जहां कि जनजातीय आबादी 25ः या उससे अधिक हो तथा जनजातीय महिलाओं की साक्षरता दर 2001 जनगणना के अनुसार 35ः या इसके भाग से कम हो, को भी शामिल है। यह योजना पी.टी.जी क्षेत्रों को भी कवर करती है तथा नक्सलवाद से प्रभावित क्षेत्रों को भी प्राथमिकता देती है। यह योजना राज्योंध्संघ राज्य क्षेत्रों के गैर–सरकारी संगठनों तथा स्वायत्त समितियों द्वारा कार्यान्वित की जाती है। इस योजना में सर्व शिक्षा अभियान या शिक्षा विभाग की अन्य योजनाओं के अंतर्गत चल रहे विद्यालयों के साथ जुड़े छात्रावासों के संचालन तथा रखरखाव की परिकल्पना की गई है। जहां ऐसे विद्यालय की सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, ऐसी स्थिति में इस योजना में आवासीय तथा विद्यालय शिक्षा सुविधा के साथ एक पूर्ण शैक्षिक परिसर स्थापित करने का भी प्रावधान है। अनुसूचित जनजाति की लड़कियों को बढ़ावा देने हेतु इस योजना में शिक्षण, प्रेरणा एवं आवधिक पुरस्कार देने का भी प्रावधान है। यह योजना निर्माण लागत प्रदान नहीं करती है। इसमें तय वित्तीय मानदंडों का प्रावधान है। योजना में 100ः नामांकन सुनिश्चित करने, शिक्षा छोड़ने की दर को कम करने, रोगनिरोधी एवं स्वास्थ्य शिक्षा की व्यवस्था करने तथा गैर–सरकारी संगठनों के कार्य निष्पादन की निगरानी आदि जैसे विभिन्न कार्यों हेतु जिला शिक्षा सहायक एजेंसी (डी.ई.एस.ए) जो गैर–सरकारी संगठन या गैर–सरकारी संगठनों का संघ है, की स्थापना की भी परिकल्पना की गई है। एनजीओ के प्रस्ताव राज्य सरकार के माध्यम से भेजे जाने चाहिएं तथा राज्य संघ राज्य क्षेत्र के जनजातीय कल्याण विकास विभाग के प्रधान सचिव की अध्यक्षता में गठित ''स्वैच्छिक प्रयासों के समर्थन हेतु राज्य समिति'' की सिफारिश अनिवार्य है। राज्य समिति की सिफारिशें केवल उस वित्तीय वर्ष के लिए वैध हैं।

जनजातियों के लिए कोचिंग

वंचित और सुविधाहीन परिवारों से आने वाले अनुसूचित जनजाति के छात्रों को सामाजिक और आर्थिक रूप से लाभप्रद पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में मुश्किल होती है। अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए एक से अधिक स्तरों पर खेल के मैदानों को बढ़ावा देने और उन्हें प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल होने के बेहतर मौके देने के लिए, जनजातीय कार्य मंत्रालय वंचित अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों के लिए गुणवत्ता प्रशिक्षण संस्थानों योजनाओं का समर्थन करता है ताकि वे सफलतापूर्वक नौकरियोंध्व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के लिए प्रतिस्पर्धा परीक्षाओं में प्रवेश के सक्षम बन सके।

इस योजना के तहत अनुसूचित जनजाति के छात्रों के लिए विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं जैसे सिविल सेवाएं राज्य सिविल सेवाएं यू.पी.एस.सी द्वारा ली जाने वाली अन्य परिक्षाएं जैसे सी.डी.एस, एन.डी.ए आदिध्व्यवसायिक पाठ्यक्रम जैसे चिकित्सा, इंजीनियरिंग, व्यवसाय प्रशासन/बैंकिंग/कर्मचारी चयन आयोग/रेलवे भर्ती बोर्ड/बीमा कंपनियों आदि के लिए मुफ्त कोचिंग दी जाती है। वर्ष 2007–08 के दौरान योजना के वित्तीय मानदंडों को संशोधित किया गया है। यह योजना कोचिंग अवधि के लिए प्रत्येक अनुसूचित जनजाति के छात्र को 1000 रू. का मासिक वजीफा और बाहरी प्रत्येक अनुसूचित जनजाति छात्र को 2000 रू. का भोजनव्यवस्था/अस्थायी आवास शुल्क कवर करती है।

जनजातियों के कल्याण के लिए कार्यरत स्वैच्छिक संगठनों को सहायता अनुदान

इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्वैच्छिक संगठनों (वी.ओ)/गैर–सरकारी संगठनों (एन.जी.ओ) के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने का पानी, कृषि उद्यान उत्पादकता, सामाजिक सुरक्षा आदि सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की पहुंच बढ़ाने और कम सेवा वाले आदिवासी क्षेत्रों में इन सेवाओं के अंतर को समाप्त करने, सामाजिक–आर्थिक उत्थान और अनुसूचित जनजातियों (अजजा) के समग्र विकास के लिए परिवेश प्रदान करना है। कोई अन्य नया सामाजिक–आर्थिक विकास या अनुसूचित जनजातियों की आजीविका सृजन पर प्रत्यक्ष प्रभाव को भी स्वैच्छिक प्रयास माना जा सकता है।

इस योजना के तहत मंत्रालय 90% अनुदान प्रदान करता है और 10% लागत गैर–सरकारी संगठनों को स्वयं के संसाधनों से वहन करना होती है, ऐसे अनुसूचित

क्षेत्रों को छोड़कर जहां 100ः लागत सरकार वहन करती हो। यह योजना आवासीय विद्यालयों, गैर–आवासीय विद्यालयों,10 या उससे अधिक बिस्तरों वाले अस्पतालों,मोबाइल औषधालयों,कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र आदि जो इस योजना के तहत कवर होते हैं निम्नलिखित परियोजनाओं को प्रदान करती है एवं तय वित्तीय मानदंडों को निर्धारित करती है। यह योजना कोई भी निर्माण लागत प्रदान नहीं करती है।

एनजीओ के प्रस्तावों को राज्य सरकार के माध्यम से भेजना आवश्यक है तथा राज्य संघ राज्य क्षेत्र के जनजातीय कल्याण विकास विभाग के प्रधान सचिवध्सचिव की अध्यक्षता में गठित 'स्वैच्छिक प्रयासों के समर्थन हेतु राज्य समिति' की सिफारिश अनिवार्य है। केवल उस वित्तिय वर्ष के लिए राज्य समिति की सिफारिशें मान्य है जिसके लिए यह की गई हैं।

जनजाति के छात्रों हेतु मेट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति

इस योजना का उद्देश्य मान्यता प्राप्त संस्थानों से मान्य मैट्रिकोत्तर पाठ्यक्रम कर रहे अनुसूचित जनजाति के छात्रों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। इस योजना में व्यावसायिक, गैर–व्यवसायिक, तकनीकी, गैर–तकनीकी पाठ्यक्रमों तथा दूरस्थ एंव सतत शिक्षा पत्राचार पाठयक्रम भी शामिल है, यह योजना राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों द्वारा कार्यान्वित की जाती है जो प्रतिबद्धदेयता के अलावा 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता प्राप्त करते हैं जिसे इन्हें अपने बजटीय प्रावधानों से पूरा करना होता है। प्रतिबद्धदेयता योजना अवधि के अंतिम वर्ष में व्यय के बराबर होती है।

तदनुसार, दसवीं योजना अवधि अर्थात 2006–2007 के अंतिम वर्ष में किया गया व्यय, राज्य संघ राज्य क्षेत्रों के लिए प्रतिबद्धदेयता बन जाता है जिसे 11वीं पंचवर्षीय योजना अवधि के प्रत्येक वर्ष में स्वयं वहन करना आवश्यक है। पूर्वोत्तर राज्य हेतु वर्ष 1997–98 से प्रतिबद्ध देयता की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया है। यह योजना 1944–45 से चलाई जा रही है।

जनजातियों के भविष्य

जनजातीय समाज की वास्तविक स्थिति देश के सामने है। जनजातीय समुदाय के नुकसान का दंश पूरा देश झेल रहा है! हमें वास्तविक स्थिति को स्वीकार कर अपनी कमजोरी को पहचान, उससे आगे बढ़ने का संकल्प लेना चाहिए। आर्थिक प्रक्षेत्र में विकास के लिए व्यवस्थित स्वरूप के साथ हमें आगे बढना होगा। उनकी चिंता करनी

होगी जिन्होंने आदिम सभ्यता व संस्कृति को बचाने का काम किया है। जनजातीय समाज जहां भी है वहाँ पेड़–पौधे सहित अकूत प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध भूमि है। जिस तरह पर्यावरण के बिना जीवन संभव नहीं है, उसी तरह उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के भविष्य की चिंता के बिना विकास संभव नहीं हैं। सरकार भी प्रतिबद्धता के साथ इनके विकास के लिए कार्य कर रही है।

एक समृद्ध परंपरा, पर्यावरण से जुड़ी जीवन शैली स्वाभिमानी एवं जूझारू तेवर वाला जनजातीय समाज आज शोध का विषय बन गया है, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। जनजातीय समाज ने संघर्ष किया है, परंतु समझौता नहीं किया है। जिनकी सरल एवं सहज जीवनशैली रही है, वे आज दया के पात्र बनते जा रहे हैं, यह दुरूखद पहलू है। इस विषय पर गंभीरता के साथ विचार करने की आवश्यकता है।

दूसरे जनजातीय लोग जिन्होंने अपने घर खो दिए, वे हताशा से मर रहे हैं, और उनका नाश हो रहा है। इससे पहले वे अपनी जमीन पर खेती कर रहे थे, लेकिन अब बेरोजगारी में शराब की लत के शिकार हैं। जब जनजातीय लोगों की जमीन छीन ली जाती है, तब उनकी आत्मनिर्भरता, गरिमा और वह सब कुछ जो उनके जीवन को समृद्ध करता है, छिन जाता है। वे सब से गरीब बन जाते हैं। जनजातीय लोगों की जमीनें अब भी चुराई जा रही है, उनके अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है, और उनके भविष्य को नष्ट किया जा रहा है। और अब आदिवासी लोगों की भूमि–अधिकारों की रक्षा के लिए बना महत्वपूर्ण कानून खतरे में है। यह नहीं होना चाहिए। सिर्फ जनजातीय लोगों को ही फैसला करना चाहिए कि उन्हें अपनी जिंदगी कैसे बितानी है और उनकी जिंदगी में कैसा बदलाव होना चाहिए। उनकी जमीन ही उनकी मदद कर सकती है, न केवल उनकी, बल्की उनके बच्चों की भी मदद कर सकती है। वे साल में दो या तीन बार फसल उगाते है।

अतः, निश्चित तौर पर जनजातीय समुदाय के लोगों के लिए विशेष ध्यान देने की जरूरत है और इनके विकास को राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा से जोड़ा जाना चाहिए। राष्ट्रीय विकास के नाम पर जनजातीय समुदाय के लोगों से बडी कीमत वसूली जा चुकी है, उदहारण के तौर पर जिस तरह बड़े– बड़े बांध बनाये गए, कारखाने स्थापित हुए, खानो की खुदाई की गई उससे इस समुदाय के लोगों को जल, जमीन एवं जंगल से अलग कर विस्थापन को मजबूर कर दिया गया और इस समुदाय के छिन्न–भिन्न होने से इनकी संस्कृति भी प्रभावित हुई। विकास की ऐसी योजना बननी चाहिए जिससे

कुटीर उद्योग की स्थापना हो और बड़ी कंपनियों के शेयर में इस समुदाय के लोगों का हिस्सा हो। जिस तरह से हम आगे बड़ते जा रहे हैं नई तकनीक व संसाधनों का प्रयोग, सुख–सुविधा, मॉल से शॉपिंग, हवाई यात्रा आदि तो क्यू न हम ये सारी सुख सुविधा उन लोगों को मुहैया करायें? क्यू हम इस समुदाय के लोगों को जंगल में छोड़कर एक म्यूजियम तैयार करना चाहते हैं? क्या इसीलिए की हम किसी को बता सके कि एक ऐसा समुदाय है जो जंगल में रहता है और जिनका रहन–सहन हमसे बिलकुल अलग है। हमें इस रूढ़िवादी मानसिकता से बाहर निकलकर जनजातीय समुदाय के लिए ठोस पहल और प्रयास करना होगा तभी इनका भविष्य उज्जवल बन पायेगा।

* * * * *

जनजाति समुदाय : मानव अधिकारों की स्थिति

*** चमन लाल**

मैं इसे अपने जीवन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानता हूँ कि मुझे जनजाति समुदायों को करीब से देखने और समझने–सराहने के अनेक अवसर मिले हैं : अपनी नौकरी के दौरान और रिटायरमेंट के बाद भी। आधुनिक जीवन की समान्य सुख सुविधाओं से वंचित अभाव तथा अपर्याप्तता की ज़िंदगी जीने वाले ये लोग अपनी जीवनशैली और सशक्त जीवन मूल्यों के दम पर इंसानियत के बेहतरीन नमूने ठहराये जा सकते हैं। पिछले तीन दशकों में नक्सली हिंसा की चपेट में खींच लिए गए जनजाति समुदाय प्रकृति से संपूर्ण सामंजस्य बनाकर उन्मुक्त ढंग से जीने में विश्वास रखते हैं। जीवन की किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति में रुष्ट या अप्रसन्न होना इन अद्भुत प्राणियों के स्वभाव का अंग नहीं है। जनजाति समुदायों से जुड़े अपने तीन अनुभवों का संक्षिप्त उल्लेख मैं इस लेख में करना चाहता हूँ।

बस्तर क्षेत्र

जनजाति जीवन से मेरा प्रथम परिचय बस्तर (मध्य प्रदेश) में 1981–85 में हुआ था। मध्य प्रदेश पुलिस के वायरलैस – चीफ़ की हैसियत से संपूर्ण प्रदेश मेरे कार्यक्षेत्र में पड़ता था। बस्तर तब मात्र एक जिला था, प्रदेश के कुल 45 जिलों में से एक जो क्षेत्रफल में केरल प्रदेश से भी बड़ा था। बस्तर और इसके पड़ौसी जिले – रायपुर, बिलासपुर एवं रायगढ़ जनजाति बहुल इलाके थे। पुलिस संचार व्यवस्था की निगरानी के सिलसिले में मैं साल में दो–तीन बार इन ज़िलों का व्यापक भ्रमण करता था। घने जंगलों और छोटी–छोटी पहाड़ियों वाले इस क्षेत्र के मूल निवासी गोंड, माड़िया, मुड़िया आदि (45) जनजाति के सदस्य हैं। बांस और मिट्टी से निर्मित सुंदर–साफ सुथरी झोपड़ियों में ये लोग स्वच्छ और स्वच्छंद जीवन जिया करते थे। थोड़ी बहुत खेती,

* पूर्व विशेष संपर्ककर्त्ता, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं वरिष्ठ सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी, दिल्ली

यदा–कदा जंगली जानवरों के शिकार से तथा जड़ी–बूटियों को सेवन से इनकी ज़िंदगी की बुनियादी जरूरतें पूरी हो जाती थीं। वन तथा खनिज संपदा के दोहन तथा अन्य विकास के लिए गठित सरकारी तंत्र के विस्तार और जनजाति जीवन में उसके बढ़ते दखल को मैंने ध्यान से देखा है। मैं देखा करता था कि जगह–जगह स्कूल खोले गए हैं; बाहर ये लाए अध्यापकों के वेतन नियमित हैं पर उपस्थिति अनियमित; बच्चों की हाज़िरी कम है और ड्राप–आउट रेट बहुत ज्यादा। सरकारी स्वास्थ्य सेवाएं दूसरे ज़िलों की तरह मौजूद हैं – सी.एच.सी., पी.एच.सी., सबसेन्टर लेकिन न मेडिकल स्टाफ दिखाई देता है न दवाइयां। राशन की दुकाने भी चालू हैं लेकिन वितरण केन्द्रों तक पहुंचने से पहले ही खाद्य सामग्री गायब हो जाती है।

बस्तर क्षेत्र से संबंधित मेरी भेजी एक ख़बर मेरे प्रेरणा स्त्रोत विख्यात पुलिस अधिकारी के. एफ. रूस्तम जी को बहुत रोचक लगी थी। जनजाति क्षेत्र के विकास के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने एक विशेष संस्था का गठन किया था जिसका अंगरेजी नाम था – ट्रायबल एरिया डेवलेपमेन्ट ऑथारिटी (टी.ए.डी.ए.) यह संस्था अक्षरशः अपना नाम – टी.ए.डी.ए. चरितार्थ कर रही थी। सरकारी कर्मचारियों का ट्रेवलिंग अलाउंस/डेली अलाउंस। बस्तर में तैनात अधिकतर अधिकारी भोपाल से ही ऑपरेट करते थे। वे टूर प्रोग्राम बनाते और दोस्तों तथा रिश्तेदारों को ट्रायबल एरिया की अजायबघरी दुनिया दिखाने के लिए साथ ले जाते। उनकी सुविधा के लिए नई सड़कें बनी, पुरानी सड़कों का जीर्णोद्धार हुआ। बड़ी संख्या में रेस्ट हाउस और सर्किट हाउस बनाए गए और उनको खुले दिल से साज़–सामान से लैस किया गया। आदिवासी लोगों की हालत में कोई बदलाव नहीं आया मैं सोचा करता था कि इन सब पर व्यय की गई राशि को यदि जनजाति परिवारों में बांट दिया जाए और उसके समुचित उपयोग की व्यवस्था की जाए तो उनके जीवन में कितना सुधार आ सकता था।

एक अन्य दुःखांत तथ्य मैं बड़ी शिद्दत के साथ नोट किया करता था। सरकारी विभाग – विशेषतः वन विभाग तथा सार्वजनिक निर्माण विभाग, स्थानीय आदिवासियों से ही मजदूरी के सारे काम कराते थे। वे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम तथा अन्य श्रम अधिनियमों का खुलकर उल्लंघन करते थे। सरकारी तंत्र के अलावा प्राइवेट ठेकेदारों द्वारा भी कुत्सित बेगार–प्रथा धड़ल्ले से चल रही थी। एक और घिनौना पहलू था इस विकास की कहानी का–आदिवासी महिलाओं का दैहिक शोषण। अधिकतर सरकारी कर्मचारी बस्तर या किसी अन्य जनजाति जिले में तैनाती पर अपने परिवार भोपाल या पैदायशी जिले में छोड़ जाते थे। काम के स्थान पर और पदस्थता की अवधि के लिए

किसी आदिवासी महिला को, उसके शराबी पति या पिता को एक क्षुद्र राशि देकर, पत्नी बनाकर अपने साथ रख लेते थे।

उन्हीं दिनों बस्तर क्षेत्र में नक्सली आंदोलन की शुरूआत के आसार दिखाई देने लगे थे। आंध्र प्रदेश के सीमावर्ती जिलों से नक्सली युवक–युवतियों की आवाजाही की ख़बरें आने लगी थी। मध्य प्रदेश सरकार ने बिना पर्याप्त सोच–विचार के हड़बड़ी में यह निर्णय ले लिया कि इस क्षेत्र के लिए मध्य प्रदेश सशस्त्र पुलिस की अतिरिक्त इकाइयां खड़ी की जाए। मैं, मात्र एक डी.आई.जी. पुलिस और वह भी टेकनीकल विंग का, किसी प्रभावी दखलअंदाजी के काबिल नहीं था। तो भी कुछ असरदार लोगों से विचार–विमर्श किया तथा पाया कि प्रदेश के वित्त–सचिव श्री शिवरामन (बाद में भारत सरकार में वित्त सचिव बने) भी यही सोच रहे थे कि समस्या का हल पुलिस फोर्स बढ़ाने में नहीं है, आदिवासी लोगों की उन शिकायतों को समझने और दूर करने में हैं जिनकी वजह से आंध्र प्रदेश के साहसी समर्पित युवा उनके दिलों में जगह बना रहे थे। नक्सली हिंसा या आतंकवाद अलगाववाद की समस्या को इस दृष्टिकोण से देखने वाली सोच का सरकारी स्तर पर अंततः क्या होता है, यह सर्वविदित है।

नागालैंड

सितंबर 1993 से फरवरी 1996 तक मैं नागालैंड के महानिदेशक पुलिस के पद पर आसीन रहा। नागालैण्ड को मीज़ोरम की तरह, जनजाति बहुल प्रदेश के बजाए, जनजाति प्रदेश कहना अधिक उपयुक्त होगा। यहाँ की आबादी का लगभग 90ः अनुपात जनजाति है। नागा समुदाय 50 से अधिक जनजातियों में बंटा है जो नागालैंड मणिपुर तथा म्यानमार में बसी हुई है। नागालैंड के सभी (16) जनजाति समुदायों को मैंने करीब से देखने की कोशिश की है। प्रदेश के सभी (12) जिलों का विस्तष्त और कई बार दौरा किया। शरीर से हृष्ट–पुष्ठ, हंसमुख स्पष्टवादी नागा लोग स्वच्छंद प्रकषति तथा उज्जवल चरित्र के लिए जाने जाते हैं। नागा स्वतंत्रता के लिए उनका सशस्त्र संघर्ष जो 1997 से युद्ध विराम की स्थिति में हैं, दुनियां की सबसे पुरानी इन्सर्जेन्सी माना जाता है। इसका मुख्य कारण 'प्रत्येक गांव एक गण तंत्र' की परिकल्पना पर सदियों से संचालित नागा समाज का भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था से सामजंस्य स्थापित नहीं कर पाना है।

मैंने नागा लोगों को–मर्द, औरत, बच्चे बूढ़े–हर हाल में प्रसन्न और संतुष्ट देखा है। गरीबी नापने का कैलोरी इनटेक या उपभोग व्यय पर आधारित आम तरीका नागा

समाज की निर्धनता को उजागर नहीं कर सकता। नागा समाज में कोई भूखा, बेघर या बेसहारा नहीं मिलेगा। अनाथ, निर्बल और निराश्रय व्यक्तियों की देखभाल की जिम्मेदारी पूरे गांव की होती है।

लोकसभा तथा विधानसभा के नियमित चुनावों के माध्यम से देश की मुख्यधारा का अंग बन जाने के बावजूद मैंने नागा राज्य के लोगों को सरकार द्वारा दी जाने वाली सेवाओं तथा सुविधाओं के लाभ से वंचित पाया है। मैं देखता था कि प्राइमरी से लेकर कालेज तक की शिक्षा सुविधाएं स्थापित हैं पर कोई अर्थपूर्ण परिणाम नहीं देती। स्कूल लगभग हर बड़े गांव में मिलेगा पर गणित तथा विज्ञान के अध्यापक बहुत कम स्कूलों में होंगे। स्कूली शिक्षा का स्तर कमजोर होने की वजह से नागा लड़के—लडकियाँ अन्य प्रदेशों के उच्च शिक्षा संस्थानों में आरक्षित सीटों का पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इसका फायदा नागालैण्ड में तैनात भारत सरकार के कर्मचारी विशेषतः सुरक्षा बलों के सदस्यों के बच्चे ले लेते हैं। सरकारी स्वास्थ्य सुविधाएं संख्या और सामर्थ्य क्षमता के हिसाब से निर्धारित मानदंडो पर कम नहीं थी। लेकिन प्रायमरी हेल्थ सेंटर और सब सेंटर सब जगह चालू दिखाए जाते थे पर काम नहीं करते थे। दवाइयों और उपकरणों की खरीदारी का केन्द्रीकरण करके समस्त आबंटित राशि का उपयोग विभाग के कोहिमा स्थित मुख्यालय पर ही हो जाता था तथा फील्ड यूनिट की सप्लाई नाम मात्र ही होती थी। दीमापुर में बनाई जा रही विशाल रेफ़रेल अस्पताल की इमारत का काम 90ः स्तर पर पहुंचकर रूक गया था क्योंकि शेष बची 10ः राशि से मिलने वाली कमीशन की तुच्छ मात्र में किसी की भी रूचि नहीं थी। यही हाल और कई सरकारी इमारतों का था जो निर्माण के 90ः स्तर पर पहुंचने के बाद भुला दी जाती थीं। बाद में मैंने जाना कि सरकारी निर्माण कार्यों का यह विचित्र लक्षण उत्तर पूर्व के अन्य राज्यों की विशिष्टता भी था।

यह सच है कि नागा औरतें और उनके बच्चे स्वस्थ और हृष्ठ—पुष्ठ दिखाई देते थे लेकिन इसका श्रेय उनकी उत्तम जीवनशैली और पर्यावरण की मेहरबानियों को जाता है, न कि सरकारी स्वास्थ्य तंत्र की कार्यकुशलता को। स्वास्थ्य सेवाओं की कार्यक्षमता का सही आंकलन तो लगभग हर जिले में आयोजित होने वाली मलेरिया की मौतों से हो जाता था। मुझे याद आ रहा है, मैंने एक बार अपने पुलिस कर्मियों की मलेरिया से होने वाली मष्यु के आंकड़ों से विचलित होकर राज्य के मुख्यमंत्री को अपनी चिंता व्यक्त की थी। उनका निर्जीव सटीक जवाब था : ”डी0 जी0 पी0 साहब आप 11

सिपाहियों की मौत से घबरा गए। आपको पता है, दीमापुर में पिछले महीने 31 लोगों की जान मलेरिया ने ली थी।" मतलब, मैं कमजोर दिल पुलिस अफसर 11 मौतों से विचलित हो गया जबकि भारी संख्या में आम नागरिकों की मष्त्यु के ग़म से सरकार के मुख्यिा की नींद में कोई खलल नहीं पड़ रहा था।

मैंने नागा समाज में कहीं असमानता नहीं देखी। मानवीय गरिमा के मानदण्ड पर सभी बराबर पाये सत्ता और संपत्ति के अंतर के बावजूद। सबकी सामाजिक हैसियत एक सी थी। लेकिन व्यक्तिगत संपत्ति की असामनता जो नई लोकतांत्रिक व्यवस्था की देन है, साफ नजर आने लगी थी। पारंपरिक मूल्यों से विमुख होकर लोग इसका प्रदर्शन भी करने लगे थे।

जहां जन साधारण के लिए सक्षम स्वास्थ्य सेवाओं का नितांन अभाव था, शासन एवं प्रशासन के लोग और सरकारी ठेकों की बदौलत अपार धन बटोरने वाले चंद नागा परिवार साधारण सी अस्वस्थता के लिए देश के अन्य प्रदेशों के, सुपर स्पेश्यालिटी अस्पतालों का इस्तेमाल करते थे। विशेषतः चेन्नई अपोलो अस्पताल का। मुझे लगता है कि नागालैंड का हर सीनियर, आई.ए.एस., आई.पी.एस. अधिकारी सालाना मेडिकल चैक अप कराना अपने प्रति अपनी संवैधनिक बाध्यता मानता था। इसका परिणाम था सरकारी विभाग के संबंधित मद में आबंटित बजट का एक बड़ा हिस्सा चंद सीनियर अफसरों पर पूरा खर्च होजाता था और अधीनस्थ कर्मचारियों के साधारण छोटे–छोटे क्लेम पेंडिग पड़े रहते थे।

कोहिमा से बाहर अन्य जिलों का भ्रमण करते हुए सड़क की यात्रा के दौरान मैं अपने लिए एक रोचक खेल चुन लिया करता था। मैं रास्ते में दिखाई देने वाले नागा व्यक्तियों में उनकी गिनती करता जो नंगे पांव नहीं होते थे, किसी न किसी किस्म का जूता पहने मिलते थे। उनका अनुपात कभी भी 5–10ः से अधिक नहीं होता था। दूसरी तरफ मैं दीमापुर में संभ्रात नागा लोगों की बढ़ती संख्या देखता था। एक बार दीमापुर एयरपोर्ट पर अपनी शादी की तैयारी में जुटी एक मिनिस्टर की 17 वर्षीय सुंदर, अबोध लड़की ने बड़े उत्साह से मुझे कहा था, "डी.जी.पी. अंकल मैं पिछले सप्ताह बैंकाक गई थी अपनी शादी का गाउन खरीदने।" दीमापुर अब शासन तथा प्रशासन की महान हस्तियों के महलनुमा मकानों का शहर है जिनमें शयद ही कोई स्विमिंग पूल के बगैर होगा।

कर्नाटक जनजाति बहुल क्षेत्र

रिटायरमेंट के बाद राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में अवैतनिक सेवा के दौरान मैं कर्नाटक के एक जनजाति प्रकरण से जुड़ गया जिसका संबंध कबीनी बांध तथा बांदीपुर नेशनल पार्क के विस्थापित जनजाति समुदायों से था। 40 वर्ष से लंबित चले आ रहे पुनर्वास तथा पुर्नस्थापन के इस मामले में आयोग की सफलता उसकी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों में गिनी जाती है। आयोग द्वारा कराई गई पुनर्वास की व्यवस्था के अनुवीक्षण के सिलसिले में मैं मैसूर के हेगड़ देवन कोटे तालुक की एक स्वयंसेवी संस्था – विवेकानंद यूथ मूवमेंट के कामकाज में शरीक हो गया। अक्तूबर 2007 से सितंबर 2012 का अधिकतर समय मैंने इसी जनजाति बहुल क्षेत्र में बिताया जहां की कुल 9 अनुसूचित जनजातियों में पाँच –जेनू कुरुबा, काडूकुरूबा, यारवा, सोलीगा और पनिया मूलतः वनवासी हैं जो कबीनी बांध के निर्माण तथा बांदीपुर नेशनल पार्क की स्थापना से बुरी तरह से प्रभावित हुए थे। निस्वार्थ सेवा भाव से प्रेरित कुछ समर्पित आदर्शवादी डाक्टरों द्वारा चलाई जा रही स्वयंसेवी संस्था इन जनजाति परिवारों की शिक्षा स्वास्थ्य तथा रोजी–रोटी के क्षेत्र में सराहनीय काम कर रही थी। करीब 200 हाडी (आदिवासी बस्ती का स्थानीय नाम) में बसी 15000 की जनजाति आबादी के निकट संपर्क ने मुझे जनजाति जीवन की चौंका देने वाली उन सच्चाईयों से रूबरू करा दिया था जो किसी अन्य माध्यम से मुझे नहीं मिलनी थीं।

शिक्षा की सरकारी व्यवस्था मुझे संख्या में ठीक लगी लेकिन स्कूलों के वास्तविक संचालन में नही। अध्यापकों की आम अनुपस्थिति, विद्यार्थियों, की हाज़िरी दर, ड्राप–आउट रेट, इनसे कोई अच्छी तस्वीर प्रकट नहीं होती। आदिवासी बच्चों के लिए खोले गए आश्रम स्कूलों की हालत तो और भी खराब पाई। भारत सरकार के आदिवासी कल्याण मंत्रालय द्वारा संस्वीकष्त स्कूलों को कर्नाटक सरकार ठेके पर दे देती थी न्यूनतम कोटेशन के आधार पर बिना यह देखे कि ठेका जीतने वाली संस्था को शिक्षा के क्षेत्र का कोई ज्ञान या अनुभव है भी या नहीं। इन सबका परिणाम है कि प्रायमरी कक्षा में भर्ती बच्चों में से 10ः बच्चे भी दसवीं परीक्षा पास नहीं कर पाते।

स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति मैंने विशेषतः दयनीय पाई। अधिकतर स्थानों पर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा उपकेन्द्र स्केल के मुताबिक उपलब्ध है पर डॉक्टर तथा नार्सिंग स्टाफ नहीं है। जहां है, वहां फीस वसूल की जाती जो भोले–भाले आदिवासी अनुचित नहीं मानते। वे इसे शहर की आरामपसंद जिंदगी त्याग कर पिछड़े हुए

आदिवासी क्षेत्र में काम करने वालों की जायज़ वसूली मानते हैं। कई सोचते हैं कि कुछ रकम देने पर ही सही और कारगर इलाज संभव होता है। इस जनजाति क्षेत्र के 75% बच्चे कुपोषण के शिकार हैं तथा लगभग शत–प्रतिशत महिलाएं अनीमिया की शिकार हैं। बच्चों के टीकाकरण का प्रतिशत भी मैसूर जिले की औसत दर से बहुत नीचे हैं। सरकारी दवाएं खरीदी तो जाती हैं पर रोगियों में बांटी नहीं जाती। सबसे दर्दनाक स्थिति तपेदिक की है। आदिवासी लोग तालुका की कुल जनसंख्या का 15% भाग है लेकिन 'डाट्स' कार्यक्रम के आंकड़े बताते हैं कि तपेदिक रोगियों में उनकी संख्या 60% से ऊपर है और 95% से अधिक तपेदिक की मौतें आदिवासी व्यक्तियों की हैं। इस विषय पर मेरी स्वंय सेवी संस्था के शीर्ष लोगो से भी कई बार अप्रिय बहस हो जाती थी। मुझे लगता था वे भी इस विषय को रूटीन ढंग से ले रहे थे तथा इसकी मर्मातंकता उनको छू नहीं रही थी। मुझे यह बात बहुत अखरती थी कि रोजी–रोटी से जुड़े कारणों से इलाज में अनियमितता बरतने के लिए वे बीमार आदिवासी को ही सारा दोष देते थे। जानते हुए भी वे इस तथ्य को नज़र अंदाज करते थे कि रूग्ण आदिवासी व्यक्ति को तपेदिक की स्ट्रांग दवाईयां लेने के साथ, दाल रोटी की रोजाना खुराक भी चाहिए जिसके लिए उसे 'डेलीवेजर' का शारीरिक श्रम करना पड़ता था। दुख की बात है कि सरकार की कल्याणकारी योजना में दवाए मुफ्त दी जाती हैं लेकिन खाने की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति का कोई प्रावधान नहीं हैं।

भारत सरकार की एकीकृत बाल विकास सेवा (आई.सी.डी.एस.) के तहत आंगनवाड़ी व्यवस्था भी जनजाति क्षेत्र में न होने के बराबर थी। 200 में से 10% से भी कम जनजाति बस्तियों में आंगनवाड़ी मौजूद मिली जब कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसार जनसंख्या के मानदण्ड को शिथिल करके प्रत्येक आदिवासी, हाडी में आंगनवाड़ी की व्यवस्था होनी चाहिए। रिकार्ड के मुताबिक अधिकतर हाडी में मुख्यग्राम की आंगवाड़ी का कवरेज प्रदान किया जा रहा है। हांडी से मुख्य ग्राम का फासला इतना है कि ज्यादातर आदिवासी परिवार अपने बच्चों को आंगनवाड़ी नहीं भेज पाते हैं। फलस्वरूप सभी आदिवासी, बच्चे पौष्टिक आहार प्रदान करने वाली आंगनवाड़ी सेवा की सुविधाओं से वंचित है।

खाद्य पदार्थों की जन वितरण प्रणाली की दशा भी यही दर्शाती है कि जाजाति समुदायों के हित के लिए चलाई जा रही योजनाओं का कार्यन्वयन भी कत्तई संतोषजनक नहीं है। मैं देखता था कि लगभग हर आदिवासी परिवार के पास अन्त्योदय राशन कार्ड

है। जिसके दम पर वह खास सस्ते दामों पर 28 किलोग्राम चावल, 7 किलो गेहूँ, 1 किलो चीनी और तीन लीटर मिट्टी का तेल खरीद सकता था। असल में, लाभ उठाने वाले परिवारों की संख्या 50: से भी कम थी। डीलर अपनी मर्जी से, बिना कोई सूचना दिए महीने में एक या दो बार वितरण के लिए हाडी में आता था। उस समय जो कार्ड धारी मौजूद हैं (मज़दूरी के लिए पति पत्नी दोनों रोज बाहर चले जाते हैं) तथा जिनके पास पर्याप्त धनराशि हैं पूरा राशन एक मुश्त खरीदने की, वही राशन प्राप्त कर सकते हैं। 2012 में पुराने राशन कार्ड निरस्त कर नए बायोमेट्रीक कार्ड बनाने का कार्यक्रम चला। मैंने कई ऐसे परिवार देखे जिनके पुराने कार्ड वक्त पर निरस्त कर दिए गए लेकिन नए कार्ड वक्त पर दिए नहीं गए और इस तरह उनकी पात्रता निलंबित हो गई। स्वयंसेवी संस्था के कार्यकर्त्ताओं ने ऐसे कई मामलों में सराहनीय हस्तक्षेप कर आदिवासी लोगों को राहत दिलाई।

समाजिक सुरक्षा जालतंत्र (नेटवर्क) के अंतर्गत निराश्रित वृद्ध व्यक्तियों, विधवाओं तथा विकलांगों के लिए चलाई जा रही सरकारी पेंशन योजनाओं का कार्यान्वयन भी जनजाति क्षेत्र में मैंने कहीं संतोषजनक नहीं पाया। पेंशन की राशि नियमित रूप से हर माह नहीं मिलती थी महीनों बाद इकट्ठी मिलती थी। बजट के नाम पर अचानक भुगतान बंद हो जाता था। जब चालू होता था तो कई एरियर छूट जाते थे। मुझे लगता था शायद ही कोई लाभार्थी अपने हक के मुताबिक पूरी राशि प्राप्त करता है। सबसे विचित्र बात तो यह थी कि मैंने कभी किसी आदिवासी को शिकायत करते नहीं पाया। चरम निर्धनता और विपन्नता में भी किसी को रोते हुए या कातर स्वर में अपनी दयनीय अवस्था ब्यान करते नहीं सुना। उपरोक्त तथ्य भी बड़े परिश्रम से उनसे सवाल—जवाब करके इकट्ठे किए गए थे। मुझे याद आता है कि एक महिला की जिसे महीनों पेंशन की राशि नहीं मिली थी न ही नया राशन कार्ड। आस पड़ौस के लोगों की मेहरबानी से वह कभी कभार कुछ खाकर खुद को जिंदा रखे हुए थी। मैंने जब उससे पूछा कि उसने स्वयंसेवी संस्था के किसी कर्मचारी को भी इसकी सूचना क्यों नहीं दी तो वह भाव शून्य चेहरे से मेरी ओर देखने लगी एकटक आँखों से। उसकी उस मुद्रा ने मुझे अंदर से हिला दिया था। अपने साथ हो रहे अन्याय की पीड़ा का उसके लिए लिए कोई विशेष महत्व नहीं था। न ही उसके उपचार की विशेष चाह या उसकी संभावना में उसका कोई विश्वास।

जनजाति समुदाय और मानव अधिकार

2011 की जनगणना के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अधिसूचित जनजातियों (संख्या 700 के लगभग) की जनसंख्या (104,281,034) भारत का कुल जनसंख्या (121,056,9573) का 8.6ः भाग है। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों को छोडकर 9 प्रदेश – आंध्र प्रदेश, झारखण्ड, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, ओडीशा तथा राजस्थान जनजाति बहुल प्रदेश हैं। इन प्रदेशों के जनजाति बहुल जिलों की संख्या 60 है। अनुसूचित जाति समुदाय की कुल आबादी का 75ः भाग मध्य भारत क्षेत्र में आता है, जबकि यह आबादी क्षेत्र की कुल आबादी का 10ः भाग ही है। जनजाति समुदाय की 10 वर्षीय जनवष्द्धि (2001–2011) दर 23.7ः थी जबकि पूरे देश की दस वर्षीय जनवृद्धि की दर 17.70 है। गौरतलब है कि 2001–2011 लिंग अनुपात पूरे भारत के लिए 933 से बढ़कर 943 हुआ जबकि जनजाति समुदाय में 978 से 990 की वष्द्धि दर्ज की गई। 0–6 वर्ष के वर्ग में लिंग अनुपात पूरे देश के लिए 927 से घटकर – 914 हो गया जबकि जनजाति समुदाय में 957 दर्ज किया गया। स्पष्ट है कि जनजाति समाज में नवजात शिशु के साथ लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता और लड़की का जन्म मातम का सबब नहीं होता।

यद्यपि जनजाति समुदाय के प्रति मेरी रूचि और उनसे जुड़े मुद्दों से मेरा सरोकार नौकरी के शुरू से ही था, इसका मानव अधिकार परिपरेक्ष्य मैंने आयोग में आने के बाद ही समझा। विशेषतः जस्टिस वेंकटचलय्या और जस्टिस जे एस. वर्मा के प्रेरणादायी सानिध्य से। मानव अधिकारों की अवधारणा की सही समझ मुझे आयोग से जुड़ने के बाद ही प्राप्त हुई। मानव अधिकारों का संबंध केवल अवैध गिरफ्तारी, अभिरक्षा में यातना या फर्जी मुठभेड़ जैसी पुलिस कुरीतियों से है, यह संकीर्ण किंतु आम प्रचालित सोच छोड़कर मैं इन अधिकारों के विस्तृत दायरे को समझने लगा जिसमें मानव गरिमा से जुड़ा व्यक्ति के विकास का हर मुद्दा शामिल है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, गरीबी भ्रष्टाचार ये सब मानव अधिकारों के ही मामले हैं। इस सोच से प्रेरित होकर ही मैं जनजाति समुदाय के लोगों की दुर्दशा मानव अधिकारों के परिप्रेक्ष्य से देखने लगा।

चरम गरीबी और पिछड़ेपन के शिकार जनजाति समुदाय संविधान द्वारा प्रदत्त उन सभी मूल अधिकारों से वंचित है जिनका संबंध जीवन, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा से है। संविधान निषिद्ध बंधुआ श्रम का अन्याय सहने वालों में 75% लोग अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग हैं। गरीबी की मार झेलने वालों (बी.पी.एल.)

का अनुपात भी इन समुदायों में 60% से अधिक है जबकि देश में गरीबी का आम अनुपात अब 27% आंका जा रहा है। असंगठित उद्योग का दो–तिहाई भाग भी इन्हीं समुदायों का हिस्सा है।

संविधान के अनुच्छेद 46 में राज्य को जनता के कमजोर वर्गों के, विशिष्टतया अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हितों की अभिवषद्धि करने और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार से शोषण से उनके संरक्षण की जिम्मेदारी दी गई है। सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 तथा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 इसी उत्तरदायित्व को निभाने के लिए बनाए गए हैं। दुख की बात है कि अनेक संवैधानिक, कानूनी तथा प्रशासनिक उपायों के बावजूद इन वर्गों की सिथति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है।

यह बात सच है कि शासन में मूलभूत बताए गए नीति निदेशक तत्वों की अवहेलना के फलस्वरूप देश की आम जनता भी आर्थिक तथा सामाजिक श्रेणी के मानव अधिकारों का पूरा लाभ नहीं उठा पा रही है। लेकिन समाज के कमजोर वर्गों खासतौर से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति समुदायों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। मैं यह भी सोचता हूँ कि जनजाति समुदाय की गरीबी और पिछड़ेपान को अलग से एक खास नजरिए से देखने की जरूरत है। जहां अनुसूचित जाति (दलित) वर्ग के लोगों का शोषण तथा उत्पीड़न सदियों पुराना है तथा उसके कई सामाजिक और धार्मिक कारण हैं, जनजाति समुदायों की गरीबी और बदहाली स्वतंत्र भारत की देन है। इनमें से लगभग सभी सदियों से स्वच्छंद, संतुष्ट, प्रकृति से सामंजस्यपूर्ण जीवन जी रहे थे। इन्हें तो देश की आजादी के बाद विकास की त्रुटिपूर्ण अवधारणा तथा उसके विनाशकारी कार्यान्वयन ने तबाह किया है। सरकार के अपने आंकड़े बताते हैं कि 60% आदिवासी, चरम गरीबी के शिकार है और 50% से अधिक आदिवासी जनता को विकास परियोजनाओं द्वारा बेदखल किया जा चुका है।

जनजाति समुदाय मानव विकास सूचकांक

जनजाति समुदाय की वंचना और पिछड़ेपन का जो वर्णन मैंने अपने निजी अनुभव के आधार पर किया है इसकी पुष्टि इनकी शिक्षा तथा जनस्वास्थ्य संबंधी मानव विकास सूचकांक से जुड़े आंकड़ों से भी हो जाती है जो इस प्रकार है :

स्वास्थ्य सूचक

नेशन फेमिली हेल्थ सर्वे – (2005–06)

सूचक	अनुसूचित जनजाति	राष्ट्रीय औसत
शिशु मृत्यु दर	62	57
बाल मृत्यु दर	35.4	18.4
एण्टीनेटल चैकअप (%)	70.5	77.1
संस्थागत प्रसव (इंस्टीट्यूशनल डिलवरी) (%)	17.7	38.7
संपूर्ण टीकाकरण (%)	31.3	43.5
महिलाओं में रक्ताल्पता (%) (अनियमित)	68.5	55.3

एक और महत्वपूर्ण स्वास्थ्य सूचक मातृमृत्युदर (एम.एम.आर.) का जून 2011 आंकड़ा भारत के लिए 212 है (प्रति 1,00,000 लाइव बर्थ), अनुसूचित जनजाति के लिए अलग से इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं है। अनुसूचित जनजाति महिलाओं का प्रसव से संबंधित मृत्यु दर राष्ट्रीय औसत (212) से कहीं अधिक है यह जनजाति बहुल प्रदेशों के एम.एम.आर. आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है जो इस प्रकार है :

छत्तीसगढ़ – 269, झारखण्ड – 261, मध्य प्रदेश – 269, ओडीशा – 258, राजस्थान – 318

गुजरात (148) और महाराष्ट्र (104) की स्थिति बहुत अच्छी है।

शिक्षा संबंधी आंकड़े (2011)

सूचक	अनुसूचित जनजाति	राष्ट्रीय औसत
साक्षरता दर (%)		
पुरूष	68.5	80.89
महिला	49.4	64.64

सकल भर्ती अनुपात (2010—11)		
प्राथमिक I-VIII	119.7	104.3
सेकण्डरी I-X	106.8	96.2
सीनियर सेकण्डरी (XI-XII)	28.8	39.3
उच्चतर शिक्षा	11.2	19.4
ड्राप आउट रेट		
I-V	35.6	27.0
I-VIII	56.0	40.6
I-X	70.9	49.3

परीक्षा परिणा (कक्षा X)

वर्ग	भाग लेने वालों की कुल संख्या (लाख)	पास संख्या (लाख)	पास %
समस्त वर्ग	167.2	125.4	75 %
अनुसूचित जाति	10.9	6.7	62 %

परीक्षा परिणाम (कक्षा XII)

वर्ग	भाग लेने वालों की कुल संख्या (लाख)	पास संख्या (लाख)	पास %
समस्त वर्ग	104.1	80.4	76.8
अनुसूचित जाति	5.9	4.0	67.2

यह गौरतलब है कि परीक्षा में बैठने वाले जनजाति वर्ग के विद्यार्थियों की संख्या X की परीक्षा में 5.3 % तथा XII की परीक्षा में 5.7 % है।

स्कूली शिक्षा में ड्राप आउट रेट (%) (अनुसूचित जनजाति)

वर्ष	कक्षा V	कक्षा I-VIII	कक्षा I-X
1990–91	62.5	78.6	85.0
2010–11	35.6	56	70.9

जनजाति समुदाय और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

वर्ष 2001–02 से आयोग में पंजीकृत शिकायतों की औसत सालाना संख्या एक लाख के आस पास है। वर्ष 2012–13 में कुल 1,07,655 शिकायतें दर्ज की गई थी। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों से प्राप्त होने वाली शिकायतें इकट्ठी एक शीर्ष में दिखाई जाती हैं। पिछले पांच वर्षों (2008–09 से 2013–14) में आयोग में पंजीकष्त कुल 5,26,029 शिकायतों में केवल 13520 (2.57 %) ही इन समुदायों से संबंधित है जबकि देश की कुल जनसंख्या का 24.4 % भाग इनसे गठित है। मानव अधिकारों के हनन के मामले में ये समुदाय आर्थिक तथा सामाजिक उत्पीड़न और शोषण की वजह से विशेषतः सुभ्देय (वल्नरेबल) है। तो भी इनसे संबंधित शिकायतों की इतनी कम संख्या का एक ही कारण मेरी समझ में आता है। अपने अधिकारों के प्रति इनमें समझ तथा जागरूकता की कमी और चुपचाप अन्याय सहने की इनकी आम आदत। कहीं–कहीं इसे हताशा की स्थिति भी पढ़ा जा सकता है। हालात की मार झेलते, ये टूटे हारे–लोग अपने जीवन में किसी तरह के बदलाव की संभावना सोच ही नहीं सकते। इसलिए आयोग के लिए ओर भी आवश्यक है कि वह अपनी मानव अधिकार साक्षरता के विकास तथा जागरूकता फैलाने संबंधी अपनी जिम्मेदारी पर और अधिक ध्यान दे तथा अपने प्रयासों को इन वर्गों पर केन्द्रित करें।

आयोग की विधि शाखा से प्राप्त जानकारी के अनुसार पिछले पांच वर्षों (2008–09 से 2013–14) में अनुसूचित जनजाति समुदाय के 4289 सदस्य मानव अधिकारों के हनन के शिकार के रूप में पंजीकृत किए गए। जो कुल मामलों (526029) का 0.82 % है। अनुसूचित जाति के सदस्यों का हिस्सा (51936) कुल का 9.87 % है। स्पष्ट है कि दलित वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता तथा न्याय पाने की उनकी लालसा तथा लगन सापेक्षतया अधिक है। मानव अधिकारों की शिकायते सही पाने के बाद आयोग पीड़ित व्यक्तियों के लिए मुआवजे की सिफारिश करता है। किन्तु पिछले पांच वर्षों में (2008–09 से 2013–14) में आयोग ने कुल 2554 मामलों में रुपए 713568586

के मुआवजे की सिफारिश की थी। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के सदस्यों का हिस्स इस प्रकार है –

कुल प्रकरण	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
2554	89 (3.48 %)	34 (1.33 %)
कुल मुआवजा	अनुसूचित जाति	अनुसूचित जनजाति
रु0 713568586	रु0 15560,000 (2.8 %)	रु0 13063000 (1.83 %)

अनुसूचित जाति (कुल जनसंख्या का 16.5 %) के हिस्से में मुआवजे की कुल राशि का 2.8 % तथा अनुसूचित जनजाति (कुल जनसंख्या का 8.6 %) के हिस्से में 1.83 % भाग आता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शोषण तथा उत्पीड़न के शिकार समाज के सुभदेय वर्गों के मानव अधिकारों के संरक्षण के मामले में अपनी भूमिका को प्रभावी बनाने के लिए आयोग को विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है।

केन्द्रीय सशस्त्र बल

अनुसूचित जनजाति समुदायों के मानव अधिकारों के हनन की शिकायतों से संबंधित एक और मुद्दा ध्यान देने योग्य है। अनुभव बताता है कि नागरिकों के मानव अधिकारों का हनन अधिकतर उन क्षेत्रों में होता है जहां पब्लिक आर्डर की गंभीर समस्याएं जैसे आतंकवाद, अलगाववाद और नक्सलवाद के विरूद्ध लड़ाई चल रही है। इन सब क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर केन्द्रीय सशस्त्र बल तैनात है जो स्वतंत्र रूप से तथा स्थानीय पुलिस के साथ मिलकर कार्रवाई करते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि सशस्त्र बलों के विरूद्ध प्राप्त शिकायतें कुल शिकायतों का मात्र 0.1 % भाग है। कारण स्पष्ट है। मानव अधिकारों के हनन से पीड़ित आम जनता कुछ डर की वजह से, पर मुख्यतः सशस्त्र बलों के मामले में आयोग के सीमित अधिकार क्षेत्र और सीमित पावर्स के कारण शिकायत करने से कतराती है। इस समय नक्सलवाद से प्रभावित 150 से अधिक जिलों में जनजाति समुदाय के सदस्यों के मानव अधिकारों का हनन सशस्त्र बलों के सदस्यों तथा उनके नियंत्रण में कार्यरत पुलिस कर्मियों द्वारा बड़े पैमाने पर हो रहा है। किंतु इन क्षेत्रों से आयोग में आने वाली, शिकायतों की सख्या नगणय है।

पंचायत उपबंध – अधिनियम एवं वन संरक्षण अधिनियम

अनुसूचित जनजाति समुदायों को राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक न्याय मुहैया कराने और उनके सर्वांगीण विकास की संवैधानिक जिम्मेदारी पूरी करने के उद्देश्य से

दो महत्वपूर्ण कानून बनाए गए हैं पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996 और जनजाति एवं अन्य पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम 2006।

पंचायत उपबंध अधिनियम (पी.ई.एस.ए.) (पेसा) का मकसद जनजाति क्षेत्रों में लोकतंत्र को जनतंत्र तक पहुंचाकर ग्राम सभाओं को स्वायत्त शासन की सशक्त इकाई बनाना है। इस कानून के लागू होने के बाद नौ जनजाति बहुल प्रदेशों के संविधान की पांचवी अनुसूची में वर्णित अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि अधिग्रहण, ग्रामीण बाजार, लघु जंगली उत्पाद तथा साहूकारी संबंधी कानूनों में संशोधन करके ग्राम सभाओं के सशक्तीकरण की व्यवस्था की जानी थी। मध्य प्रदेश को छोड़कर कहीं भी इस कानून को कारगर ढंग से लागू नहीं किया गया है। यही कारण है कि जनजाति क्षेत्रों में भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया पहले जैसे ही चल रही है। विकास के लिए भूमि अधिग्रहण से संबंधित एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि देश में भूमि अधिग्रहण की वजह से विस्थापित होने वाले लोगों में 55 % जनजाति समुदाय के है। गुजरात राज्य में यह अनुपात 76 % है। सरकार की अपनी स्वीकृति (1994) के अनुसार विकास की प्रक्रिया`स प्रभावित लोगों में से केवल 29 % को ही पुनर्वास का लाभ मिला है तथा 1.32 करोड़ लोग अपनी जमीन से बेदखल किए जाकर चरम निर्धनता में निराश्रय जीवन जी रहे हैं।

जनजाति एवं पारंपरिक वनवासी (वन अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम का उद्देश्य आदिवासी तथा वनवासी समुदायों का ऐतिहासिक अन्याय समाप्त कर उनके पारंपरिक रूढ़िगत अधिकारों और पर्यावरण तथा जैविक विविधता में सामंजस्य स्थापित करके उनके वैयक्तिक और सामूहिक अधिकारों को सुनिश्चित कराना है। ताकि वे अपनी प्रतिभा और अपनी प्रकषति के अनुरूप जीवन यापन कर सकें। इसके अनुपालन का मुख्य अवयव इनके वन क्षेत्र में भूमि–स्वामित्व के दावों का निपटारा करना है। इस कानून का अनुपालन किसी भी प्रदेश में संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। कर्नाटक में इसके घटिया अनुपालन की मुझे कुछ निजी जानकारी है। प्रशासन के लोग विशेषतः वन विभाग के कर्मचारी इस कानून से नाखुश हैं। वे किसी भी आदिवासी का वन भूमि पर स्वामित्व का दावा उसकी दष्टता मानते हैं जिसे वे आदतन अस्वीकार कर बिना उचित विचरण के निरस्त करने के आदी हैं। आश्चर्य नहीं है कि एक अध्ययन के अनुसार 70 % से अधिक ऐसे दावे शासन द्वारा निरस्त किए गए हैं।

उपसंहार

इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि बावजूद संवैधानिक प्रावधानों और अनेक कानूनी और प्रशासनिक उपायों के, अनुसूचित जाति समुदायों की मानव अधिकार स्थिति दयनीय है। यह भी सत्य है कि इस ओर न तो शासन व प्रशासन का और न ही जनता के प्रभावशील वर्गों का पर्याप्त ध्यान जा रहा है। विकास के विनाशकारी प्रभाव के संदर्भ में ये कतार में सबसे आगे और विकास प्रक्रिया से मिलने वाले लाभ के मामले में सबसे पीछे खड़े हैं। इतने पीछे कि विकास के प्रकाश की किरणें इन तक पहुंच नहीं पाती हैं। एक ओर सच्चाई जो साफ है और डरावनी भी उसे भी समझने की जरूरत है। पिछले चार दशकों में इन वर्गों में अपने अधिकारों के प्रति जो चेतना पैदा होती दिखाई दे रही है, उसकी रफ्तार तथा प्रशासन में इनकी आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के प्रति लाई जा रही संवेदना की गति में मेल की बहुत कमी है। यही मुख्य कारण है आदिवासी क्षेत्रों में बढ़ते हुए तनाव तथा हिंसा का जिसके मूल कारणों को समझ कर और उनका समुचित निवारण किए बिना विश्व मंच पर चौथे शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभरते भारत में संपन्नता, न्याय तथा शांति की स्थापना कत्तई संभव नहीं है।

* * * * *

भूमण्डलीकरण पोषित विकास का जाल एवं आदिवासी समुदाय के मानवाधिकार

* डा० वी.के. शर्मा

भारत की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत आदिवासी एवं देशज व्यक्ति है जो कि संख्या के अनुसार 8,43,26,240[2] लोग भारत की कुल आबादी क्षेत्र में प्रतिनिधित्व करते हैं। ये लोग सम्पूर्ण भारत में प्रमुखतः वनाच्छादित क्षेत्रों व पहाड़ों पर फैले हुए हैं। आदिवासी एवं देशज व्यक्तियों की कुल जनसंख्या का 83.2 % भाग भारत के मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, गुजरात, राजस्थान, झारखंड, छत्तीसगढ़, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक राज्यों में स्थित है, अन्य 15.3 % असम, मेघालय, नागालैंड, जम्मू–कश्मीर, त्रिपुरा, मिजोरम, बिहार, मणीपुर, अरूणाचल प्रदेश व तमिलनाडु में है।[3] इन जनसंख्याओं की प्रमुख विशेषताओं में आदिम लक्षण, भौगोलिक एकाकीपन, विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, संकोची स्वभाव तथा पिछड़ापन है।

परंतु विडम्बना यह है कि एक बड़े भूभाग पर बसे इन आदिवासी लोगों को भूमण्डीकरण पोषित विकास से संघर्ष करना पड़ रहा है तथा वे आंदोलन को विवश हो रहे हैं। विकास के नाम पर उनको परंपरागत अधिकारों यथा 'जल', 'जंगल' व जमीन से पष्थक किया जा रहा है। इनके अतिरिक्त उनके अनेक मूलभूत अधिकारो व मानवाधिकारों का हनन किया जा रहा है।

आदिवासियों के अधिकार एवं विकासः एक विवादित बिन्दु

व्यक्ति हमेशा ही विकास से संबंधित बहस का केन्द्र बिन्दु रहे हैं। यहां प्रमुख विवाद का विषय यह है कि क्या हम प्रचलित विकास की परिभाषा को स्वीकार करें जो कि 'बाजारवाद' पर आधारित है, अथवा वर्तमान में स्वीकार्य 'समेकित विकास' की परिभाषा जो कि जनसंघर्ष एवं मानवाधिकार आंदोलनों से उत्पन्न हुई है? क्या विकास का अर्थ

* प्रोफेसर, विधि संकाय, जय नारायण व्यास विश्वविद्यायल, जोधपुर

पूंजीपतियों व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाभ दिलाना है ? अथवा अधिकतम लोंगों के अधिकारों का अधिकतम संरक्षण एवं खुशहाली ? यदि इस विवादित बिंदु पर जनमत संग्रह कराया जाये तो बहुमत अवश्य ही दूसरे बिन्दु के पक्ष में होगा। क्या वर्ग आधारित पूंजीपतिगत विकास राष्ट्रनिर्माण व राष्ट्रविकास की अवधारणा हो सकती है? सर्वथा नहीं। इस हेतु हमें 'सर्वजन सुखायः सर्वजन हिताय' की अवधारणा को अंगीकार करना होगा जिसमें कि देशज व वनवासी आदिवासी लोगों को, उनके प्राकृतिक वातावरण व परिवेश से पृथक किये बिना प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की नीति अपनानी होगी, तभी समेकित विकास की अवधारणा फलित होगी।

प्रायः देखने में आया है कि विकास प्रयोज्य योजनाओं ने समाज के इन महत्वहीन वर्गों (Marginalized sections) जिनमें कि वनवासी व आदिवासी प्रमुख हैं पर प्रत्यक्ष रूप से विपरीत प्रभाव डाला है। वे अपने प्राकृतिक परिवेश व वातावरण से अलग होने को विवश हो रहे हैं। उनको प्राकृतिक परिवेश के विनाश व विस्थापन का दंश झेलना पड़ रहा है अथवा वे इस बारे में आशंकित हैं। सबसे बड़ा भय इस वर्ग को अपनी माँ सष्दश भूमि, वनों जो कि उनके जीविकोपार्जन व संसाधनों का स्त्रोत हैं से संबंध समाप्त होने का है, जो कि आवश्यक रूप से आदिवासियों को साधनहीन, शक्तिहीन करने की दिशा है। यही कारण है कि देश के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में अलगाववाद, नक्सलवाद, धर्मपरिवर्तन की घटनायें व्यापक रूप से घटित हो रही है।

विकास एवं आदिवासियों की समस्याएं

उपरोक्त पृष्ठभूमि में आदिवासी व देशज लोगों की प्रमुख समस्याओं का विश्लेषण किया जाये तो उनको विकास के कारण अनेक प्रकृति प्रदत्त अधिकारों व मानवाधिकारों से वंचित होना पड़ रहा है। केन्द्र व राज्य सरकारें नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत देशी व विदेशी पूंजीगत निवेश को विकास परियोजनाओं में आमंत्रित कर रही है। प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए सुरक्षित वन क्षेत्रों को भी अलग नहीं रखा जा रहा है। विकास हेतु खनिज दोहन, स्टील प्लांट, पॉवर प्लांट, रिफाइनरीज़ लगाकर प्राकृतिक संसाधनों को उपयोग में लाने की परियोजनाऐं शुरू की जा चुकी है अथवा प्रस्तावित है। वनों में विचरण करने व वनों का प्रबंधन करने वाले आदिवासियों को, जिनको वनों के दोहन व संरक्षण का 'परम्परागत ज्ञान' हैं, वनों से पलायन करने के लिए विवश किया जा रहा है।

वनों पर आधारित आदिवासियों की अर्थव्यवस्था चरमरा गई है क्योंकि उनके वन संपदा के ऊपर निर्भर परम्परागत ईंधन, चारा, सूक्ष्म वन उत्पादों को इकट्ठा करने के

अधिकारों को भी भारतीय वन नीति के अन्तर्गत प्रतिबंधित कर दिया गया है। ये अधिकार आदिवासियों को अब विधिक अधिकार के रूप में नहीं रहे है। इन अधिकारों को सरकारी, आदेशों, नियमों व प्रतिबंधों के अधीन कर दिया गया है। आदिवासियों पर लगाए गए प्रतिबंधों के चलते, वास्तविक रूप से वे अपने प्राकृतिक अधिकारों से वंचित हो गये हैं तथा उनके प्राकृतिक क्रिया कलाप जो कि वन आधारित अर्थव्यवस्था से सम्पन्न होते है, वन विभाग व अधिकारियों की दया पर निर्भर होने लगे है। गरीबी व अशिक्षा उनकी दशा को और दयनीय बनाने में प्रेरक हो रही है। आदिवासी बहुसंख्यक मध्यप्रदेश राज्य में तो वन उत्पादों यथा तेन्दू पत्ता, लकड़ी (ईंधन), गोंद, हरड़, बांस, साल बीज, खैर छाल के विक्रय करने वाले ये आदिवासी अब मात्र श्रमिक बन कर रह गये हैं। उन राज्यों में जहां अल्पवन उत्पाद का व्यापार राष्ट्रीकृत नहीं है वहाँ इन आदिवासियों का शोषण व्यापारियों व मध्यस्थों द्वारा होता है। इस प्रकार इन आदिवासियों को अपनी ही भूमि पर, जिसका कि संरक्षण, संवर्धन उनके पूर्वजों ने किया था, एक शरणार्थी का जीवन जीने के लिये बाध्य किया जा रहा है।

भूमंडलीकरण के इस युग में केन्द्र व राज्य सरकारों की नई आर्थिक नीति ने जो देशी/विदेशी पूंजीगत निवेश को विकास परियोजनाओं हेतु आमंत्रित करती है व पोषित करती है, इन देशज वनवासियों के जीवन व अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। ये लोग निम्न सामान्य समस्याओं से जूझ रहे हैं।

- सम्पत्ति से असंबन्ध होने का संघर्ष
- वन संसाधनों व वन प्रबंधन से अलगाव
- जीवन यापन समस्या व परम्परागत धन्धों की समाप्ति
- प्राकृतिक परिवेश, पारिस्थितिकि, वातावरण की समाप्ति व भय
- विस्थापन, संस्कृति का विलोपन
- विकास का लिंग सम्बन्धों पर प्रभाव
- एकाकी जीवन से समेकित जीवन में विचरण
- सामाजिक संबंध रूपान्तरण

वन आधारित प्राकृतिक संसाधन व आदिवासियों की प्राकृतिक धरोहर व अधिकार

अदेशज व्यक्तियों की वन सम्पदा के दोहन की लालसा एवं राज्यों की विकास आधारित परियोजनाऐं देशज व आदिवासियों को उनके प्राकृतिक परिवेश व वातावरण से अलग

कर रही हैं। यही कारण है कि देश में विकास परियोजनाओं के प्रभावीकरण में विशिष्टया आदिवासी बहुल क्षेत्रों में सरकारों को उनके रोष तथा आंदोलनों का सामना करना पड़ रहा है। यदि देश में 'जैव विविधता' तथा 'पारिस्थितिकी संतुलन' बनाये रखना है तो इन आदिवासियों के प्राकृतिक धरोहर को संरक्षण प्रदान करना होगा, उनके वनभूमि पर अधिकार को संरक्षण प्रदान करना ही होगा। उनके वनभूमि पर अधिकार व वन सम्पदा के स्वामित्व, जिस पर कि उनका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक जीवन निर्भर है, को संरक्षित करना ही होगा, क्योंकि इस प्रकार का परम्परागत परिवेश से उनका विस्थापन उन्हें अत्यंत कष्टदायक व अनिश्चितता की स्थिति में ले जाता है तथा संविधान प्रदत्त उनके परम्परागत ढंग से निवास करने के अधिकार में सीधा हस्तक्षेप करता है। यही कारण है कि विकास के नाम पर आदिवासियों को अपने अधिवास से विस्थापित होने का भय भारत में अनेक आदिवासी आंदोलनों को जन्म दे रहा है।

विस्थापन का भय व आदिवासी आंदोलन

देश में विस्थापन के भय ने विगत वर्षों में अनेक आदिवासी आंदोलनों को प्रेरित किया है चाहे वह पश्चिम बंगाल का 'सिंगूर' और 'नंदीग्राम' का मामला हो या मध्यभारत में खनन व अन्य गतिविधियों के मामले हों, लेकिन आंदोलनों का सबसे उग्ररूप ओडिसा में बहुराष्ट्रीय कोरियन कम्पनी 'पोस्को' को सुप्रीम कोर्ट द्वारा 8 अगस्त 2008 को 51,000 करोड़ की लागत से जगतसिंहपुर जिले के पारादीप स्थान पर स्टील सयंत्र स्थापित करने को लेकर देखा गया। इसी तरह का विरोध ओडिसा के कालाहांडी जिले की न्यामिगिरी पहाड़ियों पर वॉक्साइट अयस्क के खनन हेतु सुप्रीम कोर्ट द्वारा इंग्लैंड की कम्पनी वेदान्ता को दी गई अनुमति के संदर्भ में हुआ, [4] जिसमें कि इस पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाली 'डोंगरिया कौंध' जनजाति के लोगों ने वेदान्ता की भारतीय सहयोगी कम्पनी 'स्र्टलाइट इंडिया लि.' को अयस्क खनन की कोशिश को विफल कर दिया। 'सर्वाइवल इंटरनेशनल' संस्था नें इस आदिवासी आंदोलन को ऐतिहासिक स्तर देते हुये इसकी तुलना हॉलीवुड की लोकप्रिय मूवी 'अवतार' से की तथा इन आदिवासियों का 'वास्तविक अवतार' की संज्ञा दी।

बी.बी.सी. सम्वाददाता एन्ड्रयू नॉर्थ ने इन आदिवासियों के कथन को उल्लिखित किया जिसमें कि सरकोपारी के स्थानीय निवासी मेडोवा ने कहा कि ''से पहाड़ियां हमारी पहचान हैं'' ''यदि यहां खनन होता है तो नियामिगिरी जंगल समाप्त हो जायेगा और 'हम कुत्ते के समान हो जायेंगे',[5] आदिवासियों के ये कथन उनके परिवेश के समाप्ति के उद्वेलन व व्यथा को आवश्यक रूप से संदर्भित करते हैं।

आदिवासी–विकास के लिए सर्वाधिक प्रभावित व भुगतान करने वाला वर्ग

विकास के लिए आदिवासी वर्ग सबसे अधिक कीमत चुका रहा है तथा सबसे अधिक प्रभावित है, क्योंकि उनका निवास, प्राकृतिक संसाधन प्रचुर क्षेत्रों में है। 90 % कोयला तथा लगभग 50 % अन्य खनिज इन क्षेत्रों में पाया जाता है, जो कि अन्य संसाधनों; वन, जल व अल्प वन उत्पादों के अतिरिक्त है। 1991 की जनगणना की तस्वीर देखें तो उस समय देशज एवं आदिवासी भारत की कुल जनसंख्या का 8 % थे और इस जनसंख्या के लगभग 55 % लोग (1990) तक अनेक विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित लोगों की श्रेणी में थे, आदिवासी मामलों के मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार 1990 तक लगभग 85 लाख आदिवासी लोग विभिन्न विकास परियोजनाओं, जैसे कि बाँध, खनन, उद्योगों व वन संरक्षण परियोजनाओं के कारण प्रभावित हुए। 1990 के पश्चात् आज तक अनेक बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के प्रस्तावों एवं परियोजनाओं तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के अति उत्साहित पूंजी निवेश आधारित विकास प्रारूप को प्रभावी बनाने हेतु आर्थिक उदारीकरण नीति के अंतर्गत लाखों देशज व्यक्ति विस्थापन से प्रभावित तथा पलायन को विवश हुए हैं।[6] और उनको अपना प्राकृतिक परिवेश, परम्परागत ज्ञान, संस्कृति व जीवनशैली से वंचित होना पड़ रहा है। इस संदर्भ में उस समय की महिला एवं बाल विकास मंत्री **कृष्णा तीरथ** का बयान, **''जनजातियों का विकास हेतु भूमि अधिग्रहण द्वारा वृहद स्तर पर विस्थापन एक चुनौती है'',**[7] भारत में अधिवासित जनजाति वर्ग को भारतीय संविधान व अन्य विधियों [8] में प्रदत्त संरक्षण के विफल होने का संदेश देता है।

आदिवासी के अधिकार बनाम विकास–विधिशास्त्री दृष्टिकोण

विधिशास्त्री दृष्टिकोण से यह सर्वमान्य है कि भारतीय संविधान व अन्य विधियों में आदिवासी व वन क्षेत्रों में जल, खनन, भूमिगत संसाधनों व स्वामित्व का अधिकार राज्य को दिया गया है [9] तथा यह उचित भी है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि देशज व आदिवासी व्यक्तियों के अधिकारों का खनिज उत्खनन व दोहन प्रक्रिया में कोई सम्मान न किया जाये, और राज्य अपनी स्वेच्छा से इन प्रक्रिया को संचालित करें। जबकि इसके विपरीत मानवाधिकार विधि शास्त्र व भारतीय विधि शास्त्र के सिद्धान्त देशज व आदिवासी व्यक्तियों के अधिकारों का इस प्रक्रिया से व्यापक संबंध निर्धारित करते हैं। उनके अधिकारों को अनदेखा कर प्रक्रिया को पूर्ण नहीं किया जा सकता, जिनमें कि प्रमुख अधिकारों में निम्न अधिकार प्रमुख हैं .

- सुरक्षित एवं स्वस्थ वातावरण का अधिकार
- पूर्व परामर्श/मंत्रणा का अधिकार
- पूर्व सूचित सहमति का अधिकार
- विकास परियोजनाओं से लाभान्वित होने का अधिकार
- न्याय एवं क्षतिपूर्ति का अधिकार
- उचित पुनर्वास का अधिकार
- प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का अधिकार (10)
- परम्परागत रीति रिवाज व संस्कृति संरक्षण का अधिकार
- पारिस्थितिकी अखंडता का अधिकार (11)
- मानवीय प्रतिष्ठा का अधिकार

उपरोक्त अधिकारों से संबंधित राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय मानकों व विधियों का अनुपालन सुनिश्चित करना राज्य का विधि के शासन के अंतर्गत एक सामान्य दायित्व है, व्यक्तियों के मानवाधिकारों को सुनिश्चित करना राज्य की एक सामान्य प्रक्रिया है, जिनमें आदिवासी जनजाति भी सम्मिलित है।

आदिवासियों का विस्थापन . अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों के संदर्भ में

विकास के नाम पर आदिवासियों के विस्थापन की समस्या ने इन लोगों के जीवन में एक भूचाल ला दिया है, उनके सामान्य विधिक अधिकारों का तो हनन हो ही रहा है। साथ ही संवैधानिक व अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों को दरकिनार किया जा रहा है। विस्थापन की समस्या का इन मानवाधिकार मानकों के संदर्भ में विश्लेषण करने पर निम्न मानकों का विशेष रूप से उल्लंघन दृष्टिगत होता है .

- मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948
- सिविल व राजनीतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966
- आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा, 1966
- देशज व्यक्तियों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र घोषणा, 2007
- अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन अभिसमय सं. 169

देशज व्यक्तियों का विस्थापन . राष्ट्रीय व संवैधानिक अधिकारों व विधि के संदर्भ में

आदिवासियों के विस्थापन की समस्या का अध्ययन भारतीय संवैधानिक व अन्य विधियों के संदर्भ में करने पर निम्न संवैधानिक व वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन दृष्टिगत होता है :–

- भारतीय संविधान–अनुच्छेद–46,[12]
- भारतीय संविधान–अनुच्छेद–244[13]
- भारतीय संविधान–अनुसूची V [14]
- अनुसूचित जनजाति एवं परम्परागत वन भ्रमणक अधिकार अधिनियम, 2006[15]
- पंचायत प्रावधानों का (अनुसूचित क्षेत्रों) में विस्तार अधिनियम, 1996[16]

राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय विधिक मानकों के प्रभावी क्रियान्वयन की आवश्यकता

विधि शासित राज्य होने के कारण केन्द्र व राज्य सरकारों का विधिक दायित्व हो जाता है कि वे आदिवासी लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने हेतु राष्ट्रीय विधि व अंतरराष्ट्रीय समयकों (जिनमें वे पक्षकार हैं) का प्रभावी क्रियान्वयन उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु करें। आज महती आवश्यकता इन लोगों के अधिकारों को 'क्षेत्रीय अधिकारों' के संदर्भ में परिभाषित करने व विधिक स्वरूप देकर प्रभावी बनाने की है तथा इन अधिकारों को विकास परियोजनाओं के संदर्भ में विश्लेषण कर उचित निर्णय लेने की है जिससे विकास की गति भी बनी रहे तथा आदिवासियों के अधिकारों पर विपरीत प्रभाव भी न पड़े।[17]

'समावेशी' व 'मानवाधिकार संगत' विकास की आवश्यकता

'विकास का अधिकार' प्रत्येक भारतीय, जिनमें कि आदिवासी भी शामिल है का अधिकार है ; राज्य का यह अधिकार है कि वह प्राकृतिक संसाधनों का दोहन विकास परियोजनाओं के लिए करें, लेकिन विकास 'समावेशी' तथा 'मानवाधिकार संगत' हो तो मानव परिवेदनाओं तथा उग्र आंदोलनों से बचा जा सकता है। अतः आदिवासी लोगों के मानवाधिकारों की देश में अनदेखी एक उचित नीति नहीं हो सकती। मानवाधिकार का पूर्ण सम्मानरहित विकास, विकास नहीं कहलाएगा, क्योंकि 'राज्य का विकास' (सकल घरेलू उत्पाद) में वृद्धि तथा 'मानव विकास' (मानवाधिकार संरक्षण) एक ही सिक्के के

दो पहलू हैं। दोनों का विकास करने हेतु 'सत्त विकास परियोजना' बनाने व प्रबन्धन करने की आवश्यकता है और इसके लिए आदिवासियों के मानवाधिकार संरक्षण आवश्यक हो जाता है।

विकास आधारित परियोजनाओं के क्रियान्वयन व प्रबंधन में परिवेश, पर्यावरण, जीविकोपार्जन, रीति रिवाज परम्परागत जानकारी, संस्कृति, सांस्कृतिक समेकता जैसे मानवाधिकार एवं माँ सृदश पृथ्वी व संसाधनों से लगाव एवं जुड़ाव को दृष्टिगत रखने की आवश्यकता है। इनसे भी सर्वोपरि 'प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र' को सुरक्षित व संरक्षित रखने में 'जैव विविधता' बनाये रखने में वनवासी व्यक्तियों की अह्म भूमिका देखते हुए उनके प्राकृतिक परिवेश को नष्ट न कर विकास परियोजनाऐं क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। आदिवासी बहुल क्षेत्रों में विकास परियोजना स्वीकृति से पूर्व उनके जनजीवन, व्यक्तिगत व सांस्कृतिक उत्तरजीवन पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों का अध्ययन व विश्लेषण करने की आवश्यकता है तथा जहाँ ये प्रभाव हो सकते हैं, उन परियोजनाओं की स्वीकृति रोकने की आवश्यकता है। इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण, विज्ञान एवं अभियांत्रिकी, मानवाधिकार एवं विधि, के विशेषज्ञों का एक कार्य समूह बनाकर उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। आदिवासी क्षेत्रों में विकास परियोजना स्वीकृति हेतु सरकार के संबंधित मंत्रालयों में भी समन्वय की आवश्यकता है।

समावेशी विकास हेतु एकाकी संस्कृति की आदिवासी जातियों के विश्वास को जीतने तथा विकास का प्रतिभागी प्रारूप विकसित करने की आवश्यकता है जिससे यह समुदाय जो कि समाज की मुख्यधारा से अभी भी दूर है, को सामाजिक समेकन से मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया जा सके न कि उन्हे अलग . थलग करने का।

अनुसूचित जाति एवं परम्परागत वन भ्रमणक अधिकार अधिनियम, 2006 : एक उचित कदम

वन अधिकार अधिनियम' व 'आदिवासी अधिकार अधिनियम' व 'आदिवासी भूमि अधिनियम' के लोकप्रिय नामों से जाने वाली यह विधि आदिवासियों के परम्परागत वनों में आवास, जीवनयापन, भूमि, परिवेश व अल्प उत्पाद दोहन के सामान्य अधिकारों को सुनिश्चित करने हेतु सरकार की उचित पहल है। यह अधिनियम वनवासियों व वन भ्रमणकों के साथ ब्रिटिश काल से चले आ रहे 'ऐतिहासिक अन्याय' के विरूद्ध एक राहत है। अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत आदिवासियों व वनवासियों को निम्न विशिष्ट अधिकार सुनिश्चित किये गये हैं .

1. **स्वामित्व / स्वतत्व अधिकार** : सभी वनवासी / आदिवासियों को खेतिहर वनभूमि पर स्वामित्व का अधिकार सुनिश्चित किया गया है जिस पर कि वे 13 दिसम्बर 2005 तक खेती कर रहे थे। [18]

2. **वन सम्पदा उपयोग करने का अधिकार** : इस अधिकार के अंतर्गत लघु वन उत्पाद को संग्रह करने, स्वामित्व व चरागाहों एवं उनके लिए पथ के प्रयोग करने का अधिकार सुनिश्चित किया गया है। [19]

3. **विकास एवं राहत का अधिकार** : बाध्य विस्थापन अथवा अवैधानिक बेदखली के मामलों में पुनर्वास, व मूलभूत आवश्यकताओं व सुविधाओं की आपूर्ति का अधिकार [20]

4. **वन प्रबंधन का अधिकार** : वन्य जीव व वनों के संरक्षण हेतु यह अधिकार दिया गया है। [21]

इस अधिनियम के 31 दिसम्बर 2007 से प्रभावी होने के बाद आदिवासियों के व्यक्तियों व समूहों को अवैध विस्थापन व विकास परियोजनाओं हेतु अनिवार्य भूमि अधिग्रहण के विरूद्ध एक वैधानिक संरक्षण प्राप्त हो गया है।

विकासजनित आदिवासी विस्थापन समस्या–भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की अहम भूमिका

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी आदिवासी मानवाधिकार संरक्षण में विधायिका के सक्रिय होने (यानि कि वन अधिकार अधिनियम, 2006) लागू होने के बहुत पूर्व संविधान की अनुसूची ऊ की व्याख्या करते हुए आदिवासी व्यक्तियों के वन अधिकारों को सुनिश्चित किया है। जुलाई 1997 को सुनाये गये अपने तीन जज की पीठ के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने **''समथा बनाम आंध्रप्रदेश राज्य व अन्य''** के मामले [22] में निर्धारित किया कि ''आदिवासियों को अपनी भूमि से संबंध रखने का अधिकार है, जो कि उनकी बहुमूल्य निधि है।'' सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि ''देशज व्यक्तियों के सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक अधिकारों का संरक्षण आवश्यक है तथा कोई भी औद्योगिक उपक्रम व खनन उनकी ग्राम सभा की अनुमति के बिना उनके क्षेत्रों में नहीं लगाया जा सकता।'' सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि ''आदिवासियों की भूमि उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण, बहुमूल्य प्राकृतिक निधि है जिससे वे सम्पन्नता, जीवन यापन, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक–सामाजिक समानता, स्थाई आवास, कार्य व जीवन प्राप्त करते हैं, इस कारण स्वतः ही उनका अपनी भूमि से अत्यधिक भावनात्मक लगाव होता है।''

सर्वाच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय के आधार पर 'न्यामिगिरी पहाड़ी' [23] ओडीसा के मामले का निर्णय करते हुए कहा कि राज्य सरकार इस मामले को आदिवासी व्यक्तिगत समुदाय की ग्राम सभा के समक्ष रखे तथा खनन परियोजना के बारे में उसका निर्णय अंतिम होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने आदिवासियों के धार्मिक, सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण के पक्ष में निर्णय करने का अधिकार उनके समुदाय को ही दे दिया। यह निर्णय आदिवासियों के मानवाधिकार संरक्षण में एक मील का पत्थर है।

इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने कठोर निर्णय सुनाते हुए अंडमान–निकोबार की 'जारवा जनजाति' के मामले [25] में, जिसमें कि भोजन के लालच में विदेशी पर्यटकों द्वारा उनको नग्न नष्त्य करने को मजबूर किया गया था, पर्यटकों के उनके क्षेत्र में प्रवेश पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया। यह निर्णय भी पर्यटन विकास बनाम आदिवासियों के मानवाधिकार से संबंधित था।

इस प्रकार सर्वाच्च न्यायालय ने आदिवासी के दैनिक जीवन व मानवाधिकारों में हस्तक्षेप को गंभीरता से लेते हुए उनके संरक्षण में प्रशंसनीय योगदान दिया है और उसका प्रभाव कार्यपालिका की सक्रियता पर भी पड़ा है।

जनजाति व आदिवासियों के विकास हेतु भारत सरकार की प्रारूपिक राष्ट्रीय नीति, 2006

भारत सरकार ने आदिवासियों पर भूमंडलीकरण व उससे जनित विकास परियोजनाओं के प्रभाव को शून्य करने हेतु एक प्रारूपिक नीति 21 जुलाई 2006 को जारी की है। [26] जिसका मुख्य मुद्दा विकास परियोजनाओं के कारण इन समुदाय के विस्थापन की समस्या है। इस नीति के अंतर्गत राज्य सरकारों को निर्देश दिया जायेगा कि वे इस वर्ग के लोगों को उनके अधिवास से बेदखल करने वाली भूमि विधियों तथा पंजीकरण विधियों में संशोधन करें व विस्थापित लोगों के पुनर्वास व क्षतिपूर्ति का प्रावधान करें विवादों के निपटारे के लिए त्वरित न्याय न्यायालय स्थापित करें तथा आदिवासी क्षेत्रों के विकास व कल्याण हेतु योजना बनायें जिससे उनकी संस्कृति, पारंपरिक ज्ञान, हस्तकला, नृत्य, संगीत आदि को अक्षुण्ण रखा जा सके।

संसद द्वारा राष्ट्रीय भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास एवं व्यवस्थापन बिल, 2011 के शीघ्र पारित करने की अपेक्षा

आदिवासी समुदाय के संरक्षण एवं उनके मानवाधिकार सुरक्षित करने हेतु फोरेस्ट राइट्स अधिनियम, 2006 हालांकि एक बड़ा कदम है, केन्द्र सरकार की आदिवासियों के

विकास व कल्याण के लिए प्रारूपिक नीति, 2006 भी इसमें सहयोग प्रदान करेगी, लेकिन आदिवासियों को उनकी अपनी मातृतुल्य धरा से विस्थापन व वंचन रोकने हेतु 2011 से लंबित राष्ट्रीय भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास व व्यवस्थापन बिल को केन्द्र सरकार द्वारा बिना विलम्ब के पारित करवाने की अपेक्षा की जाती है, जिससे कि समग्र रूप से इस समुदाय को पूर्ण संरक्षण व भयविहीन प्राकृतिक परिवेश सुनिश्चित किया जा सके।

* * * * *

---

(1) Tribal profile at a glance May 2013 tribal.nic.in/…./cms

(2) यथोक्त

(3) Census of india.gov.in

(4) www.bbc.com/news/world-asia-india 25673187 Dt. 10th Jan 14

(5) यथोक्त

(6) Tribal: Victim of Development Projects; Error! Hyperlink reference not valid.

(7) यथोक्त, May 2011 observation

(8) The Panchayat (Extension to the scheduled areas) Act, 1996 & Forest Rights Act, 2006

(9) See Schedule 7 entry 54, Indian constitutions

(10) See ILO Convention No 169 & Art. 21, U.N. Declaration on the rights of Indigenous people 2006

(11) See International Covenant on Civil & Political Rights & Cultural Rights

(12) संविधान का अनु. 46 राज्यों का दायित्व निर्धारित करता है कि वे अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के हितवर्धन व उनको सामाजिक अन्याय व शोषण से बचाने के लिए कार्य करें।

(13) अनुच्छेद 244 अनुसूचित व आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन विशिष्ट प्रावधान करता है।

(14) संविधान की अनुसूची ट, अनुसूचित क्षेत्रों में खनन पर प्रतिबंध लगाती है तथा देशज व्यक्तियों के प्राकृतिक संसाधनों, भूमि तथा उनके प्राकृतिक परिवेश के अधिकारों को सुनिश्चित करती है।

(15) Sec. 3&4

(16) Sec. 4

(17) विशिष्टतः आदिवासियों के पर्यावरण व जीवन यापन से संबंधित अधिकारों के संदर्भ में

(18) Sec 3 (1)

(19) यथोक्त

(20) यथोक्त

(21) Sec 3 (1) & 5

(22) AIR 1997 SC 3297

(23) Vedanta case

(24) www.dnaindia.com, April 19, 2013

(25) Times of india.com Jan22, 2013

(26) The Indian express July 22, 2008

"विकास के नकारात्मक आयाम एवं जनजातियों का भविष्य"

* पूनम कुमारी

वर्तमान में जनजातियों की नियति का विकास के साथ गहरा संबंध जुड़ गया है। अतः विकास के जनजातियों से संबंधित विभिन्न आयामों का विश्लेषण करना अति आवश्यक है। अधिकांश जनजातियाँ हमारे विकास की वर्तमान प्रक्रिया से लाभान्वित होने की बजाय प्रताड़ित ही हुई हैं। विकास की वर्तमान अमानवीय एवं संवेदनहीन बाजारवादी व्यवस्था ने जनजातीय समूहों के जीवन को गहराई तक प्रभावित किया है तथा इनके परम्परागत, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक ढ़ाँचे को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। इस लेख में विकास के उन नकारात्मक आयामों का विस्तार से वर्णन किया गया है जो न केवल जनजातीय समूहों की वर्तमान पिछड़ी एवं दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराए जा सकते हैं बल्कि इन जनजातियों के भविष्य निर्धारण में भी अहम भूमिका निभाने वाले हैं। अनुसूचित जनजातियों के वर्तमान एवं भविष्य को प्रभावित करने वाले विकास के नकारात्मक आयामों का जायजा लेने से पहले जरूरी है कि इनके जनसंख्या विभाजन और सामाजिक तंत्र पर संक्षिप्त नजर डाली जाए। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या वर्तमान में 10.43 करोड़ है तथा देश की कुल आबादी में जनजाति आबादी का हिस्सा 8.6 फीसदी है। यह अनुसूचित जनजाति भारत के 30 राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में निवास करती है। जनजाति आबादी के मामले में अफ्रीका के बाद भारत संसार का दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित जनजाति समूहों की संख्या 705 है जिसमें 75 ऐसी जनजातियां हैं जिन्हें आदिम जनजाति समूह (प्रीमिटिव ट्राइबल ग्रुप) कहा गया है।[1]

---

* शोध छात्रा, लोक प्रशासन विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

भारतीय संदर्भ में हमें जनजाति समाज की विवेचना एवं विकास की अवधारणा को आपस में जोड़कर देखना होगा। मुख्य धारा के आर्थिक विकास का संबंध प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से जुड़ा है। ज्यादातर खनिज संसाधनों के केंद्र में जंगल हैं जो सदियों से जनजाति समाज का पर्यावास रहा है। खनिज संसाधनों की बढ़ती जरूरतों ने पर्यावास की पुरातन व्यवस्था को बदलना शुरू कर दिया है। तथा मौजूदा विकास के दौर में जनजाति समाज का जीवनचक्र बड़े संक्रमण से गुज़र रहा है। जनसंख्या और सामाजिक संरचना के साथ शिक्षा, गरीबी और सेहत के सूचकांकों से साफ है कि अनुसूचित जनजाति के लिए बेहतर भविष्य को सुनिश्चित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। सामान्यतः आदिवासी कहे जाने वाले लोगों को ही अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के संविधान में अनुच्छेद 243 के तहत प्रावधान करके अदिवासियों को अनुसूचीबद्ध किया गया है तथा उनके कल्याण एवं विकास के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। देश के विभिन्न प्रान्तों में फैले हुए होने के बावजूद ज्यादातर अनुसूचित जनजाति के लोग पहाड़ों, पठारों एवं जंगलों में बसे हुए हैं, जिसके फलस्वरूप देश के विकास कार्यक्रमों से वे प्रायः अछूते रहे हैं। जनजातीय इलाकों में आधारभूत संरचनाओं जैसे शिक्षा, सड़क, स्वास्थ्य सेवा, आगमन की सुविधा, पीने के पानी, बिजली तथा सिचांई की सुविधा इत्यादि की कमी रह गई है। फलस्वरूप आदिवासियों एवं गैर आदिवासियों में रहन–सहन, अर्थोपाय, आजीविका एवं सम्मान के क्षेत्र में असमानता की खाई बढ़ती जा रही है।[2]

विश्व की उभरती अर्थव्यवस्थाओं में से एक तथा विश्व महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर हमारा देश आज एक गंभीर आर्थिक असमानता की ओर बढ़ रहा है। हमारा वर्तमान विकास मॉडल पाश्चात्य सिद्धान्तों पर आधारित है जिसे स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय लोकतंत्र के लिए कल्पित किया था। इस मॉडल में पिरामिड संरचना शीर्ष से आधार की तरफ आती है। असमानता की इस नाजुक स्थिति के लिए हमारा वर्तमान विकास मॉडल ही जिम्मेदार दिख रहा है। इसलिए विकास की संकल्पना, विकास प्रक्रिया तथा इसके नकारात्मक आयाम एवं विकास के विकल्पों की विवेचना अत्यावश्यक हो जाती है। विकास एक निरन्तर परिवर्तनशील एवं गतिशील प्रक्रिया है। इस बहुआयामी संकल्पना की अनेक सूक्ष्म

[1] अंतिम आँकड़े प्राथमिक जनगणना सारांश, भारत की जनगणना 2011

[2] नूतन मौर्या, योजना हिंदी मासिक, नई दिल्ली–110001, जनवरी 2014

विवेचनाओं के बाद भी कोई निश्चित एवं सर्वमान्य परिभाषा स्वीकार नहीं की गई है। विकास को आर्थिक विकास, सामाजिक विकास, राजनीतिक विकास, सांस्कृतिक विकास, मानव विकास एवं तकनीकी विकास आदि अनेक रूपों में समझने का प्रयास किया गया है। आर्थिक क्षेत्र में विकास से तात्पर्य आर्थिक संवृद्धि, उत्पादन व जीवन स्तर में वृद्धि, अर्थव्यवस्था का प्राथमिक क्षेत्र से द्वितियक या तृतीयक क्षेत्रों में रूपान्तरण और अर्थव्यवस्था की उच्च विकास दर से होता है, तो सामाजिक क्षेत्र में इसका अर्थ समाज में शिक्षा, साक्षरता, अधिकार बोध, जीवन की सुविधाओं और गुणवता में वृद्धि से होता है, जिसमें पोषण, स्वास्थ्य, सफाई व चिकित्सा जैसी सुविधाओं की उपलब्धता एवं उच्च जीवन प्रत्याशा व निम्न मृत्यु दर जैसे संकेतक शामिल हैं। राजनीतिक दृष्टि से बढ़ती जनसहभागिता, विकेन्द्रीकरण, मानव–अधिकार संरक्षण एवं नीति निर्माण में स्थानीय समुदायों की भागीदारी विकास के अंतर्गत आते हैं। तकनीकी दृष्टि से समाज में नई तकनीकों का बढ़ना जैसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अत्यधिक प्रचलन ही विकास माना जाता है। इन सभी का सम्मिलित परिणाम ही समाज एवं राष्ट्र का समग्र विकास होता है।[3]

विकास के अनेक पक्ष एवं क्षेत्र हैं तथा विभिन्न विद्वानों ने इस अवधारणा को अलग–अलग तरीके से समझाने का प्रयास किया है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष ने विकास को 'उच्चतर, पूर्णतर और प्रौढ़ स्थिति की ओर बढ़ना बताया है। एडवर्ड वीडनर के शब्दों में, "विकास गतिशील है, जो सदैव चलता रहता है। विकास मन की स्थिति, प्रवृत्ति और एक दशा है, जो एक निश्चित लक्ष्य के बजाय एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है।"[4] एफ. डब्ल्यू. रिग्ज ने विकास को विवर्तन के उभरते स्तर द्वारा सम्भाव्य सामाजिक प्रणालियों की वृद्धिमान स्वायत्तता की प्रक्रिया के रूप में माना है।[5] जनतांत्रिक स्वरूप में विकास का अर्थ समाज के अन्तिम व्यक्ति का कल्याण है। पर गत् कुछ दशकों में विकास का अर्थ व्यापक हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) की परिभाषा के अनुसार "दीर्घ तथा स्वस्थ जीवन, ज्ञानवान होना, एक संतोशजनक जीवन

---

[3] नन्दलाल भारती, लोक प्रशासन, अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, जुलाई–दिसम्बर 2011

[4] एडवर्ड वीडनर, डवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः ए न्यू फोकस ऑफ रिसर्च, फेरल हेडी एवं सिविल स्टोक्स (संपादित) पेपर्स ऑन कम्पेरेटिव एडमिनिस्ट्रेशन, 1962, पृष्ठ–99

[5] फ्रेड डब्ल्यू रिग्ज्, डवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन एशिया, 1970, पृष्ठ–72

स्तर के लिए उपलब्ध पर्याप्त साधन तथा सामाजिक जीवन में भागीदारी की योग्यता ही विकास है।" सार रूप में सक्रिय प्रयत्नों, परिश्रम एवं बाह्य संपर्क से उत्पन्न वे अच्छे परिवर्तन जो मानव का भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं वैचारिक उन्नति करके जीवन स्तर को उच्च करने में सहायक होते हैं, विकास कहे जाते हैं।

1990 के दशक के बाद विश्व में आर्थिक विकास सूचकांकों से अधिक महत्व मानवीय विकास सूचकांकों को दिया जाने लगा है तथा प्रति वर्ष मानव विकास रिपोर्ट द्वारा विभिन्न देशों में मानवीय विकास की स्थिति का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया जाता है जो विकास की बदलती अवधारणा को व्यक्त करता है। विकास की इस नई अवधारणा में मानव अधिकारों व मानव विकास को एकीकृत करने का प्रयास किया जा रहा है। विकास के अधिकार में कई अन्य अधिकारों जैसे भोजन का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, स्वास्थ्य का अधिकार, आवास का अधिकार, स्वच्छ पेयजल का अधिकार, स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार, आजीविका का अधिकार, अच्छे अभिशासन का अधिकार, भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन का अधिकार, महिलाओं, बच्चों, अल्पसंख्यकों व जनजातियों के अधिकार तथा सूचना का अधिकार इत्यादि को शामिल माना जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा "विकास के अधिकार पर सार्वभौमिक अभिघोषणा 1986" में 'विकास' को एक मानवाधिकार घोषित किया गया है। इस सार्वभौमिक अभिघोषणा के अनुच्छेद 2(3) में 'विकास के अधिकार' को परिभाषित करते हुए रेखांकित किया है कि "लोगों की विकास में सक्रिय, मुक्त व अर्थपूर्ण भागीदारी होनी चाहिए तथा विकास के लाभों का उपयुक्त आवंटन होना चहिए।"[6] फलतः वर्तमान समय में विकास की अति व्यापक हो रही अवधारणा में 'लोगों के लिए विकास' के स्थान पर 'लोगों के साथ विकास' पर बल दिया जा रहा है। प्रौद्यागिकीय उन्नयन को विकास का वाहक बनाने के लिए विश्व बैंक ने एक नया कार्यक्रम "गरीबों की आवाज (2002)" शुरू किया है। अपनी रिपोर्ट "रैजिंग वोइसेजः सैटेलाइट, इंटरनेट एण्ड डिस्ट्रीब्यूटिव डिस्कोर्स" में विश्व बैंक ने तकनीकी परिवर्तनों को विकास का वाहक बनाने पर बल दिया है। इस रिपोर्ट में विश्व के विभिन्न भागों में रहने वाले गरीबों की विकास कार्यक्रमों के प्रति प्रतिक्रिया व सुझावों को सैटेलाइट के माध्यम से एकत्रित किया जा रहा है और विकास नीतियों के निर्धारण में सभी राष्ट्रीय सरकारों से इन सुझावों पर ध्यान देने का आग्रह किया जा रहा है। इस प्रकार परम्परागत आरोपित विकास के स्थान पर स्व–विकास, सहभागितापूर्ण विकास,

---

[6] यू. एन. टूडे, संयुक्त राष्ट्र संघ प्रकाशन, 4 दिसम्बर 1986

सतत् विकास एवं सामाजिक सक्षमता निर्माण को अधिक महत्व दिया जा रहा है क्योंकि परम्परागत आरोपित विकास का मॉडल न तो लोक हितकारी है। और न ही सामाजिक न्याय आधारित है। अब हम वर्तमान विकास मॉडल की खामियाँ जानने का प्रयास करेंगे।

विकास प्रक्रिया के नकारात्मक आयाम

कई विद्वानों ने समकालीन विकास को विकास के स्थान पर विनाश की संज्ञा दी है। इन विद्वानों के दृष्टिकोण से विकास की इस अवधारणा को विकास विरोधी चर्चा, अविकास, कुविकास, स्वकेन्द्रित विकास एवं विपरीत संवृद्धि आदि का नाम दिए गए हैं। आज हमारे विकास में उपनिवेशवाद का नया संस्करण जन्म ले रहा है।[7] विकास के परिणाम समाज में कुछ महत्वपूर्ण निदर्शक एवं संकेतकों के माध्यम से आंके जा सकते है। यह संकेतक हैं– जीवन स्तर में परिवर्तन, निर्धनता में कमी, निरक्षरता व अज्ञानता में कमी, आर्थिक स्थिति में उन्नति, सामाजिक न्याय में बढ़ोतरी, समान अवसरो की उपलब्धता, पिछड़ों व अविकसित समूहों का उत्थान, जीवन सुरक्षा उपायों में वृद्धि, समाज कल्याण सुविधाओं में आशातीत प्रगति, सामाजिक, क्षेत्रीय व वर्ग असमानताओं की समाप्ति, स्वास्थ्य स्तर में विकास, पर्यावरण व पारिस्थितिकी तन्त्र का यथासंभव संरक्षण, समस्त महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में सहभागिता व स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति इत्यादि। इन संकेतकों की कसौटी पर वर्तमान विकास मॉडल खरा नहीं उतरता है। विकास के नाम पर वास्तव में विषमता, शोषण, अन्याय, बेरोजगारी, भुखमरी, कुविकास, कुपोषण, अशिक्षा और बदहाली ही देखने को मिलती है। विकास के वर्तमान मॉडल के नकारात्मक प्रभावों ने जनजातीय समूहों के परम्परागत जीवन एवं इनके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक ढ़ाँचे को गहराई तक प्रभावित किया है। समकालीन विकास प्रक्रिया के विभिन्न नकारात्मक आयाम जैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरणीय, तकनीकी व मानवीय इत्यादि कई नए प्रश्नों को जन्म दे रहे हैं जो न केवल जनजातीय समूहों के लिए बल्कि पूरी पृथ्वी व मानवता के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं। अतः इनका विस्तृत विवेचन आवश्यक है। (चित्र. 1)

---

[7] नूरिना हर्ट्ज, द साइलेंट टेक ओवर, फ्री प्रेस, नई दिल्ली–110001

(चित्र 1. विकास प्रक्रिया के विभिन्न नकारात्मक आयाम)

समकालीन विकास प्रक्रिया के विभिन्न नकारात्मक आयामों में सर्वप्रथम एवं सर्वप्रमुख सामाजिक आयाम है। विकास के इस पश्चिमी–आयातित मॉडल से विकासशील देशों के जनजातीय समूहों एवं समाजों के लोगों को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। विकास के लिए इन देशों में बड़े–बड़े बाँधों का निर्माण किया गया, बड़े–बड़े विशालकाय कारखानों के निर्माण से औद्योगिक गतिविधियाँ बढ़ी और वनों में जगह–जगह खनन कार्यों की वजह से न केवल पर्यावरण का ह्रास हुआ, अपितु बड़ी संख्या में लोगों का उनके घरों और क्षेत्रों से विस्थापन हुआ। पलायन और विस्थापन का परिणाम आजीविका खोने और निर्धनता में वृद्धि के रूप में सामने आया। ग्रामीण और खेतीहर लोगों के परम्परागत पेशों और क्षेत्रों से विस्थापित होने से नगरीकरण बढ़ने लगा और ग्रामीण गरीबों की यह आबादी समाज के हाशिये पर आने लगी। परम्परागत हुनर एवं कौशल नष्ट होने लगे और बेरोजगारी बढ़ने लगी। नई जगहों पर लोगों के पलायन से उनकी

पुरानी सामुदायिक जीवन पद्धति नष्ट होने लगी तथा सदियों से चली आ रही संस्कृति का भी विनाश हुआ। विस्थापित लोगों ने नई उभरती समस्याओं और चुनौतियों का सामना करते हुए अनेक देशों में संघर्षों को जन्म दिया। असन्तुलित विकास से संसाधन विहिन वर्गों का विकास अवरूद्ध हुआ तथा भुखमरी, बीमारियाँ व अकाल स्थाई लक्षण बन गए।

विकास प्रक्रिया का अन्य महत्वपूर्ण नकारात्मक आयाम आर्थिक पहलू है। वर्तमान भारतीय विकास मॉडल मुख्यतः पश्चिमी संस्कृति को ही प्रतिबिम्बित करता है। विकसित देशों में सफल इस विकास मॉडल ने हमारी अर्थव्यवस्था को विकसित देशों पर निर्भर बना दिया है। विकास का लाभ वंचित व कमजोर वर्गों खासकर जनजातीय समूहों तक नहीं पहुँचने के कारण आर्थिक विषमता एवं निर्धनता बढ़ी है। विकसित देशों द्वारा थोपे गए इस विकास मॉडल ने विकसित राष्ट्रों हेतु आर्थिक अवसरों को खोल दिया जिससे उनके बहुराष्ट्रीय निगमों ने संसाधनों व बाजारों का अत्यधिक दोहन किया। गरीब राष्ट्रों के हिस्से में केवल चुनौतियाँ ही आई जिससे उनके स्थानीय व कुटीर उद्योग तेजी से समाप्त होने लगे। कमजोर राष्ट्र पूँजी निवेश, ऋण सहायता, नवीन प्रौद्योगिकी, विकास एवं सुरक्षा के लिए विकसित देशों पर ही निर्भर है। अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरण एवं संस्थायें भी ऋण लेने वाले देश पर अनुचित शर्तें थोपते है परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था पर सबल देशों का अप्रत्यक्ष प्रभुत्व व नियन्त्रण स्थापित हो जाता है। "बिना जिम्मेदारी की सत्ता" एवं बिना आराम शोषण वाली इस व्यवस्था से गरीब देशों की नीतियाँ एवं राष्ट्रीय हित भी सशक्त राष्ट्रों द्वारा नियंत्रित होने से इन देशों का सामाजिक व आर्थिक विकास भी अवरूद्ध हो गया है। भारत जैसे विकासशील देश में इसका प्रभाव गरीबी में वृद्धि होने के साथ–साथ बढ़ती आर्थिक असमानता के रूप में परिलक्षित हुआ है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी किए गए "सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य रिपोर्ट–2014" के अनुसार दुनिया के एक तिहाई गरीब भारत में रहते हैं तथा प्रतिदिन 1.25 अमेरिकी डॉलर से कम में जीवनयापन करते हैं।[8]

राजनीतिक दृष्टिकोण से विकास के पाश्चात्य मॉडल ने वास्तव में वैश्वीकरण के स्थान पर अमेरिकीकरण की प्रक्रिया को ही बढ़ावा दिया है। वर्तमान विश्व व्यवस्था में अमेरिकी इच्छानुसार अहस्तक्षेपवादी पूँजीवाद का विस्तार अबाध गति से जारी है।

---

[8] सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य रिपोर्ट–2014, संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट, 2014

संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का उपयोग अमेरिकी विकास एजेंडा लागू करने में किया जा रहा है। तृतीय विश्व के गरीब देशों में नीति निर्माण में बहुराष्ट्रीय निगमों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका तेजी से बढ़ रही है। इन सबके पाणिामस्वरूप आज नवपूँजीवाद छद्म नाम उदारवाद के प्रचार का दौर चल रहा है। इसके मौलिक चरित्र पर अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार जीतने वाले अमरीकी अर्थशास्त्री रॉबर्ट विलियम फॉसजे ने अपने एक अध्ययन के दौरान यह पाया कि दास प्रथा के कारण ही अमरीका को बाजारवादी व्यवस्था का नेतृत्वकर्ता बनने का अवसर मिला और इस प्रक्रिया में पूरी की पूरी नीग्रो नस्ल ही गायब हो गई। अनुमान लगाया जाए कि दुनिया के सभी भागों में जहां इस तरह का विकास पहुँचा होगा वहाँ स्थिति वही हुई जो अमरीका में नीग्रोज की हुई और जिस देश में जनजातीय समूह निवास करते हैं उसके विकास में किसी भी तरह से उनकी भागीदार ही नहीं होगी। अब इसी तरह के निष्कर्ष भारत की जनजातियों के बारे में भी निकाले जा सकते हैं। भारत में जो विकास हुआ है वो जनजातीय समूहों को मूलधारा में ला सकने में विफल रहा है।

प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए विकास तथा तकनिकी नवाचारों ने जहाँ एक और विश्व को अनेक सुविधाजनक उपकरण उपलब्ध करवाए है वहीं दूसरी और प्रौद्योगिकीय उपकरणों की बढ़ती संख्या के कारण 'ई–वेस्ट' की समस्या बढ़ती जा रही है। जैव अपघटनीय कचरे की इस समस्या से विश्व के सभी देश प्रभावित हो रहे है। परन्तु विकसित देशों द्वारा अपने इलैक्ट्रोनिक कचरे को गरीब देशों में 'डम्पिंग' करने के कारण वहाँ यह समस्या ज्यादा ज्वलंत स्वरूप में उभर रही है। इन सभी का सर्वाधिक नुकसान जनजातीय समूहों को ही उठाना पड़ता है। साथ ही विश्व के अग्रणी औद्योगिक देशों द्वारा अपनी पुरानी व अनुपयोगी तकनिकों का निर्यात अन्य कम विकसित देशों को किया जा रहा है। सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो असंतुलित विकास की वर्तमान विश्व व्यवस्था में स्थानीय भाषाओं, आचार–विचारों, प्रथाओं तथा संस्कारों का विलोपन हो रहा है। अपनी सांस्कषतिक पहचान के लिए संघर्षरत कमजोर देशों एवं जनजातीय समूहों की परम्परागत व स्थानीय परम्पराओं का भी व्यापारीकरण किया जा रहा है। वर्तमान उपभोगतावादी युग में सशक्त पाश्चात्य अर्थव्यवस्थाओं के प्रभाव के कारण सम्पूर्ण विश्व में अंग्रेजी भाषा, खान–पान, वेश–भूषा एवं आचार–विचारों का तेजी से प्रसार हो रहा है। सांस्कृतिक भूमण्डलीकरण की इस घटना से विश्व में सांस्कृतिक

विविधता का लगातार विघटन हो रहा है। तथा इसी क्रम में भारत जैसे देशों के जनजातीय समूहों की सांस्कृतिक पहचान खोती जा रही है।

मानव सभ्यता के इतिहास में समकालिक सर्वोच्चता को प्राप्त विकास की वर्तमान स्थिति ने स्वयं मानव को ही सर्वाधिक नुकसान पहुँचाया है। विभेदनकारी एवं विनाशकारी विकास प्रक्रिया के कारण "जीवन का अधिकार" भी मनुष्य के हाथ से निकलता जा रहा है। उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की वर्तमान विकास अवधारणा के कारण हुए प्रौद्योगिकी उन्नयन के फलस्वरूप आई सस्ते बहुराष्ट्रीय उत्पादों की बाढ़ में लघु, कुटीर एवं स्थानीय उद्योग बह गए। इन सब के कारण स्थानीय लोगों के रोजगार व आजीविका के साधन खत्म हो गए जिससे भुखमरी की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया। कृषि क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश से परम्परागत संबंधों के स्थान पर नई प्रक्रियाएं उभरी। किसानों की बहुराष्ट्रीय निगमों पर निर्भरता, प्रौद्योगिकी के अनावश्यक व अत्यधिक उपयोग और कीटनाशकों के अंधाधुँध व विवेकहीन इस्तेमाल के कारण बढ़ती उत्पादन लागत तथा घटते उत्पादन ने किसानों की माली हालत खराब कर दी है। बढ़ती ऋणग्रस्तता से मजबूर किसान आत्महत्या करके अपनी जीवन लीला समाप्त कर रहे हैं। अधिकतर जनजातीय समूहों की आजीविका कृषि पर निर्भर होने के कारण उनके रोजगार व आजीविका के साधन समाप्त प्रायः हो गए हैं।

विकास की वर्तमान प्रक्रिया ने पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाया है। जनजातीय समूहों का प्रकृति से नजदीकी रिश्ता रहा है। अविवेकपूर्ण दोहन से प्राकृतिक संसाधन लगातार घटते जा रहे हैं। प्रदूषण की समस्या सुरसा के मुँह की तरह बढ़ती ही जा रही है जिससे "हवा एवं पानी बिना विश्व" की गंभीर स्थिति उत्पन्न हो गई है। औद्योगिकीकरण व नगरीकरण से वनों का तेजी से विनाश हुआ है। फैलते मरूस्थल, घटता भूजल स्तर तथा छिद्रित होती ओजोन की परत कुछ अन्य पर्यावरणीय नुकसान हैं जिसके परिणाम स्वरूप न केवल प्राकृतिक आपदाएँ बढ़ रही हैं बल्कि कई जीव प्रजातियां व वनस्पति प्रजातियां भी विलुप्त हो रही हैं। वैश्विक तापन की घटना के कारण विश्व के शिखरस्थ बर्फीले क्षेत्र इतनी तेजी से पिघल रहे हैं कि आने वाले कुछ दशकों में सभी ग्लेशियर लगभग समाप्त हो जाएंगे। इससे समूद्रों का जल स्तर बढ़ेगा, तटवर्ती क्षेत्र जलमग्न हो जाएंगे, मौसम चक्र बदलने से बाढ़ एवं सूखे की स्थितियां दृष्टिगोचर होंगी तथा उत्पादन में भारी कमी के कारण विश्व में

खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। समकालीन विकास प्रक्रिया कई दृष्टियों से उपयुक्त नहीं मानी जा रही है क्योंकि इससे जहाँ एक ओर पर्यावरण की व्यापक क्षति हो रही है वहीं दूसरी ओर अत्यधिक असमानता बढ़ रही हैं। विगत एक वर्ष में आई विभिन्न रिपोर्टों जैसे मानव विकास रिपोर्ट 2014, विश्व विकास रिपोर्ट 2012, राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो रिपोर्ट 2013 तथा मानवाधिकार संचयिका रिपोर्ट 2012 इत्यादि का विश्लेषण करने पर समकालीन विकास प्रक्रिया के नकारात्मक प्रभाव सुस्पष्ट नजर आते हैं।[9] तथा विकास के इन नकारात्मक प्रभावों ने जनजातीय समूहों के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है।

विकास के वैकल्पिक मॉडल

प्रत्येक युग में विकास का कोई निश्चित प्रतिमान लोकप्रिय रहा है। अतीत का अनुभव है कि इन सभी प्रतिमानों ने मानव के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। समकालीन विकास प्रक्रिया ने विश्व तथा राष्ट्रीय स्तर व्यापक असमानताओं को जन्म दिया है अतः महसूस किया जा रहा है कि समकालीन भूमण्डलीकरण प्रक्रिया का विकल्प ढूढ़ा जाना चाहिए। विकास का यह वैकल्पिक प्रतिमान ऐसा हो जो सभी वर्गों, क्षेत्रों व राष्ट्रों हेतु समान रूप से उपयोगी होने के साथ–साथ बहुराष्ट्रीय निगमों से लेकर स्थानीय समुदायों तक की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। सतत् विकास, धारणीय विकास तथा समावेशी विकास के बाद इन के विकल्प के रूप में एक नया प्रतिमान उभरा है तथा कुछ विकासशील राष्ट्रों में यह सफल भी रहा है। स्वदेशी दृष्टिकोण तथा नैतिकता की भावना युक्त इस प्रतिमान को "ग्राम मॉडल" या "तृष्णमूल स्तर से भूमण्डलीकरण" की संज्ञा दी गई है। यह प्रतिमान वर्तमान यथार्थों को स्वीकार करते हुए मानता है कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता है अतः आवश्यकता है इसे सभी के लिए उपयोगी बनाने की ताकि विश्व के सभी राष्ट्रों एवं राष्ट्र के सभी क्षेत्रों व वर्गों को इसका समान लाभ मिल सके। यह प्रतिमान समष्टि(मैक्रो) वैश्विक संरचनाओं जैसे बहुराष्ट्रीय निगमों और व्यष्टि(माइक्रो) स्थानीय इकाईयों जैसे स्वयं सहायता समूह, सहकारी समितियां व स्थानीय उत्पादकों के मध्य संबंधों की स्थापना द्वारा दोनों को एक दूसरे के विकास का साधन बनाने का प्रयत्न करता है। इस प्रतिमान का उद्देश्य प्रबंधन के अन्तर्राष्ट्रीय कौशल को स्थानीय स्तर तक एवं स्थानीय ज्ञान व उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाने पर बल देना है। विकास प्रक्रिया

---

[9] संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा जारी मानव विकास रिर्पोट, 2014

को गाँव–स्तर पर पहुँचाने तथा स्थानीय गाँव को 'ग्लोबल विलेज' (विश्व गाँव) से जोड़ने के उद्देश्य के कारण इसे "ग्राम मॉडल" अर्थात् (ग्रास रूट एक्शन मैनेजमेंट) की संज्ञा दी गई है। भारत में आई.टी.सी. द्वारा प्रारम्भ किया गया ई–चौपाल कार्यक्रम ग्राम मॉडल पर ही आधारित है जिसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

जनजातियों के बेहतर भविष्य के लिए मुख्यधारा में जो लोग हैं उन्हें आदिवासियों के प्रति और सवंदेनशील होने, उनकी संस्कृति एवं सस्कारों को जानने व पहचानने तथा भाईचारे के भाव से सम्मान देकर उन्हें मुख्यधारा में जोड़ने की आवश्यकता है। इसके लिए देश के विभिन्न समाजों को एकजुट होकर काम करना पड़ेगा। विकास के सभी पक्षों पर ध्यान देने तथा इसे जीवन शैली व मूल्यों से जोड़ने के लिए शासक व शासित वर्ग के मध्य 'संस्थागत संवाद' विकसित करने और संसाधनों के उचित 'वितरण व नियोजन' की आवश्यकता है। इसके लिए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप, सभी अनिवार्य उत्पादन करने में सक्षम तथा एक दूसरे से स्वतंत्र, ऐसी स्थानीय या राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को विकसित करना पड़ेगा जो आवश्यकता आधारित व्यापार भी करती हों। आज बारहवीं पंचवर्षीय योजना की धुरी "तीव्र, अधिक समावेशी एवं सतत विकास की ओर" पर केन्द्रित विकास मॉडल को लाने की आवश्यकता है।[10] समावेशी विकास प्रक्रिया को अपनाना होगा क्योंकि इस विकास का लाभ समाज के कमजोर वर्गों सहित सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँचता है, भौगोलिक व आर्थिक असमानताएं घटती है तथा स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छ पयेजल, स्वच्छ पर्यावरण, पौष्टिक भोजन जैसी बुनियादी सुविधाओं तक सभी की पहुँच समान रूप से होती है।[11] आवश्यकता है विकास प्रक्रिया में आर्थिक संवृद्धि के साथ 'सकल मानवीय विकास' एवं 'सकल पर्यावरणीय उत्पाद' जैसे पहलुओं को जोड़कर समानता युक्त, सतत् एवं समावेशी विकास की ओर बढ़ने की, ताकि जनजातीय समूहों के लिए बेहतर आज का निर्माण हो सके और सुनहरे भविष्य की आशा की जा सके। जैसा कि हमारे प्रधानमंत्री ने कहा है "समग्र प्रगति हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी है। मुझे विश्वास है कि हम इस सामूहिक जिम्मेदारी को पूरी तरह निभाएंगे।"[12]

---

[10] बारहवीं पंचवर्षीय योजना का दृष्टिकोण पत्र, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली

[11] आर्थिक सर्वेक्षण 2013–14, वित्त मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली

[12] प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा अमेरिका यात्रा के अवसर पर दिया गया भाषण, वेबसाइट http://www.pmindia.nic.in से मुद्रित

खण्ड – दो

स्वास्थ्य एवं जनजाति क्षेत्र

जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिये योजनायें व वित्तीय प्रावधान

* डॉ. एस.एम. झरवाल

संविधान की धारा 342 के अनुसार देश में 700 से भी ज्यादा जनजातियाँ हैं। इनमें से 75 जनजातियाँ Vulnerable है जिन्हें प्रिमिटिव ट्राइबल ग्रुप (PTGs) के नाम से भी जाना जाता है। भारत की 2011 की जनसंख्या के अनुसार देश की 122 करोड़ जनसंख्या में से 10.43 करोड़ जनसंख्या इन जनजातियों की है जो कि कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। इनका लिंग अनुपात सामान्य जनसंख्या के 943 की तुलना में 990 प्रतिहजार है जो कि इस तथ्य को दर्शाता है कि जनजातियों में बेटी की अहमियत भी बेटे जैसी ही है। लगभग 7.6 करोड़ आदिवासी (73 %) देश के आठ राज्यों में (मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात, आन्ध्रप्रदेश, झारखण्ड व छत्तीसगढ़) बसते हैं। इसके अतिरिक्त देश के उत्तरी पूर्वी राज्यों में करीब 1.22 करोड़ आदिवासी हैं जो कुल जनसंख्या का 11.7 प्रतिशत है। देश में 90 ऐसे जिले हैं जिनमें जिले की कुल जनसंख्या का 50 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा जन–जातियों का है तथा इसके अतिरिक्त 62 जिलों में इनका प्रतिशत 25% से 50 % के बीच में है।

1947 में देश की स्वतन्त्रता से 1985 तक गृह मंत्रालय में एक Tribal Division जनजातियों से सम्बन्धित मामलों को देखता रहा। 1985 से 1998 तक जनजातियों के विकास की जिम्मेदारी कल्याण मंत्रालय को दी गयी। इसके बाद करीब डेढ़ वर्ष (मई 1998 से सितम्बर 1999) तक यह जिम्मेदारी सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय को दी गयी। देश में जनजातियों के समग्र सामाजिक व आर्थिक विकास के लिये जनजातीय मामलों का एक नया मंत्रालय 1999 में बनाया गया। इस मंत्रालय को जनजातियों से सम्बन्धित नीति, योजना एवं विकास कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करने की जिम्मेदारी दी गयी। लेकिन सेक्टर विशेश जैसे कृषि, उद्योग, शिक्षा आदि के

* **कुलाधिपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय अमरकंटक (म.प्र.)**

कार्यक्रमों के लिये सम्बन्धित मंत्रालय ही राज्यों के साथ समन्वय स्थापित करेंगे, ऐसी व्यवस्था की गयी। इसलिये आज भी जनजातीय मंत्रालय को यह मालुम नहीं है कि कौन से सेक्टर में क्या प्रगति हुयी है। उदाहरण के लिये 2012–13 वित्तिय वर्ष के लिये 21710 करोड़ रूपयों के प्रावधान की तुलना में असल खर्च 20184 करोड़ रूपये था। इस तरह से 1526 करोड़ रूपयें खर्च ही नहीं किये जा सके। साथ ही राज्य–विशेष में प्रगति की समीक्षा की व्यवस्था भी समुचित नहीं लगती।

यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि ज्यादातर जनजातियाँ क्षेत्र विशेष में रहती है। इसलिये इनके लिये संविधान की पांचवी (धारा 244 (1)) अनुसूची में और छटी अनुसूची में विभिन्न प्रावधान रखे गये हैं। पांचवी अनुसूची में वे क्षेत्र शामिल किये गये है (i) जिनमें जनजाति के लोगों की ज्यादा संख्या हो (ii) जो प्रशासनिक दृष्टि से एक जिला, ब्लॉक या तालुक में आते हों (iii) जो पड़ोसी क्षेत्रों की तुलना में पिछड़े हुये हों। इस तरह की व्यवस्था के मुख्य फायदे हैं कि जनजाति की जमीन का हस्तान्तरण नहीं हो सकता। सेठ साहूकारों से ट्राइबल्स को ऋण देने को नियन्त्रित किया जा सकता है। इन क्षेत्रों के लिये ट्राइबल एडवाइजरी कौंसिलस् भी गठित की गयी हैं। प्रतिवर्ष राज्यपाल इन क्षेत्रों के विकास के बारे में एक प्रतिवेदन (Report) भारत के राष्ट्रपति को भेजते हैं।

इसके अतिरिक्त, संविधान की धारा 244 (2) के अनुसार सरकार ने छटी अनुसूचि में कुछ राज्यों के क्षेत्रों को ''जनजाती क्षेत्र'' धोशित किये हैं। ऐसे क्षेत्र आसाम, मेघालय, त्रिपुरा व मिजोरम में हैं। ऐसे क्षेत्रों में जिला या क्षेत्रीय स्वतन्त्र कौंसिल गठित की हुई हैं जिनको उन क्षेत्रों के लिये कानून, न्याय व प्रषासनिक मामलों में स्वायत्ता दी गई है।

(1) जन–जातियों तथा वनवासियों के सशक्तिकरण के लिये कानून –

जन जातीय क्षेत्रों में प्रशासन को मजबूत बनाने के लिये तथा इनको वन उपज व जमीन पर मालिकाना हक देने के लिये सरकार ने दो मुख्य कानून बनाये। एक तो PESA-The Panchayat (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996 जिसके तहत पंचायतों को अधिकार दिये हैं। दूसरा, वन अधिकार कानून (FRA) - 2006 बनाया। इस कानून के तहत अन्य बातों के अलावा जन जातियों तथा वनवासियों को जमीन के अधिकार के साथ लधु वन उपज को एकत्र, उपयोग व बेचने का अधिकार दिया गया। इस कानून को लागू करने के लिये 2008 में नियम बनाये तथा कुछ और कठिनाइयों

को दूर करने के लिये सितम्बर 2012 में इन नियमों में संशोधन किये गये। 31.12.2012 तक भूमि स्वामित्व के 32.37 लाख दावे पेश किये गये जिनमें से 12.79 लाख दावों को सही पाकर पट्टे दिये गये तथा 15.12 लाख दावों को निरस्त कर दिया गया। इस तरह से 86.21ः दावों का निस्तारण किया गया।

(2) ट्राईबल सब–प्लान के लिये विशेष केन्द्रीय सहायता (SCA) तथा संविधान की धारा 275 (1) के तहत Grants देने का प्रावधान –

1974 में SCA कार्यक्रम लागू किया जिसका उद्देश्य था कि जनजातियों के लिये राज्य सरकार की योजनाओं को और मजबूती देना। नवीं पंचवर्षीय योजना तक इसका उद्देश्य केवल पारिवारिक आय में वृद्धि करना था लेकिन इसके बाद में जनजातीय क्षेत्रों में आधार–भूत संरचना के लिये भी राज्यों को मदद दी जाने लगी। सन् 2008 से इसका दायरा और बढ़ाया गया जिसमें जल प्रबन्धन, गोदाम निर्माण, बाजारों से कनेक्टीविटी रोजगार–उन्मुख प्रशिक्षण आदि के लिये भी सहायता दी जाने लगी। धारा 275 (1) के तहत जनजातिय क्षेत्रों में प्रशासनिक ढाँचे को मजबूत करने के लिये राज्यों को 100 % अनुदान की व्यवस्था की गयी। इसके लिये 26 राज्यों को अनुदान दिया जा रहा है। सन् 2002 में राज्य सरकारों को इस बारे में दिशा निर्देश जारी किये गये। इसमें अन्य बातों के अलावा यह सुनिशिचत किया गया कि कम से कम 30% प्रोजेक्टस महिला–उन्मुखी हों, 10% फण्ड Innovative क्रिया–कलापों के लिये हो और योजनाओं का क्रियान्वयन जन–भागीदारी से हो। इस उद्देश्य से प्रतिवर्ष करीब 100 करोड़ रूपया राज्यों को दिया जाता है।

वर्तमान व्यवस्था में प्रत्येक केन्द्रीय मंत्रालय अपने विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं में जनजातीय सब–प्लान के लिये कम से कम 7.5 प्रतिशत बजट का प्रावधान करता है। लेकिन यदि हम 2011 की जनसंख्या को मापदण्ड मानें तो यह प्रावधान कम से कम 8.6 प्रतिशत होना चाहिये। वास्तविकता यह है कि 2013–14 के लिये यह प्रावधान कुल योजना बजट का मात्र 4.43 प्रतिशत था एवं 2014–15 के लिये यह 5.63 प्रतिशत है। यह सर्वमान्य बात है कि असल व्यय इस से भी कम रहता है जैसा कि निम्न सारिणी से स्पष्ट है।

सारिणी–1 : जनजातीय विकास के लिये कुछ चयनित क्षेत्रों में बजट–प्रावधान व व्यय (2012–13)

		प्रावधान	व्यय	शेष
1	स्कूल शिक्षा व साक्षरता	4918.68	4655.23	263.45
2	उच्च शिक्षा	1159.00	897.10	261.90
3	महिला व बाल विकास	1517.00	1304.67	212.33
4	जनजातीय मामलों का मंत्रालय	4090.00	3056.68	1033.32
5	पेयजल व सफाई	1400.00	1300.00	100.00
	कुल	13084.68	11213.68	1871.00

उपरोक्त कुछ मुख्य सेक्टरस् का प्रावधान तथा असली व्यय का ब्योरा देखने से ज्ञात होता है कि इस दिशा में योजनाबद्ध तरीके से प्रयास करना जरूरी है। इसलिये इन सभी कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये जनजातिय मामलों के मंत्रालय में ही एक उच्चधिकार प्राप्त प्राधिकरण होना चाहिये जो समय–समय पर प्रगति की समीक्षा करे एवं आवश्यक कदम उठाने के लिये विभिन्न मंत्रालयों को दिशा–निर्देश दे।

वर्श 2014–15 के वित्तीय प्रावधान के अनुसार जनजातीय क्षेत्रों में प्रति–व्यक्ति व्यय करीब 3105 रू0 आता है जब कि राष्ट्रीय औसत योजना व्यय प्रतिवर्ष प्रति–व्यक्ति 5000 रूपये है। चूँकि जनजाति क्षेत्र बहुत पिछड़े हुये है एवं यहाँ करीब 50 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे है, प्रति व्यक्ति योजना व्यय को तेजी से बढ़ानें की आवश्यकता है।

भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय ट्राइबल सब प्लान के तहत करीब 275 स्कीमों में व्यय का प्रावधान करते हैं। कुल व्यय का 85 प्रतिशत हिस्सा सात मंत्रालयों का है जिन को यदि ठीक से मानीटरिंग हो तो काफी प्रगति हो सकती है। इसके अतिरिक्त कुल योजना व्यय का 8.6 प्रतिशत इन क्षेत्रों में उपलब्ध कराया जाय तो करीब 49500 करोड़ रूपयों का प्रावधान होगा जिससे कि सम्बन्धित योजनाओं को और प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकेगा।

(3) वित्तीय प्रावधानों के आधार पर विभिन्न कार्यक्रमों का विशलेषण –

2014–15 वर्ष के लिये केन्द्र सरकार के 33 मंत्रालयों तथा विभागों द्वारा जनजातीय क्षेत्रों के लिये 32386.84 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया है। इनमें से सात मंत्रालयों एवं विभागों का हिस्सा 87 प्रतिशत है जिनका विवरण नीचे सारिणी–2 में दिया गया है :–

सारिणी–2 : कुछ चयनित मंत्रालयों द्वारा 2014–2015 में जनजातीय क्षेत्रों के लिये वित्तीय प्रावधान–

		(रू. करोड़ में)
(1)	ग्रामीण विकास मंत्रालय	10359.00 रू.
(2)	जनसंसाधन विकास मंत्रालय	6930.00 रू.
(3)	जनजातीय मामलों का मंत्रालय	4479.00 रू.
(4)	स्वास्थ्य मंत्रालय	2513.00 रू.
(5)	महिला व बाल विकास मंत्रालय	1730.00 रू.
(6)	पंचायती राज मंत्रालय	1203.00 रू.
(7)	कृषि मंत्रालय	953.50 रू.
	कुल प्रावधान	28167.50 रू.

यह आवश्यक है कि इन मंत्रालयों द्वारा किये गये कार्यो की समय–समय पर लगातार एक अन्तर मंत्रालय समिति द्वारा सीमाक्षा होनी चाहिये। साथ ही वर्ष में एक बार स्वतन्त्र संस्थाओं द्वारा प्रगति का आकलन करवा कर आवश्यक सुधार किये जाने चाहिये जिससे कि इनके द्वारा चलाये जाने वाले कार्यक्रमों का लाभ प्रभावी ढंग से लोगों तक पहुँचाया जा सके।

कुल मिला कर जनजातीय क्षेत्रों में करीब 275 स्कीम व कार्यक्रम चलाये जा रहे है। जिनमें 16 बड़ी स्कीमों का हिस्सा करीब 79ः है। इनका विवरण सारिणी–3 में दिया जा रहा है।

सारिणी–3 : मुख्य योजनाओं/कार्यक्रम एवं जनजातीय क्षेत्रों के लिये वित्तीय प्रावधान (2014–15)

		(रू. करोड़ में)
1.	महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारण्टी एक्ट (MGNREGA)	5671.88 रू.
2.	इन्दिरा आवास योजना–ग्रामीण आवास	3953.60 रू.
3.	समेकित बालविकास सेवा (ICDS)	1730.00 रू.
4.	राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन	2260.49 रू.
5.	धारा 275(1) के तहत स्कीम	1317.00 रू.
6.	ट्राइबल सब–प्लान स्कीम	1200.00 रू.
7.	सर्व शिक्षा अभियान	3010.42 रू.
8.	प्राथमिक विधालयों में मिड–डे–मील स्कीम	1414.00 रू.
9.	यू.जी.सी. स्कीम	301.42 रू.
10.	शैक्षिक विकास–अध्यापकों की शिक्षा व प्रोढ़ शिक्षा	295.04 रू.
11.	पिछड़े क्षेत्र ग्राण्ट फंड (BRGF)	1121.00 रू.
12.	खास टनसदमतंइसम जनजातियाँ (PTG)	203.00 रू.
13.	समेकित जल प्रबन्धन प्रोग्राम (IWMP)	350.00 रू.
14.	नक्सल–प्रभावित क्षेत्रों को सड़क से जोड़ना	400.00 रू.
15.	आजीविका (NRLM)	733.00 रू.
16.	राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान	531.30 रू.
	कुल (78.71 %)	25492.15 रू.

(4) जनजातीय क्षेत्रों में शैक्षणिक, स्वास्थ्य व आर्थिक प्रगति –

इन सारी योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने के बाद भी 2011 की जनगणना के आधार पर यह देखा जा सकता है कि आदिवासियों के लिये आर्थिक व सामाजिक विकास की दिशा में अभी भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। निम्न सारिणी से यह स्पष्ट होता हैं :–

सारिणी – 4 : जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, घर, रोशनी व पानी की स्थिति

जनजाति क्षेत्रों में शैक्षिणिक स्वास्थ्य व आर्थिक प्रगति	कुल	पुरूष	स्त्री
1 @ साक्षरता (ग्रामीण) 5 Years & above	61.5 %	70.1 %	52.6 %
2 @ उच्च माध्यमिक शिक्षा (ग्रामीण)			
15 Years & above	4.2 %	5.7 %	2.7 %
3 @ ग्रेजुएट एवं ऊपर	1.6 %	2.2 %	0.9 %
4 @ स्कूल छोड़ने की दर (I toX)	71 %	70.6 %	71.3 %
5 @ नव–जात शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार बच्चे)	62.1 %	–	–
6 @ शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार बच्चे)	35.8	–	–
7 @ पाँच वर्ष से कम के बच्चों की मृत्यु दर			
(प्रति हजार बच्चे)	95.7	–	–
8 @ अस्पतालों में बच्चा जन्म दर	17.7 %	–	–
9 @ स्वास्थ्य योजना/बीमा प्रदातित परिवार	2.6 %	–	–
10 + गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या (ST) (2009–10)	47.5 % (ग्रामीण)	–	
	30.4 % (शहरी)	–	–
11 $ परिवार जिनके पास बैंकिंग सेवा, टेलीविजन,			
साईकिल, फोन, कम्प्यूटर, दोपहिया या कार नहीं है	37.3 %	–	–
12 $ घरों में रोशनी के लिये			
(i) बिजली नहीं हैं	48 %		
(ii) केरोसीन नहीं हैं	54 %	–	–
13 $ (i) घर में शौचालय नहीं हैं	77.40 %		
(ii) घर में स्नानघर नहीं हैं	83.00 %		
(iii) उचित घर नहीं हैं	83.00 %		
(iv) लकड़ी/ कोयला /			
उपले आदि से खाना पकाना	95.62 %	–	–
14 $ पीने के पानी का स्त्रोत			
(i) घर से दूर	33.6 %		
(ii) खुले कुओं से, झरनों, नदी, तालाब, झील आदि से	26.6 %	–	–

@ - Statistics of School Education – 2010-11

@ Source - राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण

\+ 2009–10 वर्ष के लिये – तेन्दुलकर प्रदत्त विधि द्वारा अनुमान

$ 2011 की जनगणना के अनुसार

उक्त तथ्यों से यह देखा जा सकता है कि जनजातीय क्षेत्रों में मूलभूत सुविधाओं की बहुत कमी है। इन्हें दूसरों की बराबरी पर लाने में व समाज की मुख्य धारा में लाने के लिये अभूतपूर्व प्रयास करने की आवश्यकता है।

(5) लघु–वन उपजों के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य योजना

सरकार ने लघु–वन उपज (Minor Forest Produce) के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य की नीति वर्श 2013–14 से लागू की है। यह अफसोसजनक बात है कि दो उत्पाद–बाँस व तेन्दू पत्ता इस स्कीम से बाहर रखे गये है।

ऐसा अनुमान लगाया गया था कि इस स्कीम को लागू करने के लिये प्रतिवर्ष 3000 करोड़ रू0 की आवश्यकता होगी। इसकी तुलना में जो प्रावधान 2014–15 वर्ष के लिये किया गया है वह मात्र 317 करोड़ रूपयें का है। इसलिये यह समझना मुश्किल नहीं है कि यह योजना केवल लोक–दिखावे के लिये है। इस स्कीम को प्रभावी ढंग से लागू करने की जरूरत हैं जिस में सम्बन्धित संगठनों एवं ऐजेन्सीयों को सुदृढ़ करने की भी आवश्यकता है।

(6) सारांश में यह कहा जा सकता है कि यदि जनजातियों की विकास में हिस्सेदारी सुनिश्चित करनी है तो निम्न कदम मददगार होंगे।

(i) केन्द्रीय बजट में, जो अभी (2014–15) जनजातीय क्षेत्रों के लिये कुल बजट का 5.63ः हिस्सा है उसे बढ़ाकर (2011 की जनगणना के आधार पर) 8.6ः करना चाहिये। इस का अर्थ यह है कि वर्तमान प्रावधान 32386.84 करोड़ रूपये को बढ़ाकर कम से कम 49450 करोड़ रूपये करने की आवश्यकता है।

(ii) साथ ही एक उच्चस्तरीय प्राधिकरण या अन्तर मंत्रालय समिति लगातार अन्य मुद्दों के अतिरिक्त प्रगति की समीक्षा करे एवं सुनिश्चित करे कि पूरा का पूरा वित्तीय प्रावधान सही काम में इस्तेमाल हो। इस के लिये समय–समय पर Third Party आकलन भी करवाया जाय। साथ ही राज्य–सरकार के कामकाज की समीक्षा भी प्रतिवर्ष की जाये।

(iii) यह सर्वविदित है कि जनजातिय क्षेत्रों में अपेक्षाकृत ज्यादा बेरोजगारी तथा गरीबी है। रोजगार के उपयुक्त अवसर वहाँ के युवाओं को उपलब्ध कराये जायें। 3000 से 5000 रू0 प्रतिमाह की नौकरी उनके गाँव या इलाकों में ही उपलब्ध कराने का प्रयास हो। वन–बन्धु स्कीम की तरह ही ऐसा प्रावधान हो। इससे यह सुनिश्चित

किया जा सकेगा कि वहाँ का युवा नक्सल–प्रभाव से बचेगा। साथ ही "Make in India" कार्यक्रम के तहत जनजाती के युवाओं को उचित प्रशिक्षण देकर रोजगार उपलब्ध कराया जाय। इससे वे समाज की मुख्य–धारा में शामिल हो सकेंगे। अगले पांच वर्ष में प्रयास यह होना चाहिये कि हर परिवार से एक व्यक्ति को रोजगार दिया जाये। इस तरह कम से कम 50 लाख युवाओं को रोजगार देने का लक्ष्य रखा जाय। इस तरह से 15 से 17 लाख लोगों को प्रतिवर्ष रोजगार देना होगा तो करीब 10,000 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष का प्रावधान करना होगा।

(iv) आदिवासी क्षेत्रों में ज्यादातर परिवार जंगलों से लघु वन उपज (MFPs) इकठ्ठा करके आय प्राप्त करते है। यह उनका भरण–पोषण करने का महत्वपूर्ण जरिया है। लेकिन उनको ऐसे उत्पादों की ठीक कीमत नहीं मिलती है। इस दिशा में पिछले एक वर्ष से एक नई स्कीम भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ की गयी है। लेकिन इस स्कीम को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिये जहाँ प्रतिवर्ष 3000 करोड़ रूपये खर्च के अनुमान की तुलना में 2014–15 के लिये केवल 317 करोड़ रू0 का ही प्रावधान किया गया है। दुर्भाग्य की बात है कि बाँस व तेन्दू पत्ता जो कुल डथ्च्े के मूल्य का 50ः कवर करते है, इन्हें स्कीम से बाहर रखा गया है। इसका मुख्य कारण कागज उद्योग व बीड़ी उघोग को लाभ देना लगता है। इसलिये इन दो उत्पादों को भी स्कीम में शामिल करने की आवश्यकता है जिससे कि जंगल पर आधारित ट्राइबलस् को शोषण से बचाया जा सके।

(v) एक ABC विष्लेशण के आधार पर बड़े राज्यों, बड़े मंत्रालयों तथा बड़ी स्कीम व कार्यक्रमों को प्राथमिकता के आधार पर निगरानी व समीक्षा द्वारा प्रभावी बनाया जाय। इस विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि यदि सरकार मुख्य रूप से इन राज्यों व जिलों में अपने प्रयासों को केन्द्रित करे तो इनकी 85ः जनसंख्या की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है।

(vi) चूँकि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, घर, रोशनी, पानी व गरीबी की समस्या ज्यादा है, इस दिशा में अगले पाँच साल के लिये व्यूह–रचना तैयार करने की आवश्यकता है जिसे डपेपवद डवकम में लागू करने का प्रयास करना चाहिये।

(vii) ज्यादातर जनजातीय क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधन जैसे खनिज व लकड़ी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। लेकिन इनका फायदा उन लोगों व कम्पनियों को मिलता है जिनको इनका दोहन करने का लाईसेंस/अधिकार मिलता है। इस दिशा में

सरकार को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि इनके मूल्य का एक निश्चित प्रतिशत उस क्षेत्र में रहने वाले जनजाती के परिवारों को भी दिया जाय।

(viii) Corporate Social Responsibility (CSR) के तहत उपलब्ध धन का उपयोग भी इन जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिये योजना–बद्ध तरीके से किये जाने की आवश्यकता है। सरकार यह सुनिश्चित करे कि उनके सकल लाभ का कम से कम अमुक प्रतिशत प्रत्येक कम्पनी इन क्षेत्रों में खर्च करेगी।

(ix) FRA- 2006 के लागू करने के परिपेक्ष में यह देखने वाली बात हैं कि जो पट्टे दिये गये उनमें जनजाति के परिवारों को कितने दिये गये तथा जो दावे खारिज किये गये उनमें ट्राइबल्स के कितने दावे थे। यह जानना इसलिये महत्वपूर्ण है कि इस दिशा में न्यायपूर्ण निर्णय हुये हैं या नहीं। और यह मामला मानव–अधिकार से भी जुड़ा हुआ है। इस के अतिरिक्त यह भी जानना जरूरी होगा कि लघु वन उपज के संग्रहण, उपयोग तथा बिक्री के अधिकार दिये गये हैं या नहीं। यदि नही तो इस दिशा में क्या उपाय किये जा रहे है।

अन्त में, निम्न कविता, जिसमें वर्तमान में बहुत सी योजनाओं, कार्यक्रमों तथा कानूनों के बावजूद जनजाति के लोगों की पीड़ा व अपेक्षा (आशा) स्पष्ट तौर से झलकती है :–

"हम झूठमूठ का कुछ भी नहीं चाहते,
जिस तरह से सदियों से व स्वतन्त्रता के 67 वर्ष बाद भी,
हमारी केवल झोंपड़ी व दूसरों के महल,
जिस तरह से खाने को केवल 5–10 किलो मोटा अनाज झोपड़ी में,
अगले दिन के लिये सहेज कर रखते हैं,
फिर उसके अगले दिन 5–10 किलो अनाज इकठ्ठा करने के लिये फिर निकल पड़ते हैं,
जिस तरह हमारे युवा 1000–2000 रू. महिने में धनी या माओवादियों के गिरवी हो जाते हैं,
इसी तरह का हमारा सहमा–सिकुड़ा भविष्य है,
जिस तरह सूरज, चांद, हवा व बादल, घरों, खेतों व जंगलों में हमारे अंग संग रहते हैं,

हम उसी तरह सरकारों, विशवासों व खुशियों को अपने साथ–साथ देखना चाहते हैं,

हम जिन्दगी, बराबरी या कुछ भी और,

इसी तरह का सचमुच का चाहते हैं।

हम सब–कुछ सचमुच का देखना चाहते हैं।''

* * * * *

जनजातियों के विकास के संदर्भ में अनु0 जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी

* डा0 अनीस अहमद
** कृष्ण कुमार भास्कर

प्रस्तावना

भारत देश अपने आप में अनेक विशेषताएं समाहित किये हुये है, यह देश अनेक धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों और अनेक प्रचलित भाषाओं के एक पुंज के रूप में परिलक्षित होता है। भारतीय संविधान की उद्देशिका के द्वारा भारत के लोगों को ''सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय और प्रतिश्ठा और अवसर की समानता'' का लक्ष्य निर्धारित किया गया है इस परम् उद्देश्य को लेकर 26 नवम्बर, 1949 को भारत के लोगों के द्वारा अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया।

परन्तु स्वतन्त्रता के लगभग 68 वर्षों के व्यतीत हो जाने पश्चात् भी भारतीय समाज का कुछ ऐसा वर्ग है जिन्होंने अपने मानवाधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष किया और वर्तमान में भी संघर्षशील है। अधिकारों से वंचित रहे वर्गों में एक वर्ग जिसे आदिवासी वर्ग या जनजाति वर्ग के नाम से जाना जाता है। यह वर्ग आज भी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षिक दृष्टि से अति पिछड़ा हुआ है। भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार इस समुदाय की जनसंख्या 104,281,034 अथवा 8.6 प्रतिशत सुनिश्चित की गयी है और यह भौगोलिक रूप से 15 प्रतिशत क्षेत्र में निवास करते है। वास्तव में यह समुदाय देश के दूरस्थ इलाकों में अकेले निवास करने के कारण जरूरी सुविधाओं को प्राप्त करने में बहुत कठिनाईयों का सामना करते हैं।

---

* सहायक आचार्य, विधि विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ ।
** अध्येता, एल0 एल0 एम0 तृतीय सेमेस्टर विधि विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ।

प्रवासी प्रकृति एवं संस्कृति को धारण करने के कारण यह लोग विकास की मुख्य धारा से हमेशा वन्चित रहते हैं। अतः इस भारतीय जनजाति का संविधान सम्मत विकास नहीं हो पाया है। भारत में आज यदि नदियां या जंगल शुद्ध स्वरूप में स्थिति है तो यह जनजातियों की प्रकृति पर अवलम्बित जीवन पद्धति है।

29 दिसम्बर, 2006 को भारत सामाजिक विधायन में एक नये युग का सूत्रपात हुआ जब तत्कालीन राश्द्रपति ए0पी0जे0अब्दुल कलाम ने अनु0जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधि0, 2006 को अपनी स्वीकृति प्रदान की। यह तिथि आदिवासी जनजाति एवं अन्य परम्परागत वन निवासी के लिए किसी उनकी पवित्र धार्मिक तिथि से कम नहीं थी। यह तिथि इस वर्ग के लिए उनके संघर्ष की विजय एवं उनके वास्तविक अधिकार के स्वामी होने की स्थापना दिवस के रूप में स्मृतिचिन्हित है।

इस अधिनियम के द्वारा भारतीय जनजातियों को वन भूमि में निवास, उपयोग, उपभोग एवं संरक्षण से सम्बन्धित अधिकारों को विधिक आधार देने का सराहनीय प्रयास किया गया है। अनुसूचित जनजाति को पूर्व में वन भूमि में निवास, उपयोग, उपभोग एवं इसके समानान्तर किसी अन्य अधिकारों को न तो तथ्यतः (*de facto*), न तो विधितः (*de jure*) किसी भी प्रकार की विधिक मान्यता प्रदान नहीं थी परन्तु **अनु0जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधि0, 2006** के द्वारा वन भूमि संबंधित अधिकारों को मान्य देने और विहित करने के लिए इस अधि0 के द्वारा प्रावधान किया गया।

अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी के लिए वनाधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है क्योंकि इसके द्वारा इनके जीवन में स्थिरता एवं विकास का आगम सृजित होता है क्योकि जीविकोपार्जन व निवास के लिए वन भूमि, वृत्ति, पेशा करने एवं वन का सदुपयोग एवं उपभोग एवं संरक्षण इत्यादि का अधिकार एवं वन संरक्षण व परिवर्धन, वन हानि सृजित न करने का दायित्व अधिरोपित किया गया।

यह लेख अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित सांविधिक प्रावधानों, उनके वर्तमान और भविष्य के विकास में उद्भूत समस्याएं मुख्य रूप से उनके लिए भारतीय संसद द्वारा निर्मित अनु0जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधि0, 2006 के विभिन्न प्रावधानों का विश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रयास है।

संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षिक विकास

भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व शैक्षिक विकास के लिए संविधान में विशिष्ट उपबन्ध किया गया है उदाहरणस्वरूप में जैसे भारतीय संविधान के भाग 16 में वर्णित विशेष उपबन्ध संसद और राज्य विधान मण्डलों में समानुपातिक प्रतिनिधित्व (अनु0 330 और 332), विशेष क्षेत्रों में सामान्य नागरिकों को मुक्त रूप से भ्रमण या अबाध विचरण या संचरण या बसने अथवा सम्पत्ति अर्जित करने पर प्रतिबन्ध (अनु 19(5) का प्रावधान विहित है। संविधान के भाग 3 में आरक्षण के लिए विशिष्ट प्रावधान अनुच्छेद 15(4) जिसके अन्तर्गत राज्य, जनजाति समुदायो के लिए सामान्य आरक्षण का प्रावधान किया गया है और अनुच्छेद 16(4) में विशेष रूप से नौकरियों और नियुक्तियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। संविधान के भाग 4 राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 46 में विहित सिद्धान्त जनजातियों सहित समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने की बात करता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 244 और 244(क) की पॉचवीं और छठी अनुसूची में प्रावधान करके राज्य को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह जनाजाति क्षेत्रों में विशेष प्रशासनिक व्यवस्था कर सकता है। संविधान में अनुसूचित जनजाति के क्षेत्रों के निर्धारण का प्रावधान किया है। अनुच्छेद 342 में अनु0 जनजातियों की सांविधानिक मान्यता का प्रावधान किया गया है।

इन संवैधानिक प्रावधानों के अलावा भारतीय संसद ने जनजाति समुदाय के संरक्षण के लिए बनाये गये कुछ महत्वपूर्ण विधायन जैसे (क) **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989** के द्वारा जनजातियों को संरक्षण प्रदान किया गया जिससे कि जनजातियों के सामाजिक न्याय का विकास हो सके। (ख) **पंचायत प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1996** इस अधिनियम के द्वारा जनजाति को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वे अपने परम्पराओं और रीति रिवाजों, सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक संसाधनों और ग्राम सभा के जरिये परम्परागत विवाद निस्तारण पद्धति को संरक्षित रख सके। (ग) **अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधि0, 2006** के द्वारा अनु0 जनजातिय लोगों के साथ हो रहे सदियों से अन्याय को

समाप्त करने एवं सतत परिस्थितिकी को प्राप्त करने के उद्देश्य से पारित किया गया है।

सन् 1857 की महान क्रांन्ति की पृष्ठभूमि में अंग्रेजो के द्वारा ''आपराधिक जनजाति अधिनियम बनाया गया था। सन् 1949 में श्री आयंगर जॉच समिति के आधार पर इनको अपराधी के रूप से हटाकर विमुक्त घोषित किया गया। सन् 1953 में काका कालेकर की अध्यक्षता में बने पिछड़ा वर्ग आयोग ने विशेष सख्ती के साथ यह बात कही कि इनको कोई अपराधी जाति नहीं कहेगा साथ ही इनके आर्थिक, शैक्षिक विकास, सुरक्षा और पुनर्वास समेत कई कार्यक्रमों की सिफारिश की गई। तिथि 23 अक्टूबर, 2003 में राष्ट्रीय जनजाति आयोग बना यह आयोग अपने कर्तव्यों को पूर्ण नहीं कर सका और बिना रिपोर्ट प्रस्तुत किये तिथि 21 नवम्बर, 2004 को भंग हो गया।

सरकार के द्वारा बी0एस0 रेनके की अध्यक्षता में 14 मार्च 2005 को विमुक्त, घुमन्तू और अर्धघुमन्तू जनजातियों के लिए आयोग का गठन किया इस आयोग ने जुलाई 2, 2006 की अपने रिपोर्ट प्रस्तुत किया जिसमें आयोग ने 76 सिफारिशों की 29 अगस्त और 17 सितम्बर, 2008 को सम्बन्धित मन्त्रालयों को भेजी जा चुकी हैं।

जनजातीय उपयोजना एवं जनजातीय विकास

भारत की स्वतत्रंता के पश्चात संवैधानिक निर्देशों और अनेक विधायीय और कार्यवाहक उपायों को सरकार द्वारा निर्मित किये जाने के बावजूद सामान्य लोगों और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के मध्य रहन सहन में बहुत अधिक अन्तर था। इस वर्तमान अन्तर को समाप्त करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा निरन्तर सफलतापूर्वक प्रसास किये जाने के पश्चात आज भी एक बृहद अन्तर अस्तिवान था। अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के सामाजिक–आर्थिक पिछडेपन को समाप्त करके, विकास उद्गम के लिए एक विशिष्ट और केन्द्रित रणनीति बनायी गयी। उनके मध्य सम्बन्ध में सभी के लाभ को आर्थिक विकास में साम्य की रीति से शामिल करना था। इसको करने के लिए विशिष्ट अनुभाग योजना अनुसूचित जातियों के लिए प्राप्त बनाया गया। इसको हम अनुसूचित जाति उपयोजना और अनुसूचित जनजातीय उपयोजना के नाम से जानते है। विशिष्ट केन्द्रिय सहयोग से अनुसूचित जाति उपयोजना और जनजाति उपयोजना के कार्यक्रम को सन् 1979 में लागू किया गया। इसी प्रकार का प्रयास 11वीं एवं 12वीं पंचवर्षीय योजना भी शामिल किया गया है।

अनुसूचित जनजातीय उपयोजना (टीएसपी) का मुख्य उद्देश्य समस्त जनसंख्या और जनजातीय जनसंख्या के बीच सरकारी संसाधनों का औचित्यपूर्ण आवंटन है। अधिकांश जनजातीय जनसंख्या कम मुखर होने एवं सुदूर क्षेत्रों में रहने के कारण परंपरागत रूप से वंचित रही है एवं इन्हीं कारणों से राज्यों में या देश की जनसंख्या की तुलना में अपनी जनसख्या के प्रतिशत के अनुसार संसाधानों में अपना यथोचित अंश प्राप्त नहीं कर पा रही है। यहां तक कि जब जनसंख्या के अनुपाति में संसाधन आबंटित किए जाते है, तब भी कार्यकर्मो के क्रियान्वयन में कठिनाई एवं जनजातीय लोगों की ओर से ठोस मांग का अभाव के कारण वास्तविक व्यय कम रहता है, जिसकी परिणति इस तर्क में होती है कि जनजातीय लोगों और जनजातीय बहुल्य क्षेत्रों की सरकारी साधनों को ग्रहण करने की क्षमता ही कम है। परिणामस्वरूप जनसंख्या के आधार पर आबंटित यह धनराशि भी व्यपगत हो जाती है– जिसे आगामी वित्तीय वर्षो में उस राशि को गैर जनजातीय लोगों को अंतरित किए जाने को तर्कसंगत बताने के एक तरीके के रूप में देखा जा सकता है।

जनजातीय जनसंख्या/क्षेत्रों के लिए सरकारी संसाधनों का आनुपातिक आबंटन करने में विफलता तो एक खामी है ही, लेकिन जब मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) और अधोसंरचना के मूलभूत मापदंडों की जनजातीय और समस्त जनसंख्या/क्षेत्र के बीच तुलना की जाती है तो स्थिति और भी बद्तर दिखती है जनजातीय जनसंख्या विरल एवं बिखरी हुई है तथा प्रायः छोटे–छोटे मजरे टोले और पहाड़ी तथा दुर्गम क्षेत्रों में निवास करती है। जनजातियों के लिए साक्षरता, जीवनकाल, शिशु मृत्यु दर और मात् दर, आया स्तर, खाद्य सुरक्षा इत्यादि शेष जनसंख्या की तुलना में बद्तर है। यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है क्योकि– (क) उग्रवादी समूहों की निरंतर उपस्थिति मूलभूत सामाजिक कार्यक्रमो जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका आदि को रोकते है। और इसके लिए हिंसा का सहारा लेते है एवं (ख) कुछ सरकार प्रायोजित कार्यक्रम जलाशयों, जनजातीय निवास स्थानों आदि को आरक्षित वन, वन्य जीव अभ्यारण, खनन क्षेत्र इत्यादि घोषित करके बड़ी संख्या में जनजातीय आबादी का विस्थापन करते है। और जनजातियों को वन से खाद्य पदार्थ प्राप्त करने और वन उत्पादों के संग्रहण से भी वंचित करती है, जो उन्हें नगद आय प्रदान करती थी। उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए जनजातीय लोगों के लिए एक ऐसे विधायन की आवश्यकता थी जो इनके परम्परागत वन आधारित अधिकारों को विधिक संरक्षण प्रदान कर सके।

वनाधिकार अधिनियम का उद्भव एवं वर्तमान

इस अधिनियम का उद्भव प्रथम बार भारतीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष बनवासी सेवा आश्रम के द्वारा एक लोकहित वाद ''बनवासी सेवा आश्रम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 1992 के नाम से दाखिल किया गया। यह वाद बनवासी जनजाति के भौतिक कब्जे वाली वन भूमि और उनके जोत जो कि राज्य सरकारी के द्वारा नेशनल थरमल पावर कारपोरेशन को प्रदान कर दिया गया था। माननीय उच्चतम न्यायालय में भौतिक कब्जे के आधार पर चुनौती दिया गया था। निर्णय में माननीय न्यायाधीश कुलदीप सिंह के द्वारा तथ्यों का अवलोकन करने के पश्चात सर्वप्रथम अनु0 जनजातियों को वनभूमि और जोतों पर उनके भौतिक कब्जे वाली भूमि के रूप में तथ्यतः (*de facto*) मान्यता प्रदान की गई अर्थात तथ्यों पर आधारित मान्यता के रूप में मान्यता प्रदान किया गया। इस निर्णय के लगभग 14 वर्षों के व्यतीय हो जाने के पश्चात भारतीय संसद के द्वारा वर्ष 2006 में **अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006** पारित करके उनको विकास की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया गया।

अनुसूचित जनजाति और परम्परागत वनवासियों को जो संसद द्वारा निर्मित विधि अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 के द्वारा जो वन अधिकार प्रदान किया गया है वह जनजाति के लिए एक विधिक जीवनदान के तुल्य है क्योंकि वन भू स्वामित्व का अधिकार, जीविकोपार्जन का अधिकार, कृषि करने का अधिकार, पेशा व वृत्ति करने का अधिकार, वन के उपयोग एवं उपभोग व संरक्षण संवर्धन करने का अधिकार इस अधिनियम के द्वारा ही प्रदान किया गया है। इस कारण वन अधिकार एक विधिक जीवनदान है और इस अधिनियम की धारा 3 में ये अधिकार दिये गये हैं। अध्याय 3 की धारा 4 के द्वारा वन अधिकारों को मान्यता प्रदान किया गया है और उनके निहित किया गया है। अध्याय 4 में वन अधिकारों को निहित करने के लिए प्राधिकारी और प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है। अध्याय 5 में अपराध और शास्तियों का प्रावधान किया गया है।

इस अधिनियम के अध्याय 4 में वन अधिकारों को निहित करने के लिए ग्राम समितियाँ, उपखण्ड स्तर की समिति, जिला स्तर की समिति व राज्य स्तर की मानीटरिंग समिति की व्यवस्था इस अधिनियम में उपबन्धित है। वन अधिकार के अभिलेख के मामले पर जिला स्तर की समिति का निर्णय अन्तिम एवं आबद्धकर होगा।

मानीटरिंग समिति का गठन राज्य सरकार के राजस्व विभाग, वन विभाग और जनजाति मामले विभाग के अधिकारी और अन्य तीन पंचायती राज्य संस्थाओं के तीन सदस्य जिसमें कि एक सदस्य महिला होगी, से मिलकर बनेगा।

भविष्य में उद्भूत अन्य विधिक अधिकार

केन्द्र एवं राज्य सरकार के अन्य विशिष्ट योजनाओं से उद्भूत अन्य विधिक अधिकार जैसे मताधिकार, लोकप्रतिनिधित्व का अधिकार, स्वायतशासी संस्थाओं में जिसमें केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा अनुदान या वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है है, उसके प्रशासन एवं प्रबन्धन का अधिकार और नागरिकता का अधिकार इत्यादि उद्भूत होंगे क्योंकि इनके पास निवास के अधिकार की मान्यता नहीं थी न ही इनका जनगणनाओं के अभिलेख में इनकी प्रवासी संस्कृति के कारण सही रूप में पुष्टि नहीं हो पाती थी जो कि इस अधिनियम के आने के पश्चात् हुई है।

वनाधिकार का प्रवर्तन विधिक चुनौती

जनजाति बाहुल्य राज्यों में इस अधिनियम का प्रवर्तन एक विधिक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

प्रथम विधिक चुनौती यह है कि वन भूमि के सम्बन्ध में अधिकारों को ऐसी मान्यता देने और निहित करने के लिए ''अपेक्षित साक्ष्य की प्रकृति का उपबंध करने के लिए'' यह अधिनियम बनाया गया है इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जब तक यह साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया जायेगा तब तक इन वन अधिकारों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

द्वितीय विधिक चुनौती यह है कि अन्य परम्परागत वनवासी की दशा में इन अधिकारों को प्राप्त करने की लिए उस वन भूमि पर तिथि 13.12.2005 से पूर्ण तीन पीढ़ियों तक निवास करने का साक्ष्य दिया जाना अपेक्षित एवं आवश्यक है। पीढ़ी से 25 वर्ष की समयावधि को मानक माना गया है।

तृतीय विधिक चुनौती जहॉ जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासियों को तिथि 13.12.2005 वन भूमि से पुनर्वास के उनके वैध हक प्राप्त किये बिना अवैध रूप से बेदलखल या विस्थापित किया गया था इसका अपेक्षित साक्ष्य आवश्यक है।

चतुर्थ विधिक चुनौती मान्यता प्राप्त करने की मुख्य विधिक चुनौती या शर्त यह है कि ऐसी जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासियों के द्वारा तिथि 13.12.2005 के पूर्व वन भूमि में अधिभोग प्राप्त कर चुकी है।

पंचम विधिक चुनौती इस अधिनियम के द्वारा प्रदत्त कोई अधिकार केवल वंशागत ही होगा यह अधिनियम संक्रमणीय या अन्तरणीय नहीं होगा।

छठा विधिक चुनौती जनजाति मामलों का मन्त्रालय भारत सरकार के द्वारा ''अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधि0, 2006'' के प्रवर्तन की तिथि 30.4.2014 तक की रिपोर्ट प्रस्तुत किया है इसमें इस अधिनियम के विरूद्ध न्यायालय में संस्थित किये गये वादों की संख्या 1426973 है वाद अधीन विवादित क्षेत्रफल 2235157.64 हेक्टेयर (5523141.58 एकड़) है। यह निम्न 14 राज्य में संस्थित वादों के आंकड़े हैं, वे राज्य है– आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमांचल प्रदेश, झारखण्ड, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल का है। इस रिपोर्ट से इस अधिनियम की विधिक चुनौती स्पष्ट हो जाती है।

उपरोक्त चुनौतियों का सामना इस अधिनियम के प्रवर्तन में अनुसुचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासियों को और राज्य सरकारों को करना होगा क्योंकि जनजातियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व शैक्षिक स्थिति विकसित नहीं है।

निष्कर्ष

निस्संदेह हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय संविधान द्वारा निर्गत समस्त प्राविधानित अधिकारों को दिये जाने के पश्चात् भी वर्तमान समय में अनुसूचित जनजाति का समुचित एवं संविधानसम्मत विकास नहीं हो पाया है और अनुसूचित जनजाति वर्तमान समय में विकास की मुख्य धाराओं से अछूती है। इसी क्रम में भारतीय जनजातियों को विकास की मुख्यधारा में शामिल करने हेतु 2006 में भारतीय संसद के द्वारा अनुसूचित जनजाति के लिए विशिष्ट रूप से निर्मित अधिनियम अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 को पारित करके लम्बे सयम से वंचित रह रही जनजातियों को वन अधिकारों को मान्यता प्रदान की गयी परन्तु बहुत ही दुखद बात यह है कि इस महत्वपूर्ण वनाधिकार जैसा अधिनियम जो कि अनुसूचित जनजाति के लिए एक विधिक जीवनदान के रूप में उपलब्ध होने के बावजूद इस अधिनियम का पूर्णतया क्रियान्वयन सुनिश्चित नहीं किया जा सका। अतः इस अधिनियम के अधिनियमित हुए आठ वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात भी अनुसूचित जनजाति को उनका वनाधिकार अभिप्राप्त नहीं हो पाया है। अतः अब समय आ गया है कि इस अधिनियम की भाषा को चरितार्थ कर जनजातियों को

उनका वनाधिकार प्रदान कर उनको सतत विकास की मुख्य धारा से जोड़ना आवश्यक है। जिससे उनका भविष्य में समग्र विकास सुनिश्चित किया जा सके।

सन्दर्भ

ग्रन्थ–

1. शुक्ला बी0एन0 'कान्शटीट्यूशन आफ इण्डिया', ट्वेन्टी फिफ्थ एडीशन, 2013, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ
2. पाण्डेय जे0एन0, 'भारत का संविधान', तैंतालिसवां संस्करण, 2010, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद
3. सिंह अमर कुमार, एम0के0 जब्बी काउन्सिल फार सोशल डेवलपमेन्ट, 'ट्राइबल्स इन इण्डिया', डेवलपमेन्ट डिप्राइवेशन एण्ड डिसकान्टेन्ट, पब्लिश रिप्रिन्टेड, 2004 पब्लिकेशन हर आनन्द, पब्लिकेशन प्राइवेट लि0, न्यू देहली

कानून–

4. अनु0जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006
5. अनु0जाति और अनु0 जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989
6. बनवासी सेवा आश्रम बनाम स्टेट आफ यू0पी0एण्ड अदर्स आन 19 फरवरी, 1992, ए0आई0आर0 920, 1992 एससीआर (1) 857

पत्रिकाएं–

7. इण्डिया टुडे, 13 नवम्बर, 2013
8. इण्डिया टुडे, 16 अक्टूबर, 2013
9. प्रतियोगिता दर्पण/सितम्बर/2013
10. प्रतियोगिता दर्पण/अगस्त/2013
11. 'योजना', जनवरी, 2014
12. दलित आदिवासी दुनिया, नई दिल्लीः रविवार 5–11 अगस्त, 2012, वर्शः11,अंकः41
13. दलित आदिवासी दुनिया, नई दिल्लीः 8जून,2014
14. दलित आदिवासी दुनिया, नई दिल्लीः 3अगस्त,2014

समाचार पत्र–

15. द हिन्दू, सोमवार, जुलाई 2, 2012, इलाहाबाद
16. दैनिक जागरण, शनिवार 11 अगस्त, 2012

ई–स्रोत–

17. बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) भाग–3 योजना आयोग भारत सरकार
18. एच0टी0टी0पी0 / / इएन.विकीपीडिया.ओआरजी / विकी / आदिवासी
19. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.दलितआदिवासीदुनियां.काम
20. डब्ल्यूडब्ल्यूडब्ल्यू.फारेस्टराइट.जीओवी.इन (तीस अप्रैल,2014 रिपोर्ट)

* * * * *

विकास एवं जनजातियों का भविष्य
(झारखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में)

*** लक्ष्मी सिंह**

विकास शब्द के कई अर्थ हैं जैसे वृद्धि, उत्पादन, उत्थान, आदि। विकास कई प्रकार के होते हैं, जैसे – सामाजिक विकास, मानव विकास, बौद्धिक विकास, सम्पोषण विकास, आदि। विकास कई क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है जैसे आर्थिक विकास, कृषि विकास, पथ–परिवहन विकास, पर्यटन विकास, आदि। विकास शब्द में गतिशीलता है, लक्ष्य तय कर या नहीं भी तय कर के अच्छी स्थिति की ओर बढ़ना। जो रूक गया वह विकास नहीं क्योंकि विकास निरन्तर गति से चलते रहता हैं।

आधुनिक समय में विकास की परिभाषा ज्यादातर आर्थिक/वित्तीय उन्नति से जोड़कर देखा जाता है। किसी भी देश अथवा राष्ट्र, किसी भी कौम को, उसकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर, विकसित, विकासशील अथवा अल्प विकसित कहा जाता है। उदाहरण स्वरूप स्वीडन, नारवे, यु.एस.ए., ब्रिटेन इत्यादि को विकसित देश कहा जाता है क्योंकि उनके यहाँ प्रति व्यक्ति आय काफी ऊँची है, उनके नागरिकों को ढेर सारी भौतिक सुख सुविधाएँ हासिल हैं, लोग शिक्षित हैं, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ नागरिकों को उपलब्ध हैं, पथ–परिवहन प्रक्षेत्र बहुत उन्नत है, विधि व्यवस्था का अच्छा इन्तज़ाम है, गरीबी कम है, आदि। जो देश विकासशील की परिभाषा में आएँगे, वे हैं भारत, चीन, ब्राजिल, रूस, दक्षिण अफ्रिका, इत्यादि। विकासशील देशों को विकसित होने में समय लगेगा क्योंकि उन्हें कई प्रक्षेत्रों में दीर्घकालीन मेहनत करनी पड़ेगी। ज्यादातर विकासशील देशों की आबादी वृहत होती है, जैसे भारत एवं चीन, तथा इस आबादी में नाना प्रकार के धार्मिक, सामाजिक एवं जाति के लोग रहते हैं जिनकी जरूरतें एक सा नहीं होती। विकसित देशों में अधिकतर आबादी में समरूपता होती है

* **आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त), पूर्व मुख्य सचिव, झारखंड**

जिसके चलते उन देशों का विकसित होने में ज्यादा कठिनाई नहीं हुई होगी, किन्तु भारत जैसे विकासशील देश में आबादी में एक रूपता नहीं रहने के कारण विकास की राह में भिन्न तरीके अपनाए जाते रहे हैं ताकि सभी का विकास साथ साथ हों। सभी तरह से पिछड़ा हुआ देश को अल्प विकसित की श्रेणी में गिना जाता है जैसे अफ्रिका के अधिकतर देश, बांग्लादेश, म्यांमार, आदि ।

विकास मात्र वृद्धि नहीं है। वद्धि तो सिर्फ परिमाणात्मक होता है। विकास को वृद्धि के साथ गुणात्मक भी होना चाहिए। अगर विकास का मतलब है बेहतर पथ, समग्र विद्युतिकरण, अधिक बाजार, भवन, गाड़ियाँ, इत्यादि, तो विकास का यह भी मतलब है गरीबी उन्मूलन, बेकारी दूर करना, सुरक्षा प्रदान करना, अच्छी स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराना, इत्यादि। कहने का अर्थ हुआ कि विकास सिर्फ आर्थिक वृद्धि एवं भौतिक आधारभूत सुविधाओं को मुहैय्या कराना नहीं है, वह नागरिकों का जीवन स्तर को ऊँचा एवं बेहतर करने का कार्य भी है।

आज़ादी प्राप्त करने के बाद, भारत ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से औद्योगिक एवं कृषि उत्पादन पर ध्यान दिया। इस हेतु भारत ने औद्योगिक रूप से विकसित देशों तथा अन्तरर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं से मदद ली। विकास का यह उत्पादन मानक 1960 के दशक में चलता रहा जिसके जरिए यह सोचा गया कि ज्यादा वित्तीय निवेश के फलस्वरूप उसका लाभ ऊपर से नीचे आम आदमी तक पहुँचेगा एवं इससे आर्थिक विकास होगा। भारत जैसी अर्थ—व्यवस्थाओं में बहुतों ने इस प्रकार के विकास का लाभ उठाया। कुछ देशों का प्रति व्यक्ति आय बढ़ा एवं स्वास्थ्य तथा शैक्षिक स्तर में सुधार हुए। लेकिन कुछ देशों में जिनका सकल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ा, उनके अधिकतर आबादी का जीवन स्तर नहीं सुधरा, बल्कि गरीबी में जी रहे लोगों की संख्या में इजाफा हुआ।

इस चौकाने वाली स्थिति को देखते हुए विकास के अर्थ पर पुनर्विचार होने लगा। आलोचकों का कहना था कि गरीबी, बेकारी एवं असमानता का बढ़ने का कारण रहा, सही मानव कल्याण की उपेक्षा। फलस्वरूप, पुनर्वितरण के साथ विकास एवं बुनियादी जरूरतों की योजना की परिकल्पना की गई। उद्देश्य था कि अविकसित देशों के सभी मनुष्यों, विशेषकर जो गरीब एवं वंचित लोग हैं, को वस्त्र, खाद्य एवं जलावन जैसी आवश्यकत्ताओं की पूर्त्ति की जाय तथा जल्द से जल्द सामाजिक न्याय के आलोक में अतिगरीबी का उन्मूलन किया जाय। लेकिन धीरे धीरे सोच जाग्रत हुई कि मनुष्यों को मात्र बुनियादी सामानों की आपूर्त्ति करना यथेष्ट नहीं है— उन्हें पूरा स्तरीय

जीवन जीने हेतु पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। वृद्धि या विकास तभी अर्थपूर्ण होगा जब वह मानव कुशल क्षेम बढ़ाता हो।

इसी सोच के साथ संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यु.एन.डी.पी.) का मानव विकास प्रतिवेदन (ह्युमन डेवलपमेन्ट रिपोर्ट) वर्ष 1990 में छापा गया। नोबेल पुरस्कार विजेता मशहूर अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने इस परिकल्पना को प्रभावित किया है। श्री सेन के अनुसार, विकास उसी को कहते हैं जब समाज में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता, कल्याण एवं प्रतिशत का वर्द्धन हो। मानव विकास के चार अंग हैं– समानता, उत्पादकता, सम्पोषण तथा सशक्तीकरण।

मानव विकास को आंकने के लिए मानव विकास सूचकांक तैयार की गई है। इसके जरिए दीर्घ आयु, ज्ञान एवं अच्छा जीवन स्तर पर ध्यान दिया गया है। दीर्घ आयु के लिए जन्म के समय आयु की सम्भावना, ज्ञान के लिए साक्षरता के आंकड़े एवं अच्छा जीवन स्तर के लिए खरीदने की क्षमता पर आधारित समग्र राष्ट्रीय उत्पाद प्रति व्यक्ति का सहारा लिया गया। वर्ष 1995 में जेन्डर विकास सूचकांक (जी.डी.आई.) तथा वर्ष 1997 में मानव गरीबी सूचकांक (एच.पी.आई.) का निर्माण किया गया ताकि विकास से जुड़े विशेष मुद्दों पर भी ध्यान दिया जा सके। विभिन्न देशों के मानव विकास सूचकांक को देखने से यह पता चल सकता है कि किन किन देशों ने आर्थिक उन्नयन के साथ सामाजिक विषय को जोड़ा है। इससे नीति निर्धारकों को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को तय करने तथा लक्ष्य प्राप्त करने में आसानी होती है। सामाजिक विकास की बात आते ही महिलाओं, बच्चों, निःशक्तों, आदिवासियों एवं दलित वर्गों की चर्चा अनिवार्य हो जाती है। प्रायः सभी देश में, कम–बेशी, आदिवासी लोग पाए जाते हैं जो सामान्यतः वन–जंगलों तथा पहाड़ों में रहना पसन्द करते हैं। ये आदिवासी विभिन्न नामों से जाने जाते हैं एवं इनकी संस्कृति भी अलग होती है। ऐसे लोगों की भाषा, रहन–सहन एवं जिन्दगी गुजर बसर करने के ढंग एक सा नहीं होते। किन्तु एक मायने में ये समान हैं और वह है कि ज्यादातर आदिवासी गरीब हैं, चाहे वे पेरू के हों या अमेरिका के, अफगानिस्तान के हों या भारत के, पपुआ न्यु गिनी के हों या न्यूजीलैंड के। करीब–करीब सभी देशों में विकास के फायदों से ये आदिवासी ज्यादातर रूप से वंचित ही रहे हैं।

भारत ने विकास को बढ़ावा देने के लिए पंच वर्षीय योजनाओं का प्रावधान किया है। लेकिन सर्वप्रथम भारत ने एक विस्तृत लिखित संविधान को जनवरी 1950 से लागू किया है। इस संविधान में स्त्री एवं पुरूष दोनों को समान भाव से देखा गया है

जिसके फलस्वरूप लिंग आधारित कोई भी विसंगति को स्वीकार नहीं किया गया है। सभी नागरिक को एक समान माना गया है। एक पूरा अध्याय नागरिकों के मौलिक अधिकारों के विषय में अंकित किया गया है। राष्ट्र के लिए नीतियों के सम्बन्ध में दिशा निदेशिका का एक विशेष अध्याय सम्मिलित किया गया है जिसमें बहुत सारे सामाजिक, आर्थिक, आदि बिन्दुओं पर आगे की कार्रवाई करने पर दिशा निर्देश दिया गया है।

किन्तु भारत के संविधान में आदिवासी शब्द की परिभाषा नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अगर कोई जनजाति अधिसूचित होता है तो उसे अनुसूचित जनजाति की संज्ञा दी जाती है। भारत में सम्प्रति 31 से ज्यादा ऐसी अनुसूचित जनजातियाँ हैं जिनकी आबादी 5 लाख से अधिक है यद्यपि कि इनके अलावे कई और जनजातियाँ हैं। इसमें कोई शक नहीं कि भारत की जनजातियाँ अन्य समुदायों की अपेक्षा पिछड़े एवं शोषित हैं। इन जनजातियों के क्षेत्रों में सम्पर्क एवं संचारण की कमी है। इन्हें पर्याप्त शुद्ध पेय जल नसीब नहीं होता तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ अमूमन नहीं मिल पाती। इनमें अशिक्षा एवं गरीबी व्यापक रूप से देखने को मिलती हैं। चूँकि ये जनजातियाँ ज्यादार जंगलों के आस पास रहना पसन्द करते हैं एवं वन उत्पादों की बिक्री पर निर्भर करते हैं, इसलिए जबरदस्त वन कटाई के फलस्वरूप इनके रहन–सहन पर आघात पहुँचा है। नतीजा यह हुआ कि जनजाति के कई लोग बागी बन गए एवं लूट पाट, खून खराबा तथा प्रशासन के विरुद्ध संघर्ष करने लगे जो आज भी कायम है। अंग्रेजों ने इसे भाँपते हुए जनजातियों के लिए भारत में अलग प्रशासनिक पद्धति को खड़ा किया था। जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो जनजातियों के उत्थान के लिए कई संवैधानिक प्रावधान किए गए। केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने विकास से सम्बन्धित बहुत सारी परियोजनाओं को तैयार किया एवं लागू किया। भारत के पंच वर्षीय योजनाओं में लगातार ये परियोजनाएँ देखने को मिली एवं आज तक इन्हें लागू किया जा रहा है। कोशिश की गई है कि इन परियोजनाओं के द्वारा अनुसूचित जनजातियों का सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रगति तथा उन्नयन हो। सामुदायिक विकास कार्यक्रम, बहुमुखी जनजातीय प्रखंडों, जनजाति विकास प्रखंड, विकास एजेन्सियाँ, आदिम जनजाति समूह, समेकित जनजातीय विकास परियोजनाएँ, रूपान्तरित क्षेत्र विकास अप्रोच, जनजातीय उप योजना, डिस्पर्स्ड जनजातीय विकास कार्यक्रम, केन्द्र प्रायोजित परियोजनाएँ, आदि, कई प्रकार के कार्यक्रम हैं।

इन पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के कल्याणार्थ भारत सरकार ने निम्नलिखित उद्देश्य रखेः

1) आर्थिक स्थिति को मजबूत करने हेतु कृषि, पशु पालन, वानिकी, गृह एवं लघु उद्योगों, आदि, के उत्पादकता स्तर को ऊँचा उठाना।

2) बन्धुआ मजदूरों का पुनर्वास।

3) शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम।

4) महिलाओं एवं बच्चों के लिए विशेष विकास कार्यक्रम।

उपर्युक्त के बाद, जनजातीय उप योजनाओं में कुछ विशेष जनजातियों पर ध्यान देने हेतु लघु योजनाओं की परिकल्पना लागू की गई। किन्तु जो भी रकम योजनाओं में कर्णांकित की गई, वह बहुत कम कही जायगी। वर्ष 2011 में जनजातियों की जनसंख्या भारत में 10.43 करोड़ थी जो कि कुल आबादी का 8.61 प्रतिशत है। अतः, जनजातियों के विकास के लिए और भी कुछ करने की सख्त आवश्यकता महसूस की जाती है।

भारत के ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना में जनजातियों के समग्र सशक्तिकरण के तरफ झुकाव लाया गया जिसके केन्द्र में शासन के मुद्दों को रखा गया। भारतीय संविधान के पाँचवी अनुसूची के परिचालन आदेशों, 1976 से जनजातीय उप योजना, 1996 के पेसा अधिनियम, जनजातीय केन्द्रित, जनजातीय साझेदारी एवं जनजातीय प्रबन्धित विकास प्रक्रिया की वांछनीयता, तथा अधिकतर कमजोर सरकारी कार्यान्वयन पद्धति से हटने की आवश्यक्ता को अहमियत दी गई। किन्तु इन सभी कोशिशों के बावजूद अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक – सामाजिक पिछड़ापन कायम रहना बारहवी पंचवर्षीय योजना के लिए एक भयावह चुनौती कही जायगी, अतः इस पंचवर्शीय योजना (2013–17) के प्रत्येक विकास सम्बन्धी प्रक्षेत्र की मांग है कि कारगर एवं परिणाम रूपी कदम उठाए जाँय। बारहवी पंचवर्षीय योजना में जनजातियों के सामाजिक – आर्थिक स्थिति में सम्पूर्ण सुधार लाने हेतु निम्नलिखित कुछ उद्देश्यों का जिक्र किया जा सकता है :–

1) जनजातीय बहुल क्षेत्रों में किसी भी कार्यक्रम/परियोजना को तैयार करने के लिए नियमों को आसान करना।

2) इन कार्यक्रमों/परियोजनाओं को लागू करने के लिए प्रशासनिक तंत्र का मजबूतीकरण। इन क्षेत्रों में सभी पदों को भरना एवं पदस्थापित पदाधिकारियों/कर्मियों का पद स्थापन तय समय सीमा तक करना एवं वहाँ सेवा देने के लिए विशेष प्रोत्साहन देना।

3) जनजातियों के ही लोगों से सरकारी कोशिशों को लागू कराना विशेषकर जहाँ जनजाति बहुल क्षेत्र हो। इन क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं प्रसार सेवाओं, पोषाहार, जनवितरण, आदि प्रक्षेत्रों में जरुरत पड़ने पर नियम शिथिल करके भी जनजातियों को उत्तर दायित्त्व सौंपना तथा सभी कार्यक्रमों का नियमित रूप से अनुश्रवण।

4) सरकारी पद धारकों को जनजातियों के बारे में पर्याप्त सूचना उपलब्ध कराना ताकि वे उनके प्रति संवेदनशील हों।

5) बुनियादी सुविधाओं जैसे सड़क रेलवे, पानी, बिजली, स्वास्थ्य सेवाएँ, शिक्षा तंत्र, आदि को योजना बद्ध तरीका से उपलब्ध कराना।

6) लघु वन उत्पादों पर जनजातियों का पूरा अधिकार लागू करना।

7) अगर अत्यावष्यक हो तभी जनजातीय जमीन का नियमानुसार अधिग्रहण हो किन्तु विस्थापितों को पहले पूर्ण रूपेण पुनर्वासित किया जाय।

उपर्युक्त के अलावे और भी बहुत सारे उद्देश्य हो सकते हैं किन्तु जरुरत है नेक नीयत की। कानून, योजना, परियोजना तो बहुत बनाए गए हैं किन्तु उन्हें सही ढंग से लागू नहीं किया गया है। भ्रष्टाचार, बदनीयत, संवेदनहीनता, राजनीतिक दाव–पेंच, क्षेत्रीय अशान्ति, अपराधीकरण, शोषण, भेद–भाव ये सारे कारणों के चलते आज भी भारत के जनजातियों को ठगा सा महसूस हो रहा है।

भारत के जनजातियों में निम्न साक्षरता दर एवं उच्च ड्रॉप आउट दर पाया जा रहा है जबकि प्राथमिक शिक्षा को व्यापक किया गया है। इन्हें अपर्याप्त एवं कहीं कहीं पहुँच के बाहर स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराये गए हैं। जनजातियों में कुपोषण, गरीबी एवं अधिक मदिरा सेवन पाया जा रहा है। इनके क्षेत्रों में निम्न स्तर का पर्यावरण स्वच्छता, निम्न कोटि का स्वास्थ्य ज्ञान, एवं स्वच्छ पीने के पानी की कमी पाई जाती है जिसके कारण दूषित पानी से बीमारियाँ फैलती हैं। जनजातियों में मलेरिया, यॉज़, कुष्ठ रोग, टी.बी. आदि पाए जाते हैं किन्तु अज्ञानता एवं चिकित्सा की अनुपलब्धता के कारण सही समय में उचित चिकित्सा नहीं हो पाती। भारत में सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान है किन्तु बहुत सारे पद अभी भी रिक्त पड़े हुए हैं क्योंकि या तो अनुसूचित जनजातियों का जान बूझकर चयन नहीं किया गया अथवा निर्धारित योग्यता में ढील देने के बावजूद अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवार सफल नहीं हो सके।

भारत में कई प्रकार के जनजाति पाए जाते हैं किन्तु उनमें प्रमुख हैं भील, गोंद, संताल, मीना, नायडा, उराँव, मुंडा, नगा, खोंड, बोरो, कोलि, हो, गुज्जर, भूमिज, कोया, लुशाई, इत्यादि। अगर हम झारखण्ड की बात करें तो झारखण्ड में संताल, उराँव, मुंडा एवं हो प्रमुख जनजातियाँ हैं। वैसे, सबसे गरीब जनजातियाँ हैं पहाड़िया, कोरवा, बैगा, सावर, बीरहोर, सौर्य पहाड़िया, माल पहाड़िया, बंजारा, खरवार एवं असुर। इनमें लड़कियों का शिक्षा दर अत्यन्त ही दयनीय है। उच्च शिक्षा दर नही के बराबर है विशेषकर बीरहोर जनजाति में। उराँव, खड़िया, मुंडा, भूमिज एवं लोहरा जनजातियों में स्कूली शिक्षा का बेहतर दर है। किन्तु कॉलेज आते आते यह दर बहुत घट जाता है। अतः जरुरत है झारखण्ड के जनजातियों को स्कूली शिक्षा एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित करना ताकि वे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन सके।

झारखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, वानिकी एवं श्रमिक कार्यों के आधार पर लोग जीविकोपार्जन करते हैं। यद्दपि कि इस राज्य में जनजातियाँ बहुत कम संख्या में भूमिहीन होते हैं, उनकी जमीन का रकबा एवं उरवर्त्ता कम होता है जिसके चलते कृषि से उत्पादन लाभप्रद नहीं होता। सिंचाई की उचित व्यवस्था नहीं रहने से यहाँ के लोग मात्र एक ही फसल ले पाते हैं जो पूर्ण रूपेण वर्षा पर निर्भर होता है। जनजातियों में महिलाएँ अधिकतम काम सम्भालती हैं जैसे खाद्यान्नों एवं पैसों की व्यवस्था करना, आय स्रोतों का प्रबन्धन, सामानों की खरीद–विक्री, कृषि कार्य, बच्चों का देखभाल, घर सम्भालना, इत्यादि। यहाँ तक कि बहुत आदिवासी महिलाएँ महुआ का मदिरा तथा चावल का हड़िया बनाकर हाट–बाजार में बेचती हैं ताकि घर की वित्तीय हालात सुधरे। महिलाएँ जंगल भी जाकर जलावन की लकड़ी एवं लघुवन उत्पाद जैसे चिरौंजी, मशरूम, जामुन, दातुन, आदि इकट्ठा करके लाती है तथा बेचती है। आदिम जनजातियों, जैसे बीरहोर, पहाड़ी, कोरवा एवं सावर, में महिलाएँ खाद्यान्न इकट्ठा करने के साथ साथ रस्सी बनाने, टोकरी बनाने, शहद उतारने, दवा–दारु के पौधों को लाने, मछली पकड़ने तथा शिकार करने का भी काम करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य की व्यस्तता ज्यादा रहती है क्योंकि कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाकलापों में नियोजन मिल जाता है, अपर्याप्त ही सही। किन्तु शहरी क्षेत्रों में बेकारी की समस्या ज्यादा दिखती है। कुछ जनजातियों में ग्रामीण एवं शहरी–अन्तर अधिक पाया जाता है। आदिवासियों को हद से हद 6 महीनों का रोजगार ग्रामीण क्षेत्रों में मिल पाता है– बाकी समय वे दूसरे जगहों में जाकर नाना प्रकार का काम ढूंढते है जैसे असम के चाय बागानों में, हरियाना के ईंट भट्टों में, पंजाब के खेतों में, दिल्ली के घरों में, लुधियाना के कारखानों में, इत्यादि। बहुत

आदिवासी लड़कियाँ देह व्यापार में गलती से चली जा रही है विशेषकर नियोजन दिलाने वाली एजेंन्सियों की झूठी आश्वासनों के चलते।

झारखण्ड की जनजातीय संस्कृति इस राज्य का एक महत्वपूर्ण आर्थिक धरोहर है। इस संस्कृति की सरलता एवं सहजता, इसकी सामाजिक न्याय एवं समानता की भावना, श्रम की गरिमा पर जोर, इसकी सामुदायिक स्वामित्व एवं आम संसाधनों के प्रबन्धन की प्रथा, प्रकृति के साथ ताल मेल रखकर जीवन जीना, तथा स्त्री–पुरूष में समानता की परम्परा, को अगर समुचित ढंग से काम में लाया जाय तो ये आर्थिक विकास में बहुत ही सहायक सिद्ध होंगे।

अब प्रश्न उठता है कि जनजातियों की वर्त्तमान अवस्था को देखते हुए उनका भविष्य कैसा हो? क्या वे धीरे धीरे विलुप्त हो जाएँगे? क्या वन जंगलों के विनाश के साथ इनका भी विनाश होगा? क्या इनकी अलग पहचान एवं संस्कृति, इनकी भाषाएँ, लिपि, तथा कारीगरी समाप्त हो जाएँगी? अंडमान निकोबार द्वीप समूह में कुछ जन–जातियाँ खत्म होने के कगार पर हैं क्यों कि उनमें कई लोग लाइलाज बीमारियों से ग्रसित हैं। झारखण्ड में एच.आई.वी. / एड्स रोग की चपेट में आदिवासी लड़कियाँ आ रही हैं क्योंकि उनके मिलन सार व्यवहार का गलत फायदा उठाकर लोग उन्हें धोखा देखकर यौन शोषण के माध्यम से यह बीमारी हस्तान्तरित कर रहे हैं। कई जनजातिय परिवारों में घर का कर्त्ता अपनी बेटियों को दूसरे राज्यों से आए लोगों के हाथ बेच देते हैं ताकि उन्हें मोटी रकम मिल सके और उनका शराब पीने का सिलसिला चलता रहे। इन लड़कियों को, जो कम उम्र की होती हैं, हरियाणा, पंजाब जैसे राज्यों से लोग शादी करने के बहाने खरीदकर ले जाते हैं एवं कुछ सालों में इन लड़कियों की कई बार विक्री हो चुकी होती है। ये यौन शोषणा की शिकार होती हैं तथा अन्तोगतवा जब शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूरी तरह टूट जाती हैं तो इन्हें घर से भगा दिया जाता है। अगर किसी तरह ये वापस झारखण्ड राज्य में अपना घर लौटती है तो वहाँ भी उन्हें कोई पनाह नहीं मिलता। वे शारीरिक, मानसिक एवं वित्तीय रूप से पूर्ण रूपेण बरबाद हो जाती है।

इस अत्याधुनिक 21 वी सदी में झारखण्ड की जनजातियाँ अभी भी अपना अस्तित्व बचाने हेतु परेशान हैं। समुचित जनजातीय नेतृत्व का अभाव है – एक ऐसा नेतृत्व जो मात्र राजनीतिक न हो। झारखण्ड के आदिवासियों का मूल धर्म सरना धर्म है जिसमें कट्टरता नहीं, उदारता है। वे मूर्त्ति पूजन नहीं करते किन्तु अपने पूर्वजों की पूजा करते

हैं। वे विधिवत मृत पूर्वजों की आत्माओं को अपने घरों में बसाते हैं। आम लोगों में यह गलत धारण है कि जन जाति संस्कृति सिर्फ नाचने–गाने, शराब पीने एवं भूत–प्रेत में विश्वास से सम्बन्धित है। ये लोग इस बात से अनभिज्ञ हैं कि जनजातियाँ अपने समूह में रहना पसन्द करते हैं, उनका सरना स्थल तथा साल का वृक्ष पूजा–अर्चना करने के लिए अत्यावश्यक हैं, तथा उनके पाहन विशेष विधि विधान से उनका धार्मिक मार्ग दर्शन करते हैं। इन जनजातियों में स्त्री–पुरुष समान रूप से सामाजिक तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते हैं– उनमें पर्दा की प्रणाली नहीं है। हड़िया का सेवन कैसे एवं किस प्रकार हो, यह उनके धर्म के अनुसार होता है। हड़िया का प्रयोग प्रत्येक अनुष्ठान में नियम पूर्वक किया जाता है। आदिवासियों में स्वर्ग या नरक की धारणा नहीं होती– भू लोक एवं पितृ लोक होता है जो पाताल में अवस्थित है। आदिवासी गण जैसे ही अपना मूल सरना धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म अपनाते हैं, उनके साथ पहचान की संकट हो जाती है। अन्य धर्म अपनाने से इन जनजातियों में संस्कृति का भीड़न्त होता है। अतः, अब ये जनजातियाँ धर्म के आधार पर बँटी हुई नज़र आती है जो इनकी मूल संस्कृति, पहचान एवं एकता को बनाए रखने में बाधक सिद्ध हो रही है।

सम्प्रति, केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा जनजातियों के कल्याण के लिए जो भी कदम उठाए गए हैं, वे अवश्य ही लाभ दायक हैं किन्तु यथेष्ठ नहीं। झारखण्ड अभी माओवादी नामक उग्रवाद से जूझ रहा है। यह उग्रवाद झारखण्ड के प्रायः सम्पूर्ण आदिवासी क्षेत्र, छत्तीसगढ़ तथा मध्य प्रदेश के वन–जंगल क्षेत्रों में फल–फूल रहा है। छोटानागपुर एवं संताल परगना के पठारी क्षेत्रों को उग्रवादी गण अशान्त बना दिया है जिसके कारण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में बहुत कठिनाई हो रही है। सड़क, पुल–पुलिया एवं अन्य बुनियादी निर्माण कार्य करना सम्भव नहीं हो पा रहा है। बहुत विद्यालयों के भवन इन उग्रवादियों द्वारा क्षतिग्रस्त किए गए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षक, चिकित्सक, नर्स अन्य सरकारी कर्मचारी जैसे पुलिस, इत्यादि, नहीं जाना चाहते हैं। चूँकि सरकारी सेवक इन जनजातीय उग्रवाद ग्रसित इलाकों से नदारद रहते हैं, इस लिए इन क्षेत्रों का विकास नहीं हो पा रहा है। वहाँ से आदिवासी गण पलायन करने के लिए मजबूर हो रहे हैं अन्यथा उनकी बेटियों तथा लड़कों को जबरन माओवादी लोग ले जा रहे हैं। अराजकता की गम्भीर स्थिति बनी हुई है जिसको राजनीतिक कूटनीति हवा दे रही है। इससे जनजातियों का भविष्य अधर में लटक जा रहा है। जब तक इन उग्रवादियों का मजबूती से दमन नहीं किया जायगा तब तक झारखण्ड के जनजातियों का भविष्य अंधकार में रहेगा। वक्त का तकाजा है कि केन्द्र एवं राज्य सरकार उग्रवाद को जल्द से जल्द समाप्त करे।

जनजातियों को अपने भविष्य को बचाने के लिए आज के समय में उनमें फैली कुरीतियों को खत्म करना होगा। उन्हें शराब सेवन से परहेज करना होगा, डायन प्रथा को हतोत्साहित करके महिलाओं को अनावश्यक रूप से प्रताड़ित होने से बचाना होगा, शिक्षा के क्षेत्र में ज्यादा दिलचस्पी दिखानी होगी, वन–जंगलों की रक्षा के लिए अधिक कारगर रुची लेनी होगी, एक दूसरे की मदद करने हेतु प्रयासरत होना होगा, अंध विश्वास से ऊपर उठना होगा तथा दूसरे समुदायों के गुणों को सीखना होगा। अपने को अलग या पृथक रखने से आदिवासी गण विकास की राह में पिछड़ जाएँगे जो घातक होगा।

भारत के सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे देश की रक्षा करें, एक दूसरे की सुरक्षा पर ध्यान दें, अपना कर्त्तव्य का ठीक से पालन करें, कोई ऐसा काम न करे जिससे किसी भी व्यक्ति, समाज, कौम, जाति को ठेस पहुँचे, जो कमजोर वर्ग के हैं उनपर विशेष ध्यान दें। इस देश के जनजाति गण अभी भी कमजोर वर्ग कहलाएँगे। उनकी संख्या गैर–जनजातियों के मुकाबले बहुत कम है। उनकी आबादी का वृद्धि दर कम है। अगर विशेष ध्यान नहीं दिया गया तो भविष्य में ये जनजातियाँ समाप्त हो जाएँगी, चाहे वे पूर्वोत्तर भारत के हों, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तामिल नाडु अथवा महाराष्ट्र के हों। जनजातियों को सुरक्षित भविष्य देने के लिए जरुरी है कि उनके प्रति संवेदनशील रहा जाय, उनको ठीक तरह से समझने का गम्भीर प्रयास हो, उनकी बातों को सुनी जाय, किसी भी योजना/परियोजना को बनाने के पूर्व उनसे वार्त्ता की जाय तथा उनका परामर्श लिया जाय। जनजातियों के भविष्य को सुदृढ़ करने के लिए यथा सम्भव उनकी जमीन को अर्जित नहीं की जाय। आदिवासियों के क्षेत्रों में जल, जंगल, जमीन पर उनका अधिकार होना चाहिए। झारखण्ड में लागू छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम एवं संताल परगना कास्तकारी अधिनियम में इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि आदिवासी जमीन–मालिक अपनी जमीन बैंक में गिरवी रखकर बैंक ऋण लेकर उद्योग अथवा दूसरा धन्धा कर सके जो सम्प्रति इन अधिनियमों के तहत नहीं कर सकते। इस प्रावधान को करने से झारखण्ड के आदिवासी गण अपनी जमीन का सदुपयोग कर सकेंगे। अगर ऋण लेकर आदिवासी गण ऋण की रकम नहीं लौटाते तथा इस स्थिति में अपनी जमीन को खो देते हैं तो आदिवासियों को यह भी सीखना होगा कि नियम कानून सबके लिए बराबर हैं– मात्र आदिवासी होने से उन्हें छूट नहीं दी जा सकती। हाँ, इतना प्रावधान किया जा सकता है कि अगर बैंक द्वारा किसी आदिवासी की जमीन

नीलाम की जाती है तो उसे खरीदने का प्रथम मौका किसी आदिवासी को ही दिया जायगा एवं बाद में अन्यों को।

आदिवासियों को स्वावलम्बी बनाने के लिए यह भी जरुरी है कि अगर उनकी जमीन के नीचे खनिज सम्पदा मिले तो खनन पट्टा उन्हीं को दिया जाय। अगर सम्बन्धित आदिवासी खनन करने में सक्षम न हो तो जो भी उसका खनन पट्टा ले, वह उसे अपनी खदान में नौकरी दे।

झारखण्ड में जनजातियों को खेती करने के लिए सिंचाई के माध्यम से उचित मात्रा में पानी उपलब्ध कराना होगा। इसके लिए प्रधान मंत्री जी का सुझाव "लैब टू लैंड" यानि "प्रयोगशाला से जमीन" को कारगर ढंग से लागू करना होगा। इन्हें मिट्टी की जाँच से लेकर उन्नत किस्म की खेती किस प्रकार की जाय– सभी की जानकारी उनके अपनी भाषा में बतानी होगी। झारखण्ड के आदिवासी अभी भी हिन्दी भाषा को सहजता से समझ नहीं पाते हैं इसलिए संवाद में दूरत्व रहता है। अगर आदिवासियों को अपनी भाषा में सभी बात समझा दी जाय तो वे आसानी से काम कर पाते हैं। जनजातियों के भविष्य के लिए यह बहुत लाभ प्रद होगा। इस प्रकार वे अपनी पहचान बचाते हुए भी मुख्य घारा से सहज रूप से जुड़ सकेंगे।

झारखण्ड राज्य का अधिकतर हिस्सा अनुसूचित क्षेत्र के रूप में अधिसूचित है क्योंकि यह भाग आदिवासी बहुल है। राँची इसका मुख्यालय है तथा यह पाँच प्रमंडलों में बंटा हुआ है– दक्षिणी छोटानागपुर, उत्तरी छोटानागपुर, पलामु, संताल परगना एवं कोल्हान। करीब 30 अनुसूचित जनजातियों में 8 जनजातियाँ आदिम जनजाति समूह में गिने जाते हैं यथा– असुर, बीरहोर, बिरजिया, कोरवा, सवर, पहाड़िया (बैगा), माल पहाड़िया एवं सौर्या पहाड़िया। इनकी जन संख्या कम है और इनमें से बीरहोर, बिरजिया, बैगा एवं सौर्या पहाड़िया जनजातियों की आबादी कम होती जा रही हैं। आदिवासी बहुल क्षेत्रों में भीषण गरीबी देखने को मिलती है जैसे संताल परगना एवं पलामु। ये क्षेत्र सुखाड़ की चपेट में रहते हैं तथा यहाँ सामन्ती प्रणाली एवं बंधुआ मजदूरी की ऐतिहासिक परम्परा रही है। यद्यपि कि इन जनजातियों को बंधुआ मजदूरी से छुड़ाने के लिए प्रशासन द्वारा काफी कोशिश की गई तथा सामन्ती प्रणाली भी दिन पर दिन टूटती जा रही है, फिर भी इन्हें और राहत देने की आवश्यकत्ता है ताकि इनका वर्त्तमान एवं भविष्य सुरक्षित रहे। पटवन के लिए पानी उपलब्ध कराना, खाद्यान्न वितरण प्रणाली को मजबूत एवं सुचारू करना, पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध कराना, शिक्षा का

उचित प्रबन्ध करना तथा और भी बुनियादी सुविधाएँ हासिल कराना – ये सारे काम राज्य सरकार को कराना होगा। पंचायती राज पद्धति ठीक से काम करे यह अत्यावश्यक है, क्योंकि इस पद्धति से सभी आदिवासी जुड़ सकेंगे।

आदिवासियों के भविष्य के लिए यह सुनिश्चित करना होगा कि विकास के सभी कार्य एवं फल उन तक समय रहते जरूर पहुँचे। यह बहुत कठिन काम नहीं है– जरुरत है आदिवासियों को इस प्रक्रिया में सम्मिलित करना, उनका विश्वास जीतना। उनको नियमित ढंग से प्रोत्साहित करना होगा कि वे मिल बैठकर स्वयं अपना भविष्य तय करे तथा अपनी आवाज उठाए। गैर–आदिवासियों को स्पष्ट रूप से समझना होगा कि आदिवासी गण चिड़ियाघर के कोई नायाब जन्तु नहीं हैं बल्कि उन्हीं के जैसा सामान्य नागरिक हैं। आदिवासियों को भी बोध करना होगा कि गैर आदिवासी गण "दिक्कु" यानि "दुख देने वाले" नहीं बल्कि उनके हितैषी हैं। दोनों के बीच जो एक आपसी संदेह एवं अविष्वास है, उसे समाप्त करना जरुरी है ताकि मात्र जनजातियों का ही नहीं, भारत देश विशेषकर झारखण्ड राज्य का भविष्य सुखद हो।

जनजातियों के आर्थिक प्रगति के लिए कृषि एवं सम्बद्ध क्रिया कलापों को मजबूत करना होगा ताकि विभिन्न प्रकार के आर्थिक कार्यों के जरिए उनमें जो योग्य, कुशल एवं अकुशल श्रमिक हों उनका समावेशन हो सके। इसके फलस्वरूप उनमें समग्र वृद्धि तथा विकास होगा। प्रत्येक जनजाति समुदाय को जिलावार/प्रखंडवार/पंचायतवार उनके वंचन के सूचक के अनुसार चिन्हित करना उचित होगा ताकि समुचित हस्तक्षेप करके उनकी सहायता की जा सकें। खनन एवं उद्योग के चलते अगर कोई जिला विकसित हो भी, फिर भी उन में कुछ समुदाय मिल जाएँगे जो पिछड़े हुए हों। प्रत्येक जनजाति समुदाय के कल्याणार्थ ऐसे जिलों को प्राथमिकता देकर उनके लिए योजनाबद्ध तरीके से विशेष कार्य परियोजनाएँ तैयार करनी होगी तथा सूक्ष्म रूप से लागू करना उचित होगा।

अन्य समुदायों के जैसा आदिवासी समाज भी गतिशील है किन्तु उनकी गतिशीलता थोड़ी धीमी है जिसकी वजह से औरों की तुलना में आदिवासी गण गरीब एवं पिछड़ा है। सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही इन्हें विकसित करने के कदम उठाए लेकिन इतने वर्ष बीत जाने के बाद भी झारखण्ड के आदिवासियों की स्थिति विकसित होने के बजाय वंचित होने की स्थिति में कही जायगी। वर्ष 2011 का मानव विकास प्रतिवेदन कहता है कि सम्पोशण एंव सम्दृष्टि के महत्वपूर्ण वैश्विक चुनौतियों को एक

साथ देखना चाहिए तथा वह राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उन नीतियों को चिन्हित करता है जिससे दोनों उद्देश्यों में एक दूसरे की मदद से प्रगति हो। मानव विकास के लिए, दीर्घकालीन प्रगति हेतु सुस्पष्ट एवं निर्भीक कार्य की जरुरत है ताकि वर्त्तमान एवं भविष्य की पीढ़ियाँ लाभ उठा सके। झारखण्ड राज्य दिनांक 15 नवम्बर 2000 को अस्तित्व में आया। बिहार राज्य से कटने का मुख्य कारण था इस क्षेत्र की भयावह उपेक्षा एवं जन जातियों की अवहेलना। लेकिन यद्यपि कि झारखण्ड में प्रत्येक मुख्य मंत्री एवं अधिकतर मंत्री आदिवासी समुदाय के ही रहे हैं, फिर भी जनजातियों का जीवन स्तर जस का तस है। हाँ, कुछ दबंग आदिवासी नेता रातों रात बहुत अमीर बन गए हैं लेकिन वह गलत तरीके से धनोपार्जन किए हैं। झारखण्ड में कोयला प्रचूर मात्रा में मिलता है और उसकी चोरी तथा तस्करी अरबों रूपये का कारोबार है। इसी प्रकार यहाँ लौह अयस्क के अलावे युरेनियम एंव अन्य धातुओं के अयस्क मिलते हैं, यहाँ तक कि कीमती/अर्द्ध कीमती पत्थर भी पाए जाते हैं। इनके अलावे, वन जंगलों से लकड़ी की तस्करी बहुत बड़ी समस्या है। हम यह नहीं कह सकते कि तस्करी सिर्फ गैर–आदिवासी ही करते हैं। यहाँ के आदिवासियों का अपराधीकरण आधुनिक समय की देन है। नशीले पदार्थों जैसे नाना प्रकार के ड्रग का सेवन अब शहरों के अलावे गाँव–देहातों में भी देखने को मिलता है और इसमें आदिवासी तथा गैर आदिवासी सभी भागीदार हैं।

झारखण्ड के आदिवासियों का भविष्य विकास रूपी गैर–जिम्मेदाराना आधुनिकीकरण की वजह से गलत ढंग से भी प्रभावित हुआ है। अब वह सरलता उनमें बहुत कम ही पाई जाती है। गलत आदतें सीखने की प्रवृत्ति तेज हुई है। चूँकि आदिवासी समाज उदारवादी है इसलिए नवयुवकों/नव युवतियों पर परिवार का ज्यादा नियंत्रण नहीं रहता है। व्यापक शहरीकरण के चलते एवं रोजगार खोजने के क्रम में समाज का भी अंकुश रह नहीं पाता। शिक्षा के प्रति उदासीनता है क्योंकि जो शिक्षा प्रणाली वर्त्तमान में है, उसे प्राप्त करने के पश्चात् रोजगार मिलने में काफी समय लगता है, और आदिवासी गण गरीबी के चलते ज्यादा इन्तजार नहीं कर पाते। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र रोजगार चाहिए ताकि हाथ में पैसे हों और वे अपना जीवन सँवार सके। यही कारण है कि झारखण्ड से नवयुवक, विशेषकर युवतियाँ, अन्यत्र पलायन कर रहे हैं। सिर्फ ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से काम नहीं चलेगा–जरुरत है जनजातियों को अपने गाँव में ही अथवा जिला में निरन्तर नियोजन दिलाना, विकास के सभी आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध कराना एवं उनमें यह भावना उत्पन्न करना कि उनका भविष्य तभी उज्जवल

होगा एवं संवरेगा जब वे स्वयं अपने समुदाय के कल्याणर्थ काम करेंगे। झारखण्ड सरकार को युद्ध स्तर पर विकास की योजनाओं को लागू करना होगा तथा यह सुनिश्चित् करना होगा कि आदिवासी इलाकों में आदिवासियों को साथ लेकर ही सारी प्रक्रिया सम्पन्न हो। उनके पारम्परिक उत्सव जैसे सरहुल, करम, इत्यादि आज भी धूमधाम से मनाए जाते हैं किन्तु उनकी भाषाओं जैसे नागपुरी, संताली, मुंडारी, हो, कुडुख आदि को वे धीरे–धीरे भूलते जा रहे हैं। उनकी लिपि जैसे ओलचिकि, इत्यादि को अब पुनर्जीवित करने का प्रयास चल रहा है। भारत, विशेषकर झारखण्ड को, अविलम्ब सचेत हो जाना चाहिए कि अगर जन जातियों के भविष्य को सुरक्षित रखना है तो उसके लिए सम्पूर्ण रूपेरा प्रयास करना होगा एंव निश्चित तौर पर जनजातियों को विकसित करना होगा।

* * * * *

जम्मू और कश्मीर के गुज्जर जनजाति : संघर्ष की संताने

* सूफिया अहमद
** जावेद अहमद

परिचय

भारत दुनिया में सर्वाधिक जनजाति जनसंख्या वाला देश है। मानव सभ्यता के दर्ज इतिहास के अनुसार, केन्द्रीय एशिया के आर्य घोड़ा पालतू थे और इसने आर्यों के लिए एक असीमित गतिशीलता प्रदान की है। उन्होंने हिमालय की पहाड़ियों में चराई की विशाल क्षमता को देखा, वे वहाॅ स्थानान्तरित हुए और शुरू में यहाॅ बस गए। बाद में वे मैदानी इलाकों में फैल गये और सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर भारत आर्यों के प्रभाव में आ गया। जम्मू और कश्मीर राज्य में विभिन्न जनजाति और सांस्कृतिक समूहों के निवास का इतिहास उत्तर पश्चिम, पश्चिम, पूरब और दक्षिण से अप्रवास के आवेगों का एक रिकार्ड है। जम्मू और कश्मीर राज्य में विभिन्न समुदाय के लोग रहते हैं, कुछ बस गये हैं, काफी कुछ खानाबदोश हैं। बाद के वर्ग में, सबसे प्रमुख गुर्जर बक्करवाल गुर्जर उपमहाद्वीप के कई आसपास के हिस्सों में रहने वाले आदिवासी समुदाय के एक बड़े समुदाय का हिस्सा है और इसको विभिन्न नामों जैसे गुज्जर और गुर्जरं के रूप में जाना जाता है। गुज्जर मुख्य रूप से भारत और गंगा के मैदानों, हिमालयन क्षेत्र और अफगानिस्तान के पूर्वी भागों में केन्द्रित रहे हैं।

सामाजिक आर्थिक तथा शैक्षिक पिछड़ापन

जम्मू कश्मीर के गुज्जरों की जीवन की दशा अत्यन्त दयनीय हैं। गुज्जरों के द्वारा व्यतीत किया जाने वाला जीवन अत्यधिक अमानवीय और असहनीय है, विशेष रूप से

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ,
** शोधछात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़।

सर्दियों में बर्फीली हवाओं, बर्फ गिरने और बारिश के समय उनकी स्थिति कल्पनाओं से परे है। अपनी प्रवासी प्रवृत्ति के कारण गुज्जर चुनावी लोकतन्त्र में भाग लेने में असमर्थ हैं। वे सामान्यतया उच्च स्थानों पर झोपड़ियां और तम्बुओं में निवास करते हैं, अपने प्रवासी चरित्र के कारण वे अपने आवास पर ज्यादा निवेश नहीं करते हैं उनकी झोपड़ियों कीचड़ तथा अव्यवस्थित पत्थरों से निर्मित होती हैं न तो हवादार होती हैं न तो खिड़कियां होती हैं स्थानीय रूप से इन्हें कोण के रूप में जाना जाता है। इन झोपड़ियों की छतें, धान की पुआल द्वारा निर्मित होती हैं झोपड़ियों के कमरों में जानवरों के झुण्ड, भेंड़ और परिवार के सदस्य एक साथ निवास करतें है। गुज्जर और बक्करवाल का प्रारम्भिक व्यवसाय पशुओं को चराना और उनसे उत्पन्न होने वाले दूध, घी इत्यादि को शहर के लोग को आपूर्ति करना है यही कारण है कि गुज्जर अर्थव्यवस्था अत्यन्त पारम्परिक है और समुदाय की आर्थिक दशा अत्यन्त पिछड़ी हुई है।

बहुत सारे गुज्जरों के पास पशुधन भी नहीं है। खटाना गुज्जरों का एक ऐसा वर्ग है जो कि दूसरों के पशुओ को चराने का कार्य करता है, इन्हें अजरीस कहा जाता है। पशुओ का वास्तविक स्वामी मालिक कहलाता है। प्रवास के समय अजरीस अपने मालिकों के साथ प्रवास करते है। पशुओं की चराई के लिए मजदूरी का भुगतान भोजन और कपड़ों के रूप में किया जाता है। पैसों के रूप में भुगतान अत्यन्त दुर्लभ होता है। मालिक और अजरीस की सामाजिक आर्थिक स्थिति में पर्याप्त विभिन्नताऐं होती हैं। सामाजिक समारोहों में अजरीस तथा उनके परिवारों को भोजन की व्यवस्था पृथक रूप से होती है और उन्हें वर्तन भी धोने पड़ते हैं।

अपने प्रवासी चरित्र के कारण गुज्जर अशिक्षित होते हैं वे अपने बच्चों को शिक्षित करना पसन्द नहीं करते इस भय के कारण कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे पशुपालन व पारम्परिक व्यवसाय नहीं करेंगे। सामान्यतया वे अपने बच्चों को या तो मवेशियों को चराने के लिए जंगल में भेजते हैं या घास काटते हैं और उनके बच्चे दैनिक दिनचर्या के कामों में उनकी मदद करते हैं। ज्यादातर गुज्जर खानाबदोश जीवन गुजारते हैं। यद्यपि जम्मू और कश्मीर में गुज्जरों के बीच शिक्षा के प्रसार के लिए विशेष योजनाओं के लागू होने के बाद इनकी शिक्षा का स्तर बढ़ रहा है। जम्मू और कश्मीर सरकार ने बहुत सारे मोबाइल स्कूल खोले हैं जो गुज्जरों के प्रवास के समय उच्च स्थानों पर जाते है इसके बावजूद इस समुदाय के लोग अपनी अज्ञानता, प्राचीन सामाजिक मान्यताओं, पिछड़ेपन और पारम्परिक सोच के कारण लड़कियों के शिक्षा के पक्ष में नहीं है।

गुज्जरों को उनके जीवन में अत्यन्त रूढ़िवादी होने के लिए जाना जाता है इसका कारण यह है कि आधुनिक जीवन शैली के सम्पर्क में न आने के कारण वे अत्यधिक अन्धविश्वासी हैं।

चौधरी के अनुसार–''अशिक्षा एवं पिछड़ेपन के कारण वे अत्यधिक अन्धविश्वासी हैं। निस्सन्देह अन्धविश्वास और मिथक उनके जीवन में प्रमुख भूमिका निभाती हैं।''

अन्य समुदाय की तुलना में जम्मू और कश्मीर के गुज्जर अधिक वंचित एवं पिछड़े है। सरकारी सेवाओं में उनका प्रतिनिधित्व नगण्य है जनजाति अनुसंधान और सांस्कृतिक फाउण्डेशन द्वारा किये गये सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि पिछले बीस वर्ष के दौरान गुज्जरों ने अपने खानाबदोश जीवनशैली का त्याग कर दिया। कई गुज्जरों ने अपना मूल व्यवसाय छोड़ दिया और अब वे यहां–वहां मजदूरी का काम कर रहे हैं। यह भी पाया गया कि पिछड़े बासठ वर्षों के दौरान इस समुदाय से केवल तीन महिलाओं ने जम्मू–कश्मीर राज्य की संयुक्त सेवा परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया है। पुलिस विभाग में स्थिति सबसे खराब है क्योंकि यहॉ अधिकारी स्तर पर गुज्जर महिलाओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यही स्थिति राज्य की न्यायपालिकाओं का है। सर्वेक्षण में यह पाया गया कि केवल सात प्रतिशत गुज्जर स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं और लड़कियों के मामले में यह और भी कम केवल तीन प्रतिशत है। सर्वेक्षण के अनुसार चालीस प्रतिशत बच्चे प्राथमिक स्तर पर ही स्कूल की पढ़ाई छोड़ देते हैं यद्यपि निर्धनता के कारण तीस प्रतिशत बच्चे स्कूल में प्रवेश ही नहीं ले पाते जबकि दस प्रतिशत बच्चों ने केवल छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिए स्कूलों में प्रवेश लिया। समुदाय का पिछड़ापन उनकी जीवनशैली से स्पष्ट हो जाता है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उन्होंने आधुनिकीकरण का कोई लाभ उठाया हो और न ही पिछली एक शताब्दी पहले तक उनके जीवनशैली में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन आया हो।

फ्रेडरिक हित ने अपनी पुस्तक ''जम्मू और कश्मीर के राज्यक्षेत्र'' जो सन् 1857 में प्रकाशित हुई में लिखा है,

''मैंने उन्हें भैंसों के झुण्ड के विषेशज्ञ के रूप में पाया। वे अपने परिवार और पत्नियों और चरखों के साथ थे। उनकी उपलब्धियां मुख्यतया घी, मक्खन बेचना, उस भूमि को चराई के लिए तैयार करना जहॉ वे प्रवास के लिए रह रहे हैं। अपनी जीविका के लिए वे उस पर निर्भर नहीं हैं। वे प्रवासी जनजातियां है जो अपनी आवश्यकताओं के लिए अपने पशुओं के उत्पादन पर निर्भर हैं।''

जुत्शी ने 1997 में किये गये एक क्षेत्र अध्ययन में यह पाया गया कि गुज्जरों के साक्षरता पैटर्न में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि नहीं हुई है। अन्य क्षेत्रों की तुलना में गुज्जर और बक्करवाल क्षेत्रों की साक्षरता दर में व्यापक भिन्नता पायी गयी है। जुत्शी का तर्क है कि निम्न साक्षरता गुज्जरों के पिछडेपन के प्रमुख कारणों में से एक है।

सेटलमेंट

जम्मू और कश्मीर सरकार की यह नीति रही है कि गुज्जरों को एक स्थान पर बस जाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके ताकि वे खानाबदोश जीवन की बाधाओं से ऊपर उठ सके और विकास के लाभ के प्राप्त कर सके। जम्मू क्षेत्र के गुज्जर केन्द्रित क्षेत्र में किये गये अध्ययन के अनुसार यह पाया गया कि कुछ गुज्जर यहॉं पर दो–तीन पीढ़ियों से बसे हुए हैं और अपनी भूमियों के स्वामी हैं और अन्य आर्थिक गतिविधियों में शामिल हैं यद्यपि इनमें से बहुत से हैं जिनके पास अपनी भूमि नहीं है लेकिन उनमें से कुछ ऐसे है जो कई पीढ़ियों से बस गये हैं और बाजार में बेचने के लिए चावल, गेहूँ, चारा और सब्जियों का उत्पादन कर रहे हैं। बहुत सारे अन्य जिनके पास पर्याप्त भूमि नहीं है, वे दैनिक मजदूर के रूप में कार्य करते हैं और कुछ कारखानों में या सड़क के निर्माण के कार्य में लगे हुए हैं।

वह गुज्जर जो बस गये हैं उनमें शिक्षित गुज्जरों का एक छोटा सा वर्ग है जो सरकारी सेवाओं में नियुक्त है। उनमें से कई निचले और मध्यम रैंकों में पुलिस में शामिल हो गये हैं। कई सेना में शामिल हो गये हैं। समृद्ध गुज्जरों में कुछ उच्च शिक्षित हो गये हैं और कुछ सरकारी सेवाओं में नियुक्त हो गये हैं। कुछ गुज्जर अन्य व्यवसाय जैसे कि शहद उत्पादन, वनरक्षक, ड्राइवर, दुग्धविक्रेता में संलग्न हैं। शिक्षित गुज्जरों के छोटे समुदाय को छोड़कर इस समुदाय के ज्यादातर लोगों को सामाजिकता, आर्थिक गतिशीलता का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ, गावों और शहरों में बसने के बावजूद पशुपालन ही उनकी प्रमुख गतिविधि रही है। केवल कुछ ही गुज्जर बड़े पैमाने पर दूध बेचने का व्यापार करते हैं, ज्यादातर बहुत ही कम मूल्य पर पड़ोस में दूध बेचने का कार्य करते हैं परन्तु गुज्जरों की नई पीढ़ी इस पारम्परिक व्यवसाय को हेय दृष्टि से देखते हैं। शिक्षित गुज्जर इस प्रकार का कार्य नहीं करना चाहते। उनकी वरीयता सफेदपोश व्यवसाय है इसी कारण सरकारी रोजगार उनकी प्रथम वरीयता है।

खानाबदोश जीवन छोड़ने के बावजूद गुज्जर समूह में रहना पसन्द करते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण जम्मू कश्मीर में गुज्जर केन्द्रित क्षेत्र विकसित हुए हैं। इन क्षेत्रों ने

गुज्जरों को उनके सामुदायिक जीवन को बनाये रखने में मदद की है। समुदाय की पवित्रता को विवाह के माध्यम से बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। यहां तक कि वर्तमान में भी ज्यादातर गुज्जर समुदाय के अन्दर ही विवाह करते हैं, यद्यपि कि वर्तमान में, बसे हुए और खानाबदोश गुज्जरों के बीच एक अनुक्रम मौजूद है और बसे हुए गुज्जर खानाबदोश जीवन को निम्न दृष्टि से देखते हैं। इसलिए इन दोनों समूहों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। 1992 में अर्द्धखानाबदोश गुज्जरों ने बड़ा कदम उठाते हुए राज्य की शीतकालीन राजधानी जम्मू में गुजरदेश चैरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना की। इसका उद्देश्य गुज्जरों की सामाजिक संस्कृति को सुधारना तथा उसे संरक्षित रखना और गुज्जरों की पहचान को प्रोत्साहित करना है।

पहचान और अनुसूचित जनजाति का दर्जा के लिए संघर्ष

गुज्जर पहचान की राजनीति कुछ निश्चित मांगों के इर्दगिर्द घूमती है। यह मांगें सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण और समुदाय के आधुनिकीकरण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को लेकर है। सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण की मांग का मुख्य कारण समुदाय का पिछड़ापन है जो समुदाय के खानाबदोश चित्र के कारण उन्हें समाज में बढ़ने से रोकता है। जम्मू एवं कश्मीर के सभी समुदायों की तुलना में गुज्जर सबसे पिछड़े लोगों में से है।

गुज्जरों के खानाबदोश चरित्र एवं उनके पिछड़ेपन को देखते हुए इस समुदाय के नेताओं की मांग रही है कि समुदाय के विकास के लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस मांग को पूरा करने गुज्जरों के विकास के एक बोर्ड अर्थात जम्मू और कश्मीर गुज्जर और बक्करवाल सलाहकार विकास बोर्ड गठित किया गया है। बोर्ड की पहली अध्यक्षा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की पत्नी बेगम अब्दुल्ला थी। यद्यपि इस बोर्ड के गठन से गुज्जरों की समग्र स्थिति में कोई सुधार नहीं हो सका। गुज्जर नेताओं और बुद्धिजीवियों ने समुदाय के सशक्तीकरण को एक सकारात्मक दिशा प्रदान करने के लिए बोर्ड की भूमिका को गम्भीरतापूर्वक रेखांकित किया। उनके अनुसार, बोर्ड गुज्जरों के उत्थान में कोई भी भूमिका निभाने में पूरी तरह असफल रहा है। यहॉ तक कि यह विकास प्रयोजनों के लिए दिये गये प्रारम्भिक पैकेज का लाभ लेने में भी असमर्थ रहा है। केन्द्र सरकार के द्वारा मंजूर की गई 17 करोड़ रूपये की राशि एक विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए उस समय पर्याप्त हो सकती थी परन्तु पर्याप्त योजना एवं इच्छाशक्ति के अभाव के कारण सम्पूर्ण धनराशि का कुछ अंश गुज्जर एवं

बक्करवाल के लिए हास्टल के निर्माण के ऊपर खर्च हुआ और बाकी धनराशि छात्रवृत्ति जैसे कम महत्वपूर्ण मदों पर खर्च की गयी।

पिछड़ेपन के अलावा गुज्जर एक पृथक जनजाति समूह की अपनी पहचान पर जोर देते रहे हैं। उन्होंने राज्य में रोजगार, विधान सभाओं एवं शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की मांग की अस्सी के दशक के प्रारम्भ में गुज्जरों को एक पृथक सामाजिक जाति (सोशल कास्ट) घोषित किया गया और उनके लिए व्यावसायिक कालेजों में तीन प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। तत्पश्चात् 19 अप्रैल, 1991 को उन्होंने एक महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर सरकार के प्रयासों से भारत के राष्ट्रपति ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लेते हुए गुज्जर एवं बक्करवालों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त किया। इस निर्णय के कारण गुज्जर राज्य सेवाओं और अन्य क्षेत्रों में दस प्रतिशत आरक्षण के हकदार बने एवं गुज्जर बाहुल्य इलाकों को उदार वित्तीय अनुदान प्रदान किया गया। राही के अनुसार, जम्मू एवं कश्मीर के गुज्जरों के सामाजिक उत्थान में एक मील का पत्थर था, एवं दस प्रतिशत आरक्षण में गुज्जरों के लिए शिक्षा एवं रोजगार के नये रास्ते खोल दिये।

अनुसूचित जनजाति का दर्जा देने के लिए मांग की पूर्ति ने गुज्जरों की अन्य मांगों के लिए रास्ता खोल दिया है। उनके द्वारा किये जा रहे अन्य मांगों में शामिल है– भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में गोजरी भाषा को शामिल किया जाय, साहित्य अकादमी द्वारा गोजरी भाषा को मान्यता दिया जाना, जम्मू एवं कश्मीर के विश्वविद्यालयों में गोजरी भाषा का एक पृथक विभाग खोला जाय, राज्य विधानमण्डलों में गुज्जरों को राजनीतिक आरक्षण प्रदान किया जाय, गुज्जरों के पशुधन एवं दुग्ध उत्पादों के लिए बाजार की सुविधा एवं गुज्जरों के लिए चलाई जा रही योजनाओं का शीघ्र क्रियान्वयन किया जाए। उपरोक्त ऐतिहासिक उपायों के क्रियान्वयन के पश्चात राज्य में गुज्जरों की पहचान को बल मिलेगा एवं राज्य के दूरदराज के क्षेत्रों में निवास करने वाले लोग राज्य के विकास एवं प्रगति में अपनी सकारात्मक भूमिका निभाने में सक्षम हो पायेंगे।

* * * * *

सन्दर्भः–

1. स्मिथ वी.ए., हिस्ट्री आफ इण्डिया, आनन्द एण्ड कम्पनी, 1940.
2. मो0 बशीर मॉग्रे, ट्राइबल जियोग्राफिकल आफ इण्डिया–जम्मू एण्ड कश्मीर, ओबेरोइ बुक सर्विस, जम्मू, 2003.

3. ए.एन.भारद्वाज, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ हिमालयन गुज्जर, जे.के. बुक हाउस, जम्मू, 1994.

4. आर.पी.खताना, ''डाइलेम्मा आफ दी गुज्जर्स इन जम्मू एण्ड कश्मीर.''(इड), सोसाइटी एण्ड कल्चर इन द हिमालयाज़, न्यू डेलही, 1995.

5. आर.पी0खताना, गुज्जर्स, गोजरी ज़बान–ओ–अदब जम्मू एण्ड कश्मीर अंजुमन तेराकी गोजरी ज़बान–ओ–अदब, गोरगॉव, 1974.

6. डी.आर. बाडरकर, वाण्डरिंग कल्चर आफ सेन्ट्रल एशिया, जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी, 1905.

7. बाम्बे गजटर्स, हिन्दूज़ आफ गुजरात, अपेन्डिक्स–बी,(दी गुज्जर्स)

8. डब्ल्यू. क्रूक, ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, इलियट्स हिस्ट्री आफ इण्डिया, विकास पब्लिशर्स, 1962, न्यू डेलही.

9. के.एम.मुंशी, रेत राज गुज्जर देश, दी ग्लोरी, न्यू डेलही, 1954.

10. बी.एन.पुरी, गुर्जर परतीहरण की तारीख(इन हिन्दी), इण्डियन पब्लिशर्स प्रा0लि0, न्यू डेलही.

11. आर.पी.खतना, दी एडवेन्ट आफ गुज्जर्स इन जम्मू एण्ड कश्मीर, अनपब्लिश्ड पेपर्स, 1974, न्यू डेलही.

12. आर.जी.रीफोर्ड, सेन्सस आफ इण्डिया, 1941– जम्मू एण्ड कश्मीर, पार्ट्स फर्स्ट एण्ड सेकेण्ड, जम्मू 1943.

13. आर.पी.खतना, ''डाइलेम्मा आफ दी गुज्जर्स इन जम्मू एण्ड कश्मीर.''(इड), सोसाइटी एण्ड कल्चर इन दी हिमालयाज़, न्यू डेलही, 1995.

14. सुखदेव सिंह चरक, हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ हिमालयन स्टेट, वैल. फोर्थ, पार्ट फ़र्स्ट, न्यू डेलही, लाइट एण्ड लाइफ, 1983.

15. के. वरीको, ट्राइबल गुज्जर्स आफ जम्मू एण्ड कश्मीर, हिमालयन एण्ड सेन्ट्रल एशियन स्टडीज़, वैल. 4, नं.1, जन.–मार्च, 2000.

16. डॉ0 जाविद राही, दी गुज्जर ट्राइब आफ जम्मू एण्ड कश्मीर, गुलशन बुक्स, श्रीनगर, 2011.

17. के. वरीको, ''लैंग्वेज़ एण्ड पॉलिटिक्स इन जम्मू एण्ड कश्मीर''। इन पी.एन. पुश्प एण्ड के. वरीको (इडस्), जम्मू, कश्मीर एण्ड लद्दाखः लिंग्विस्टिक प्रेडिकामेन्ट, न्यू डेलही, 1996.

18. सेन्सस आफ इण्डिया, 1961—जम्मू एण्ड कश्मीर, पार्ट सेकेण्ड सी (कल्चर एण्ड माइग्रेशन टेबल)। बाई एम.एच. कामिली, श्रीनगर, 1965.

19. आर.पी.खतना, ट्राइबल माइग्रेशन इन हिमालयन फ्रान्टियर, न्यू डेलहीः विपिन पब्लिशर्स, 1942.

20. चौधरी मसूद, द गुज्जर्स ओवर द सेन्चुरीज़, आवाजी—इ—गुज्जर, जुलाई—अगस्त, 1955.

21. जम्मू एण्ड कश्मीर टेरीटेरीज़ःए जियोग्राफिकल एकाउन्ट, कॉसमो पब्लिकेशन, 1976.

22. भुपेन्दर जुत्शी, 'गुज्जर एण्ड बैकवर्ड्स आफ जम्मू एण्ड कश्मीरः डेमोग्राफिक, सोशल एण्ड इकॉनामिक कैरेक्टरिस्टिक्स, एण्ड आर्गेनाइजेशन आफ सर्विस सेन्टर्स', अनपब्लिश्ड पेपर.

23. अवनीत पराशर, (इड), कनफिलिक्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन जम्मू एण्ड कश्मीरः इन्टरनल डाइनेमिक्स, सक्षेम बुक्स इण्टरनेशनल, न्यू डेलही, 2007.

* * * * *

राजस्थान में अनुसूचित क्षेत्र के संन्दर्भ में पेसा कानून का मूल्याकंन

* डॉ0 अनिला

भारत के विकास को औद्योगिकरण, नगरीकरण, हरित क्रान्ती, बड़े–बड़े बांधों के निर्माण सेज की स्थापना के साथ जोड़कर देखा गया है। इन्हीं के आधार पर विकास को परिभाषित किया जाता रहा है किन्तु यह विकाय हाशिये के समाज के लिए कितने हित में है यह सवाल अत्यन्त चिंताजनक रहा है क्योंकि समाज का एक बड़ा वर्ग इस विकास का लाभ उठाने में कामयाब रहा है वही दूसरी तरफ हमारे गांव में हमारा राज एवं 'जल–जंगल–जमीन–जन–जानवर' की कल्पना करने वाले आदिवासी समुदाय इस विकास के भीषण दुष्परिणामों का शिकार होता रहा है। आज भी सदियों से 'जल–जंगल–जमीन–जन–जानवर' को सहेजे हुए घनी आबादी से दूर बसे आदिवासी समुदाय आज भी विकास की मुख्यधारा में सम्मिलित हाने की आशा लगाये बैठा देश की विभिन्न योजनाओं में करीब दो करोड़ आदिवासियों को विकास के नाम पर विस्थापित होना पड़ा है। आदिवासियों के विकास के लिए 24 सितम्बर 1996 को राष्ट्रपति ने अनुसूचित क्षेत्र के लिए पंचायतों ने यह कानून को मंजूरी तथा पंचायतो के बारे में संविधान के भाग 9 में दी गई, फेर बदल के साथ अनुसूचित क्षेत्र में लागू किया गया तब ऐसा लगा कि अब हमारे गांव में हमारा राज तथा गांव गणराज्य की भावना साकार होती दिखायी देगी। परन्तु अनुसूचित क्षेत्र के आदिवासी समुदाय आज भी कानून बनने के 16 वर्षो के बाद भी कानून लागू होने की आशा में समस्याओं से जूझते हुये अपना जीवन यापन कर रहे है। वन अधिकार बन भूमि पर अपना कानूनी हक मिल जायेगा परन्तु इसमें भी पैसा कानून के प्रावधान लागू न करके आदिवासी समुदाय के सैकड़ों लोगों को इस अधिकार से भी वंचित रख दिया।

* पोस्ट डॉक्टरल फेलों, (ICSSR), विधि विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष में देखें तो सन् 1865 में ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित भारतीय वन विधेयक के कारण जंगल वन विभाग के एकाधिकार में चले गये जिससे आदिवासी समुदाय की परम्परागत जीवन शैली पर विपरीत प्रभाव पड़ा तथा उनकी परम्परागत एवं आत्मनिर्भर आजीविका प्रभावित हो गई।

भूरिया कमेटी की रिपोर्ट

भारत सरकार द्वारा सन् 1994 में अनुसूचित जनजातियों के विकास तथा पंचायत उपबंध हेतु सांसद दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया गया। उक्त कमेटी ने जनवरी 1995 में सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी जिसमें प्रमुख सुझाव इस प्रकार थे।

(1) जनजाति आबादी वाले क्षेत्रों में उनकी अपनी ग्राम सभा होगी साथ ही वह अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं न्यायिक मामलों का संचालन पारम्परिक ग्राम परिषद द्वारा होगा। उनके विकास कार्यक्रम को लागू करने के लिए ग्राम परिषद का अनुमोदन करना होगा।

(2) कई गाँवो एवं टोलों का एक ग्राम पंचायत हो सकता है जिसे अचल पाडा या परगना पंचायत भी कहा जाता है। यह व्यवस्था सबसे निचली परत के अनुरूप हो सकती है और इसमें निर्वाचित सदस्य हो सकते है, इसी तरह मध्य और जिला परतों में भी निर्वाचित सदस्य हो सकते हैं। जिला स्तर की परत को स्वायत जिला परिषद के रूप में जाना जायेगा।

(3) ग्राम सभा के प्रशासनिक दायरे का निर्धारण केवल भौगोलिक मानदण्डों के आधार पर नहीं होगा बल्कि भौगोलिक के साथ–साथ उनकी सांस्कृतिक पहचान के साथ–साथ जनसंख्या की दृष्टि से भी किया जाना चाहिए।

(4) स्वायत जिला परिषद की संगठिक ढाँचा छठी अनुसूचीत में शामिल राज्यों असम, मिजोरम एवं त्रिपुरा के ए.डी.एस की तरह विस्तृत होना चाहिए।

(5) संविधान के अनुच्छेद 343(h) के तहत पंचायतों द्वारा टैक्स का निर्धारण और कोश बनाने तथा अनुच्छेद 243(i) के संबंधित वित्त आयोग का गठन अनुसूचित एवं जनजाति क्षेत्रों में भी लागू होना चाहिए।

(6) संविधान के अनुच्छेद 243(एच) तथा 243(आई) के अन्तर्गत अनुसूचित क्षेत्रों को भी कोष उपलब्ध करवाया जाए।

(7) जनजाति लोगों की शिक्षा एवं स्वास्थ्य के मुद्दो को प्राथमिकता दी जाए।

(8) पंचायतों के बीच जनजाति उपयोजना के कोष का आंवटन स्वायत जिला परिषदों के मात हत किया जाना चाहिए।

पेसा कानून– पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996

आदिवासी समुदाय में स्वशासन को कायम करने के लिए भारत के संविधान की 5 वीं अनुसूची के तहत पेसा कानून लागू किया गया। 5 वीं अनुसूची के अर्न्तगत आने वाले आदिवासी गांव, फला की ग्राम सभा को मान्यता देकर आपसी विवादों को हल करने मद्य निषेध, आदिवासियों की गैर कानूनी रूप से हस्तानान्तरित भूमि की वापसी, प्राकषतिक संसाधनों के संरक्षण, कर्ज पर नियन्त्रण, गांव के विकास कार्यो का उपयोगिता प्रमाण पत्र देने तथा गांव में संचालित समस्त संस्थाओं पर नियन्त्रण आदि कार्य प्रदान किये गये। परम्परागत आदिवासी व्यवस्था को धारा 4 के अर्न्तगत संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई तथा स्पष्ट निर्देश दिये गये कि राज्य का विधान मण्डल ऐसा कोई भी कानून नहीं बनायेगा जो उससे असंगत हो। इस कानूनी प्रावधान के माध्यम से आदिवासी समाज की अपनी परम्पराओं के आधार पर बुनयादी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया गया। गांवों को इस कानून के माध्यम से गांव समाज को मान्यता प्रदान की गई ताकि आदिवासी समुदाय अपनी परम्पराओं एवं आर्थिक, समाजिक व्यवस्थाओं को जिंदा रख सकें। धारा 4 (ख) में उल्लेखित किया गया कि सरकारी रिकार्ड में जिसे गांव का दर्जा दिया गया हो उसे गांव मानना जरूरी नहीं है। इस नवीन व्यवस्था में गांव को एक या अधिक बस्तियों में रहने वाले लोगों के आपस में मिलजुल कर अपने रोजमर्रा के कामकाज की व्यवस्था के रूप में संचालित कर रहे है। उसे एक गांव के रूप में स्थापित किया, प्रत्येक गांव के लिए एक ग्राम सभा होगी जो गांव समाज का केन्द्र होगी। यह ग्राम सभा धारा 4 (घ) के अधिकारों का उपयोग करते हुये समाज की परम्परा, उसकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक सम्पदा और विवादों को निपटाने की परम्परागत व्यवसायी को बनाये रखने तथा उनके मुताबिक कामकाज चलाने के लिये सक्षम होगी।

ग्राम सभा के आधिकार

प्रत्यक्ष अधिकार	अपेक्षित अधिकार
1. विकास के काम	1. मद्यपान निषेध
2. खर्च पर निगरानी	2. आदिवासी की भूमि की सुरक्षा
3. भू– अर्जन से पहले परामर्श	3. लघुवन उपल पर अधिकार
	4. पानी पर अधिकार
	5. खनिज सम्पदा पर अधिकार
	6. कर्ज व्यवस्था पर नियंत्रण
	7. स्थानीय बाजार व्यवस्था का प्रबन्ध
	8. स्थानीय संसाधनो पर नियत्रंण
	9. वित्तीय संसाधनो पर नियंत्रण

ग्राम सभा के अधिकार

पेसा कानून के द्वारा ग्राम सभा को सीधे सौंपे गये अधिकार जिसमें विकास के कार्य अर्थात् योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन करने का अधिकार धारा 4 (ड) किया गया। इस तरह की विकास योजनाओं पर होने वाले खर्च पर निगरानी की जिम्मेदारी भी ग्रामसभा को सौपी गयी है इसके लिये पंचायत को गांव में किये गये कामों के लिये खर्चे का ब्यौरा ग्रामसभा में रखने तथा खर्च का उपयोग प्रमाण पत्र भी लेने का प्रावधान भी धारा 4 (च) में किया गया है। ग्राम सभा को भू–अर्जन के तहत अब विकास की परियोजना के लिये अनुसूचित क्षेत्रो में भू–अर्जन से पहले ग्रामसभ अर्थात् ग्रामसमाज से परामर्श कानून अनिवार्य होगा तथा प्रभावित व्यक्ति को बसाने तथा उसके पुनर्वास की व्यवस्था से पहले ग्रामसभा यानि ग्राम समाज परामर्श जरूरी होगा।

पेसा कानून के तहत कुछ ऐसे अधिकार विधान मण्डलों द्वारा ग्रामसभाओं को अपेक्षित कानूनी अधिकार देने का निर्देश भी दिया गया है। ग्रामसभा धारा 4 (ड–1) के अर्न्तगत अपने गांव में मद्यपान निषेध की नीति लागू कर सकता है या फिर मादक

पदार्थो की बिक्री पर रोक लगा सकता है। इस व्यवस्था के उल्लघन के लिये दंड का अधिकार भी दिया गया है। पेसा कूनन की धारा 4 (ड–3) के अर्न्तगत आदिवासियों की भूमि की रक्षा करने का अधिकार ग्राम सभा को सौपा गया। आदिवासी की जमीन गलत तरीके से गैर–आदिवासी को हस्तान्तरित कर दी गयी है। तो ऐसी भूमि को ग्राम सभा दिलाने में सक्षम होगी। आदिवासी को इस कार्य हेतु न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की जरूरत नहीं होगी। पेसा कानून के अर्न्तगत आदिवासी समुदाय की परम्परागत व्यवस्था को मान्यता मिल जाने से लघु वन क्षेत्र में उत्पादित चीजों को एकत्रित करने का अधिकार धारा 4 (ड–2) के अर्न्तगत प्राप्त है। अतः लघुवन क्षेत्र पर ग्राम सभा का स्वामित्व स्थापित कर दिया गया। आदिवासी क्षेत्र के लघु जल संसाधनों के उपयोग तथा प्रबन्धन का अधिकार धारा 4(ज) में किया गया तथा बड़ी परियोजनाओं में भी ग्राम सभा में परामर्श को महत्व दिया जाने का प्रावधान है। खनिज पर अभी तक राज्यों का एकाधिकार माना गया परन्तु पेसा कानून आने के बाद गौण खनिजों के लिये सर्वेक्षण हेतु अनुमति व खनन के लिये पट्टा देने व निलामी करने से पूर्व ग्रामसभा की अनुमति व सिफारिश लेना आवश्यक कर दिया गया । यद्यपि पूर्ण अधिकार ग्रामसभा को नहीं दिया गया परन्तु नियंत्रण का एक अधिकार अवश्यक प्राप्त हुआ है। आदिवासी क्षेत्र में सरकारी, गैर सरकारी एवं साहूकार के कर्ज पर अब ग्राम सभा का नियंत्रण पेसा कानून की धार 4 (ड–4) के अर्न्तगत बाजारों का प्रबन्धन का अधिकार प्रदान किया गया। इस कानून के माध्यम से आदिवासी के शोषण से मुक्ति और विकास में सहभागिता के लिये हाट बाजार पर ग्रामसभा का पूर्ण अधिकार स्थापित कर दिया गया। पेसा कानून की धारा 4 (ड–6) के अन्तर्गत गांव के स्कूल, अस्पताल, सहकारी समितियां , समाज कल्याण की संस्थाओं आदि पर ग्रामसभा का नियत्रंण स्थापित किया गया।

राजस्थान में पेसा कानून का क्रियान्वयन :–

संसद द्वारा पारित पेसा कानून को क्रियान्वयन करने का जिम्मा राज्य सरकार को सौंपा गया। राज्य सरकारों ने अपनी सुविधा एवं अपनी प्राथमिकताओं के आधार पर इस कानून को लागू करने का प्रयास किया। अधिकांश राज्य सरकारों ने आधे अधूरे मन से ही इस संवैधानिक आदेश को क्रियान्वयन करने का प्रयास किया। सन् 1996 में बनाये गये अधिनियम को पूर्ण रूप से किसी भी राज्य द्वारा लागू नहीं किया गया। राज्यों ने संसद द्वारा पारित कानून को अपने तरीके से लागू किया जबकि अधिनियम में राज्य सरकार को इस कानून में संशोधन करने के अधिकार से वंचित किया गया था। पैसा

कानून की धारा 4 (र) के उल्लेखित प्रावधान योजना एवं प्रबंधन का अधिकार पंचायतो को दिया गया जिसका प्रावधान महाराष्ट्र एक्ट में नहीं किया गया तथा उडीसा एक्ट में यह अधिकार जिला परिषद को सौंप दिया गया; इस तरह पेसा कानून की धारा 4 के अन्तर्गत ग्राम सभा को खनिज के संबंध में निर्णय करने का अधिकार दिया गया, जिसे आन्ध्रप्रदेश सरकार ने ग्राम सभा के अधिकार को हटा दिया गया उसी तरह गुजरात सरकार द्वारा ग्राम पंचायतों को तो यह अधिकार दिया गया परन्तु उसे गुजरात खनिज एक्ट के तहत आज्ञा लेने का प्रावधान कर दिया गया। इसी तरह राज्य सरकार द्वारा केन्द्र के बनाये गये पैसा कानून के अनुसार 1999 में राजस्थान पंचायती राज (उपबंधो का अनुसूचित क्षेत्रों में उसके लागू होने के संबंध में उपान्तरण) अधिनियम बनाया गया। इस कानून को क्रियान्वयन करने के लिए 2011 में नियमों का निर्माण किया गया। 1996 में बनाये गये कानून को केवल क्रियान्वयन करने में राजस्थान सरकार द्वारा 16 वर्ष लगा दिये गये। 16 वर्ष पश्चात् इस कानून को अपनी सुविधा तथा अरूचि दिखाते हुए आधे–अधूरे मन से लागू करने का प्रयास हुआ है। राजस्थान पंचायती राज (उपबंधो का अनुसूचित क्षेत्रों में उसके लागु होने के संबंध में उपान्तरण) अधि. 1999 नियम 2011 में जो प्रावधान किये गये उनमें प्रमुख प्रावधान इस प्रकार है।

1 धारा 2 (II) में ग्राम सभा उस गांव के सभी लोगो के संग्रह की सभा है जो चुनाव के लिए पंचायत में सम्मिलित है।

2 धारा 7 में ग्राम सभा की मिटिंग की अध्यक्षता के लिए पंचायत समिति के सरपंच को अधिकृत किया गया।

3 धारा 10 (I) में एक ग्राम पंचायत में अनेक ग्राम सभा होने का उल्लेख किया गया है।

4 राजस्थान पंचायती राज (उपबंधो का अनुसूचित क्षेत्रों में उसके लागू होने के संबंध में उपांतरण) अधिनियम,1999 नियम 2011 उक्त अधिनियम मे धारा 16 के तहत पुलिस के लिए दो प्रावधान है :–(1) किसी भी ग्राम सभा के क्षेत्र में यदि कोई शान्ति भंग होती है या उसकी संभावना होती है या तुरंत एक्शन की जरूरत नहीं है तो ऐसे मामलों की विस्तृत रिपोर्ट ग्राम सभा को भेजी जाती है और सुलह या उस व्यक्ति से बचाव के मामले में उस ग्राम सभा से सलाह के बाद ही कदम उठाया जाता है।(2) यदि पुलिस को किसी अपराध की सूचना मिलती है जो कि गंभीर प्रकृति का नहीं है तो पुलिस में रजिस्टर्ड होने के बाद उसकी एक कॉपी ग्राम सभा या शान्ति कमेटी को भेजी जायेगी और जरूरत पड़ने पर वह मामला ग्राम सभा की विशेष मिटिंग में सुलझा लिया जाएगा।

5 धारा 17 के तहत ग्राम सभा को किसी भी सुरक्षात्मक उपाय के लिए सक्षम माना है जो उसके क्षेत्र में स्थित है या जहाँ इनका पारम्परिक अधिकार है जैसे पानी, जमीन एवं खनिज आदि पर। इसके लिए वह एक सक्रिय भूमिका निभाती है। जिससे इन सभी संसाधनों का सही एवं पूर्ण उपयोग हो सकें।

6 धारा 18 के अनुसार जब सरकार किसी भी अधिनियम के तहत जमीन का अधिग्रहण करती है तो सरकारी ऑथोरिटी ग्राम सभा को लिखित में इसकी सूचना एवं प्रपोजल भी भेजती है इसके साथ ही प्रोजेक्ट, प्रस्तावित जमीन, समाज एवं क्षेत्र पर इसका प्रभाव, हर्जाने की राशि, काम की सम्भावनाएँ आदि का उल्लेख भी होगा।ग्राम सभा द्वारा इसकी सहमति सरकारी ऑथोरिटी को दी जाएगी। अगर सरकारी ऑथोरिटी ग्राम सभा के पॉइन्टस पर सहमत नहीं होती है तो वह पुनः भेज सकती है।

7 धारा 19 के अनुसार ग्राम सभा यह सुनिश्चित करेगी कि कोई भी जमीन जो किसी जनजातिय व्यक्ति की है वह किसी गैर जनजातिय व्यक्ति के नाम ट्राँसफर नहीं हो।

8 धारा 21 के तहत पंचायत या पंचायत समिति अनुसूचित क्षेत्र में धन के कर्ज लेने देने का व्यापार को रोकने एवं उसे नियमित करने का सक्षम अधिकारी है जैसा कि राजस्थान मनी लेन्डरस अधिनियम, 1963 में भी है।

9 धारा 25 के अनुसार ग्राम सभा उसके क्षेत्राधिकार में स्थित लघु वन उत्पादों की स्वामी है लेकिन निम्न शर्तों के अधीन :

(1) यह स्वामित्व जमीन, पेड़ो/वन्यजीवन जो उस क्षेत्र में पायी जाती है, उसका नहीं होगा।

(2) जहाँ पर घास काटना मना है, वहाँ कोई भी व्यक्ति घास नहीं काट सकता है।

(3) वन्य भूमि से 1 अक्टूबर से 31 जनवरी तक ही घास काट सकते है।

(4) वन उपखण्ड अधिकारी द्वारा वन को खोलने पर ही जानवर चरा सकते है, अन्यथा नहीं।

(5) उपरोक्त अधिकार के तहत कोई भी व्यक्ति किसी भी पेड़ को नुकसान नहीं पहुँचा सकता।

(6) लघु वन उत्पाद सूर्यास्त व सूर्योदय के बीच नहीं हटा सकते।

(7) कोई भी व्यक्ति वन के 200 मीटर तक आग नहीं ले जा सकते है(15 जुलाई से 30 सितम्बर के बीच)

(8) प्रतिबन्धित क्षेत्र से लघु वन उत्पाद नही ले जा सकते।

10 धारा 26 के तहत प्रावधान है कि बाँस व तेंदू पत्ता के इकठ्ठा करने के अलावा अन्य के लिएः–

(1) ग्राम सभा जिम्मेदार होगी। इसके लिए कमेटी या राजस संघ या कॉपरेटिव सोसाइटी संगठित की जायेगी। इसकी मार्केटिंग करेगी और फायदा बुक करेगी।

(2) बाँस को उसके फूल आने के समय नहीं काटा जायेगा। बीज झड़ने के बाद ग्राम सभा की आज्ञा से इसे काटा जाएगा।

(3) प्रत्येक बाँस के पौधे से कम से कम 3–4 पुराने बाँस जो सही है उन्हे छोडा जाना जरूरी है।

(4) बाँस को खोदकर या छाँटकर निकालना प्रतिबन्धित है।

(5) वन विभाग द्वारा ग्राम सभा के लिए नये बांस वैज्ञानिक तरीके से लगाये जायेंगे।

(6) बाँस से वसूला गया राजस्व ग्राम सभा समुदाय के विकास व नये बांस के उत्पादन के लिए खर्च करेगी।

तेंदू पत्ता संग्रहण के मामले में

(1) तेंदू पत्ता का व्यापार राजस्थान तेंदू पत्ता (रेगुलेशन ऑफ ट्रेड) अधिनियम, 1974 द्वारा संचालित होगा।

(2) राजस्थान तेंदू पत्ता (रेगुलेशन ऑफ ट्रेड) अधि. 1974 के प्रर्वतन में वन विभाग तेंदू पत्ता का संग्रहण करेगा।

(3) जो राजस्व तेंदू से आयेगा उसे उन पंचायतों में आनुपातिक रूप से बांट दिया जायेगा जिनके क्षेत्र से वह इकठ्ठा किया गया था।

(4) ग्राम सभा इसका 50 प्रतिशत भाग विकास के लिए और 50 प्रतिशत सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए खर्च कर सकेगी।

11 धारा 27 छोटे खनिजो के बारे में ग्राम सभा को अधिकार दिया गया है परन्तु माइनिंग इंजीनियर की स्वीकृति से किया जायेगा। धारा 29 में मादक द्रव्य का नियन्त्रण आबकारी आयुक्त व कलेक्टर के पास रहेगा।

केन्द्रीय कानून तथा राज्य कानून का विष्लेशण :–

पंचायत से संबंधित संविधान के भाग 9 में राज्य के विधान मण्डल उक्त भाग के अधीन ऐसी कोई विधि या कानून नहीं बनाएगा जो निम्नलिखित प्रावधानों से कोई भी असंगत हो–

1. पंचायतों के संबंध में कोई राज्य द्वारा विधि विधान बनाया जाए वह रूढि. जन्य विधि, सामाजिक एवं धार्मिक पद्धतियों और सामुदायिक सम्पदाओं की परम्परागत प्रबंध पद्धतियों के अनुरूप होगा। राजस्थान सरकार द्वारा बनाई गई विधि में इस केन्द्रीय प्रावधान का उल्लेख तक नहीं किया गया ताकि इस केन्द्रीय विधि की भावना के संबंध में किसी भी प्रकार का प्रश्न नहीं उठाया जा सके। न ही इसके क्रियान्वयन की मांग हो सके।

2. केन्द्रीय कानून में ग्राम साधारणतया आवास, आवासों के समूह अथवा छोटे ग्राम या छोटे ग्रामों के समूह से मिलकर बनेगा जिसमें समुदाय समाविश्ट हो तथा जो परम्पराओं तथा रूढ़ियों के अनुसार अपने कार्यकलापों का प्रबंधन करता हो। राज्य सरकार द्वारा पारित अधिनियम में गाँव की परिभाषा केन्द्रीय कानून के अनुरूप नहीं रखी गयी । गाँव को गाँव से इस अधिनियम में प्रयोजनों के लिए राज्यपाल द्वारा राजपत्र में अधिसूचना इस रूप में विनिर्दिष्ट कोई गाँव अभिप्रेत होगा। इस प्रावधान से गाँव का निर्धारण रेवेन्यु एक्ट के आधार पर दर्ज गांव ही होगा जो केन्द्रीय कानून के विरूद्ध है।

3. ग्राम सभा की अध्यक्षता सरपंच द्वारा करने का प्रावधान राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा। राज्य सरकार के पंचायती राज व्यवस्था से चुने सरपंच द्वारा किया जायेगा जो केन्द्रीय कानून के विरूद्ध प्रावधान है।

4. केन्द्रीय कानून के द्वारा लघु वन उपज पर ग्राम सभा को स्वामित्व तथा अधिकार दिया गया है जबकि राजस्थान सरकार द्वारा बनाये गये अधिनियम में लघुवन उपज को राज्य सरकार द्वारा बनाये जाने वाले नियमो के अधीन कर दिया गया।

5. केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत ग्राम सभा को यह अधिकार दिया गया कि यदि ग्राम सभा चाहे तो मद्यपान निषेध कर सकती है या मादक द्रव्य के विक्रय तथा

उपभोग को विनिमय या निर्बन्धित करने की शक्ति प्रदान की गई। जबकि राजस्थान सरकार द्वारा आबकारी आयुक्त एवं जिला कलेक्टर के अनुमोदन लेने की शर्त लगा दी गई।

6. केन्द्रीय कानून के अर्न्तगत ग्राम सभा को आदिवासियों के स्वामित्व की भूमि की रक्षा का अधिकार दिया गया। यदि किसी गैर आदिवासी द्वारा आदिवासी की भूमि ले ली जाती है तो ग्रांम सभा उसे अवैध करार दे सकती है राजस्थान सरकार द्वारा भी यह अधिकार ग्राम सभा को सौंपा गया है परन्तु राजस्व संबंधित अधिनियम में संशोधन नहीं होने से सभी विवाद उन्हीं पुराने नियमो के अनुसार होते रहेंगे।

7. केन्द्रीय कानून के तहत सामाजिक काम से जुड़ी हुयी संस्थाओ पर ग्राम सभा का नियन्त्रण होगा जिसमें स्कूल, अस्पताल सहकारी समिति आदि सम्मिलित है परन्तु राजस्थान सरकार ने अधिनियम में यह उल्लेख कर दिया कि कानून में समय–समय पर राज्य सरकार निर्देशित करती रहेगी जिससे यह स्पष्ट हो गया है कि केन्द्रीय कानून के अनुसार ग्राम सभा का क्षेत्राधिकार नहीं होगा।

8. केन्द्रीय कानून के तहत गांव के बाजारों का प्रबंधन एवं नियन्त्रण ग्राम सभा को सौंपा गया था उक्त प्रावधान के संबंध में राजस्थान सरकार ने यह उल्लेखित किया कि राजस्थान सरकार के नियमों के अधीन होने का हवाला दे दिया गया जिससे केन्द्रीय कानून निष्प्रभावी हो गया।

9. केन्द्रीय कानून के तहत गांव के विकास योजनाओं पर हो रहे खर्च पर निगरानी एवं उपयोगिता प्रमाण पत्र ग्राम सभा के क्षेत्राधिकार में रखा गया जिस पर राजस्थान सरकार ने उक्त शक्ति अपने पास निहित रख ली।

10. केन्द्रीय कानून में सामुदायिक सम्पदा, सांस्कृतिक पहचान और विवादों का निपटारे का अधिकार ग्राम सभा को सौंपा गया जो राज्य सरकार द्वारा उल्लेखित नहीं किया गया।

11. वन उपज के संबंध में केन्द्रीय कानून द्वारा ग्राम सभा को निर्णायक बनाया गया जबकि राजस्थान सरकार द्वारा तेंदु पत्ता का व्यापार राजस्थान तेंदु पत्ता (रेगुलेशन ऑफ ट्रेड) अधिनियम, 1974 द्वारा संचालित होगा तथा वन विभाग द्वारा तेंदु पत्ता का संग्रहण किया जायेगा।

निष्कर्ष :–

राजस्थान के अनुसूचित क्षेत्र में पेसा कानून की मूल भावनाओं को नजरअन्दाज किया गया तथा अपनी परिधि से बाहर जाकर विभिन्न कानूनों को सौंपा गया। इस तरह केन्द्रीय कानून एवं राज्य कानून के कई विरोधाभास है जिसके कारण अनुसूचित क्षेत्र में निवास करने वाली जनजातियों का विकास प्रभावित हुआ है। जनजातियों पर पड़ रहे प्रभावों को हम निम्न बिन्दुओं में लेख बद्ध कर सकते है।

1. अनुसूचित क्षेत्र में पेसा कानून लागू होने के बाद भी पंचायती राज व्यवस्था से संचालित किया जा रहा है जिससे उक्त क्षेत्र में दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था कायम हो चुकी है।
2. अनुसूचित क्षेत्र के मद्यपान संबंधी समस्त निर्णय ग्राम सभा में निहित होते हुए भी आबकारी अधिनियम से संचालित हो रहे है जिससे पेसा कानून मूल भावना के अनुसार विकास नहीं कर पा रहा है।
3. ग्राम सभा को गाँव के समस्त निर्णय लेने का अधिकार दिया गया तथा उसके निर्णय को वैद्यता प्रदान की गई जबकि आदिवासियों के व्यक्तिगत व सामुदायिक वन अधिकार के दावे ग्राम सभा द्वारा पारित होने के बाद भी निरस्त कर दिये गये।
4. पैसा कानून के तहत ग्राम सभा को खनिज सम्पदा पर पूर्ण नियन्त्रण का अधिकार दिया गया जबकि राजस्थान में आज भी खनन का नियन्त्रण खनन विभाग में ही निहित है।
5. अनुसूचित क्षेत्र में पेसा कानून के अनुसार कर्ज व्यवस्था का पूर्ण नियन्त्रण ग्राम सभा को दिया गया जबकि राजस्थान में सहकारी बैंक एवं अन्य संस्थाओं द्वारा ग्राम सभा को सूचित किये बिना ही कुर्की के आदेश दे दिये जाते है। इस तरह की दोहरी व्यवस्था के शिकार हो रहे है।
6. राजस्थान के अनुसूचित क्षेत्र में केन्द्रीय पेसा कानून पूर्ण रूप से लागू नहीं होने के कारण पानी पर ग्राम सभा का अधिकार नहीं हो सका आज भी पानी के स्त्रोतो पर जलदाय विभाग का अधिकार है। ग्राम सभा को पानी से उत्पन्न होने वाली समस्त आय का अधिकार होते हुए भी जलदाय विभाग द्वारा ही आय का संग्रहण किया जा रहा है।

7. राजस्थान में आज भी पुलिस से संबंधित कानूनों में पेसा कानून के अनुरूप संशोधन नहीं हुए है जिसके कारण पुलिस विभाग आज भी ग्राम सभा को महत्व नहीं दे रहीं।

8. हाल ही में राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थान भूमि अर्जन विधेयक, 2014 का बिल विधान सभा में प्रस्तुत किया। उक्त विधेयक में भी पेसा कानून में किये गये प्रावधानों को समाहित नहीं किया गया जैसे कि अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि आवप्ति से पहले ग्राम सभा की अनुमति आवश्यक है।

* * * * *

संदर्भ :–

1. अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006
2. उप्रेती, हरिशचन्द्र, भारतीय जनजातियां, सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय, 1970, पृ. 1 ऐल्विन, वेरीयर (1939), द बईगा, ग्यान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली पृ. 519
3. ऐल्विन, वेरीयर (1961), ए न्यू डील फोर ट्राईबल इंडिया, एम्ब्रीजमेन्ट ऑफ द टेन्थ रिपोर्ट ऑफ द कमीशनर फॉर शैल्ड्यूल कास्ट एंड शैल्ड्यूल ट्राईब, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर, 1963 पृ. 1
4. कश्यप, सुभाष (2013), अवर कंन्सटीट्यूशन– एन इन्ट्रोडक्शन टु इंडियाज कन्सटीट्यूशन एंड कन्सटीट्यूशनल लॉ, नेशनल बुक ट्रस्ट
5. गुजरात विद्यापीठ, गुजराज के आदिवासी (1968) पृ. 02 उद्धत पलीवाल, चन्द्र मोहन, (1986), आदिवासी–हरिजन आर्थिक विकास, नार्दन बुक सेन्टर, नई दिल्ली, पृ. सं. 1
6. घुरीये, जी.एस. (1943), द अबोरिजीनस – ''सो–कोलड''– एंड देयर फयुचर, डी. आर. गडगील, 1943 पृ. 31
7. डीमेन्ट, ऐलफर्ड (1967), यूरोपीयन मोडलस ऑफ ब्यूरोक्रेसी एंड डेवलपमेन्ट, इन्टरनेशनल रिव्यू ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव साईन्स, 8 (3)
8. पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996

9. भारत की जनगणना, 1981, खंड 1, भाग 1, पृ.158 उद्धत पलीवाल, चन्द्र मोहन, (1986),आदिवासी हरिजन आर्थिक विकास, नार्दन बुक सेन्टर, नई दिल्ली, पृ.सं. 1

10. भारत सरकार, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (भेदभाव से रोकथाम) अधिनियम, 1989

11. भारत सरकार, भारत का राजपत्र, भाग 2, सेक्श. 3, 12 फरवरी 1981

12. राजस्थान पंचायतीराज (उपबंधों का अनुसूचित क्षेत्र के संदर्भ में परिवर्तन) अधिनियम, 1999 (1999 की अधिनियम संख्या 16)

* * * * *

उत्तर पूर्वी भारत में समस्याएँ एवं संभावनाएँ : मानव अधिकार विकास की गलियों से

[*] टिलू लिंग्गी

मानव अधिकार विधि के परिप्रेक्ष्य से भारत के उत्तर–पूर्वी राज्य अनुसंधान के मुख्य केन्द्र स्थल हैं। मानव अधिकार के उल्लंघन की घटनाओं की वजह से भारत का यह क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से एक अलग ही छवि बना ली है। फिर भी मानव अधिकार उल्लंघन के कारणों का श्रेय केवल यहाँ के लोगों को ही नहीं दी जा सकती बल्कि इसे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आयामों से भी देखने की आवश्यकता है। फिर भी, उत्तर–पूर्वी भारत के संदर्भ में मानव अधिकारों के विस्तृत क्षेत्र के बीच अध्ययन की सीमा को ध्यान में रखते हुए यह लेख नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों जैसे प्रासंगिक अधिकारों का विश्लेषण एवं उत्तर–पूर्वी लोगों के जाति–गत भेदभाव तथा उत्तर–पूर्वी राज्यों के विभिन्न हिस्सों में लगाई जाने वाली मेगा हाइड्रो पॉवर परियोजनाओं की आर में पर्यावरण संकट जैसे मुद्दों पर विचार–विमर्श के लिए मददगार साबित होगी।

I. परिचय

भारत के उत्तर–पूर्वी राज्यों में ज्यादातर अनुसूचित जन–जाति के लोग हैं। आठ राज्य जो उत्तर–पूर्वी राज्य के इस विचार को संकल्पनात्मक रूप देती है वे है : अरूणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, सिक्किम एवं त्रिपुरा। ये राज्य विश्व भर में अपने अद्भूत महत्व तथा अपने अतिथि सत्कार के लिए जाने जाते है तथा यह क्षेत्र प्राकृतिक जैविक सम्पदा, प्राकृतिक संसाधन एवं सामाजिक, सांस्कृतिक विविधता का वरदान है। भारत के इस क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तथा दूसरे से इस क्षेत्र में लोगों का पलायन एवं स्थानांतरण के कई वजह हैं। देश के अन्दर विभिन्न कारकों की वजह

[*] शोधछात्र, स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

से भारत के विकास का विचार अपना एक अलग ही रूप ले लिया है। ये समस्याएँ केवल एक ही परिप्रेक्ष्य में देखी नहीं जा सकती बल्कि इस बड़े क्षेत्र में सोचने की आवश्यकता है जिसके अंतर्गत उत्तर–पूर्व का करूण तस्वीर भी शामिल है। यह लेख इस क्षेत्र के लोगों के नागरिक, राजनीति, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति आम जनमानस का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास है।

II. भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों के मानव अधिकार संबंधी मुद्दें एवं उनकी चुनौतियाँ :–

जतिगत भेदभाव : गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार की अवहेलना

उत्तर–पूर्वी भारत में मानव अधिकार परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए कुछ मुद्दों का विश्लेषण करने की आवश्यकता है। उत्तर–पूर्वी भारत में प्रचलित मानव अधिकार उल्लंघन का सबसे गंभीर मुद्दा जातिगत भेदभाव से संबंधित है। ज्यादातर भारतीय उस धार्मिकता पर गर्व करते होंगे जब 1893 में मोहनदास करमचंद गांधी ने रेलवे टिकट परीक्षक के जातिगत भेदभाव का विरोध किया जिसने वैध टिकट रहने के बावजूद दक्षिण अफ्रिका में ट्रेन की डिब्बे में केवल गोरे लोगों का स्थान है, कहकर उन्हें बाहर निकाल दिया था।[2] हाल के दिनों में कई अवसरों पर देश के बाहर जातिगत भेदभाव कूटनीतिक संकट का कारण बना है। देश में अपने ही नागरिकों के साथ होने वाली जातिगत भेदभाव को उजागर नहीं किया जाता। उत्तर–पूर्वी समुदायों को हर एक दिन गली, कार्यालय, बाजार, अस्पताल यहां तक की शैक्षणिक संस्थानों में इस तरह की पक्षपात का शिकार होना पड़ता है। भारत ने 1969 में सभी प्रकार के जातिगत भेदभाव उन्मूलन पर अंतरराष्ट्रीय परिसंवाद पर हस्ताक्षर किया, वर्ष 1967 में "जातिगत भेदभाव" के अंतर्गत उन चीजों को समाहित किया गया जहां वर्जन, प्रतिरोध या रंग, अवरोहण पर आधारित प्राथमिकता या राष्ट्रीय अथवा जनजातियों की उत्पत्ति, जिनका उद्देश्य उनकी पहचान को धूमिल या बिगाड़ना, मनोरंजन, व्यवहार समान अवसर, मानव अधिकार तथा राजनीति, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं सार्वनजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में किसी प्रकार की भेद–भाव आंत है।"[3] इस परिसंवाद का अर्थ जातिगत एवं आदिवासियों के साथ भेद–भाव को खत्म करना था जो उत्तर–पूर्व के लोगों द्वारा समान तरिके से सामना किया जाता है।

अभी हाल ही में समाप्त हुई बेज़बरूआ समिति रिपोर्ट[4], जिसमें उत्तर–पूर्व के लोगों को हो रही समस्याओं की जांच की मांग की गई थी, इसमें यह पाया गया कि उत्पीड़न एवं पूर्वाग्रह से संबंधित जातिगत भेद–भाव के ज्यादातर मामलों की घटनाएं दिल्ली में रिपोर्ट की जाती है।[5] इसके अलावा, रिपोर्ट यह दर्शाती है कि उत्तर–पूर्व की दो–तिहाई

महिलाओं ने यह रिपोर्ट की कि वे दिल्ली में उत्पीड़न या प्रताड़ना की शिकार हुई हैं। भेद–भाव के ज्यादातर मामले टैक्सी/ऑटो किराया का ज्यादा मांगना, भद्दे टिप्पणी करना, छेड़ना, उत्पीड़न, स्थानीय मकान मालिक द्वारा मौखिक गाली–गलौच या शारीरिक उत्पीड़न से संबंधित हैं।[6]

यहां यह तर्कसम्मत है कि इस तरह की जातिगत भेदभाव का मूल कारण पक्षपात है एवं भारतीय होने के बावजूद भी उत्तर पूर्व के लोगों को जाति एवं निवास–स्थान की वजह से शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा के शिकार होते है। इस क्षेत्र में आर्थिक विकास के पर्याप्त अभाव को नकारा नहीं जा सकता एवं निःसंदेह जातिवाद का यह भी एक कारण है। उदाहरणार्थ, किसी इंसान को चिंकीं कहकर गाली देना एक विवेकशील समाज के समझ से परे है।

इस तरह की समस्याओं में कानून हमेशा समाधान नहीं बनता जैसा कि इन मामलों में आपराधिक व्यवहार निर्धारित होती है जो मानव अधिकार उल्लंघन का कारण बनती है परन्तु यह उन पक्षपातों को निर्धारित नहीं करती जो लोगों की मानसिकता पर समाहित होती है एवं कानून तभी हरकत में आता है जब यह मानसिकता परिणाम में बदल जाती है। ज्यादातर मामलों में इस तरह की जातिगत पक्षपात को प्रमाणित करना मुश्किल होता है क्योंकि जातिवाद को साक्ष्य की भाषा के रूप में प्रस्तुत नहीं की जा सकती। कभी–कभी यह पहचानना मुश्किल हो जाता है कि पास खड़ा युवक पीड़ित की दिशा में जातिगत टिप्पणी कर रहा है या वाद्य यंत्रों से उनका मजाक उड़ा रहा है। जातिगत भेदभाव के अंतर्गत मौखिक या शारीरिक अभिव्यक्ति ही नहीं आती बल्कि शैक्षणिक अस्पताल एवं अन्य संस्थाओं से जुड़े हुए संकायों एवं कर्मचारियों का आचरण भी आता है। निष्कर्षतः आज जातिवाद दृष्टिगोचर स्थिति की बजाय प्रयोगात्मक रूप ले लिया है।[8]

एक विवाद यह भी रहा है कि उत्तर पूर्व भारत के विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में एन.सी.आर.टी. एवं यू.जी.सी. द्वारा प्रदान किए गए ज्यादातर विषयों में भारतीय इतिहास की गाथा का वखान करते है लेकिन भारत के दूसरे हिस्सों में पढ़ाई जाने वाली विषयों में उत्तर–पूर्व की इतिहास का कोई वर्णन नहीं होता। ''बाहर के लोगों की चेतना में उत्तर–पूर्व के प्रत्येक पहलूओं को समाकलित करने के लिए'' एन.सी.आर.टी. एवं यू.जी.सी. को पाठ्यक्रम में ''उत्तर–पूर्व लोकाचार'' को शामिल करने की आवश्यकता है जैसाकि यह बेजबरूआ समिति की रिपोर्ट[9] में दर्शाया गया है। दिल्ली विश्वविद्यालय का

भाषा विभाग हॉल ही में उत्तर–पूर्व की आठ भाषाओं जिसमें असमिया, नागामीज, मणिपुरी, अरूणाचली एवं त्रिपुरी शामिल है, में अल्प अवधी प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रम को चालू करने का निर्णय ली है एवं इस पाठ्यक्रम के तहत दिसम्बर[10] में इस क्षेत्र का परम्परागत दौरा शामिल है। इस पाठ्यक्रम के तहत विद्यार्थियों को इस क्षेत्र की संस्कृति एवं परम्परा को जानने के लिए उत्तर पूर्व क्षेत्र में यात्रा का अवसर मिलेगा।

जतिगत भेदभाव के ज्यादातर मामलों में यह रिपोर्ट की गई है कि इन मामलों के दोषी बिना किसी कार्रवाई के रिहा हो जाते हैं।[11] देश में कानून के प्रवर्त्तन के लिए इस तरह के क्रियाकलापों के विरूद्ध कार्रवाई के लिए संवेदनशील होने की आवश्यकता है। इस मुद्दे के बारे में सूचना एवं प्रशासन मंत्रालय आम जनता में जागरूकता फैलाने में योगदान कर सकती है।[12] फिर भी, सर्वेक्षण यह दर्शाते हैं कि एम. सी. मेरी कॉम जैसे विश्वस्तरीय खिलाड़ी की उपलब्धियाँ भी उत्तर–पूर्व के लोगों की छवी में कोई परिवर्तन नहीं ला पाई है।

जहां हम भारतीय अनेकता में एकता की वकालत करते हैं, हमें यह समझने की आवश्यकता है कि जातिवाद राष्ट्र निर्माण को काफी हद तक प्रभावित करता है। इस तरह की संकल्पनाओं को बढ़ावा कुछ सरकारी योजनाओं एवं नीतियों के निष्पादन से नहीं बल्कि भौगोलिक दूरवर्ती क्षेत्र के लोगों के सुख–सुविधाओं का ध्यान रख कर की जा सकती है। अनेकता भारत की एक सच्चाई है लेकिन सभी के लिए स्वतंत्रता के आधार पर सहीष्णुता का निर्माण किया जा सकता है।[13] अगर जातिवाद एवं रंग के आधार पर भेदभाव किया जाता रहेगा तो यह निराशा, भय एवं एकाकीपन को बढ़ावा देगा जो कुल अवसरवादी राजनीतिक तत्वों के लिए एक इंच से एक मील रेखा खिचने में मददगार साबित होगी। किसी भी राष्ट्र के निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती जब वहाँ कि नागरिकों को हर बार समझौते करने पड़े। जिस तरीके से प्रशासन यह दोहराता है कि अरूणाचल प्रदेश या भारत के अन्य पूर्वी राज्य भारत का एक अभिन्न हिस्सा है जब चीन इसे अपना क्षेत्र बतलाता है, क्योंकि उन्हें पता है कि यहाँ के लोग जातिगत भेदभाव की कुप्रथा के शिकार हैं। भारतीयों को पक्षपात से ऊपर उठना होगा तथा अगर वे चाहते हैं कि दूसरे देश में इन्हें जातिगत भेदभाव का शिकार न होना पड़े तो उन्हें मानव के रूप में अपने देशवासियों को बराबर का दर्जा देना होगा। गैर–भेदभाव कोई रिआयत नहीं है बल्कि यह एक सार्वभौमिक मानव अधिकार है एवं मानवता सबसे ऊपर है।

बांध, विकास एवं विध्वंस

हॉल के वर्षों में जनसंख्या की भारी विकास एवं उपभोक्तावाद की वजह से भारत जैसे विकासशील देश में ऊर्जा की मांग को काफी बढ़ा दिया है। इस स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों की मांग के लिए समाज के हाशिए के लोगों के अधिकारों एवं राष्ट्रीय हित के नाम पर आर्थिक विकास के विचार के मध्य संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है। राज्य द्वारा इस तरह के संघर्ष एवं पर्यावरण विचार कर आर्थिक विकास की प्राथमिकता ने परिणाम को जानने के बावजूद भी संवैधानिक सिद्धान्त[14] एवं अंतराष्ट्रीय प्रतिबद्धता[15] के उल्लंघन को बढ़ावा दिया है। भारत का उत्तर–पूर्वी क्षेत्र इसी प्रकार के उल्लंघन का एक उदाहरण है। उदाहरणस्वरूप, अरूणाचल प्रदेश की स्थानीय जनजातियों ने देश के सबसे बड़े 300 मेगावाट दिबंग मल्टीपरपस परियोजना का विरोध किया क्योंकि असम के डिबरू–सैखोवा राष्ट्रीय पार्क सहित अरूणाचल एवं असम के नीचले हिस्सों में रहने वाले लोगों से प्रभावी लोक परामर्श[16] एवं समाज तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले इसके प्रभाव के बिना ही उन्होंने इस परियोजना को स्वीकृति दे दी थी। अरूणाचल प्रदेश के निचली दिबंग घाटी जिले में दिबंग नदी के किनारे बी.एम.पी. के पक्ष में 4,57784 हेक्टेयर जंगल की जमीन को साफ करना पड़ता। आदिवासी जनजातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों विश्व जैव विविधता के हनन की आशंका के बावजूद, पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के तहत वन सलाहकार समिति ने इस परियोजना को हरी झंडी दिखा दी जिसका निर्माण राष्ट्रीय हाइड्रोइलेक्ट्रानिक पावर कॉरपोरेशन द्वारा किया जा रहा है हालांकि इस परियोजना का वन सलाहकार समिति ने दो बार बहिष्कार कर दिया है।[17] दिबंग मल्टीपरपज परियोजना 168 बृहत बांधों में से एक हैं जो 57,000 मेगावाट हाइड्रोपावर का निर्माण करेगा लेकिन इससे हजारों की संख्या में लोगों के जान के खतरे की आशंका है। इस तरह सिक्किम में, सिक्किम सरकार ने न केवल हाइड्रोपॉवर निर्माण के सर्वोच्च न्यायालय की आदेश[18] का दमन किया बल्कि इसे पुरी तरह नकार दिया क्योंकि यह केवल वन्य जीवों के लिए खतरा था बल्कि यह भुटीया एवं लेपचा समुदाय के अस्तीत्व के लिए भी खतरा का विषय था जिनका जीवन पुरी तरह से जंगलों एवं नदियों पर निर्भर थी।[19]

उच्चतम न्यायालय के 2006 के आदेश के अनुसार, राष्ट्रीय पार्क एवं शरण्य के 10 किलोमीटर के भीतर की सभी परियोजनाओं नेशनल बोर्ड फॉर वाईल्डलाइफ के स्टैंडिंग कमिटि से पहले अनुमति लेना आवश्यक है। हालांकि, कंचनजोंगा राष्ट्रीय पार्क नजदीक 1,200 मेगा वाट टीस्टा ￼ परियोजना तथा उत्तरी सिक्किम में 96 मेगा वाट दिक च नजदीक फैमबौग्लहो वाईल्डलाइफ शरण्य में पर्यावरणीय अनुमति न प्राप्त करने के

बावजूद निर्माण[20] हो रहा है। सिक्किम जैसे छोटे राज्य में 31 पन बिजली परियोजनाएं प्रस्तावित थीं जिसमें से राज्य ने केवल छः परियोजनाओं[21] को निरस्त किया क्योंकि 2011 के भूकम्प से उन पर लोगों का बहुत दवाब था। पूर्वोत्तर भारत जैसे अत्यधिक इकोलॉजिकली सेंसिटिव जोन जहां लैंडस्लाइड, बाढ़ तथा मूसलाधार बारिश लगातार होते रहते हैं, वहां इस प्रकार के विकास के बारे में सोचना बहुत जोखिम भरा है। त्रिपुरा का डम्बर पनबिजली परियोजना एक अन्य ऐसा उदाहरण है जहां मानव अधिकारों का घोर हनन हो रहा है जैसे कि जमीन से परियोजना तक लोगों का अनैच्छिक विस्थापन। इसी प्रकार, आसाम में कोपिलि, खांगडोंग, लोवर बोरपानी (करबी लांग्पी) में; मणिपुर के लोकटक में; मेघालय के उमियम उम्बु प्टए किरज्मकुलाई, उमियम स्टेज–। ; तथा नागालैण्ड में डोयांग[22] में बांध बनाए गए। मिजोरम में भी सितम्बर, 2010 में सिनलुंग पहाड़ी में बांध के विरोध में सिनलुंग इंडीजिनस पीपल्स ह्यूमन राइट्स ऑरगेनाइजेशन ॅ(IPHRO) तथा सिनलुंग पीपल्स कलेक्टीव ने मिजोरम की राजधानी आइजोल[23] में प्रदर्शन किया था। ज्यादातर पनबिजली परियोजनाओं को 'राष्ट्रीय हित' के पर्दे में बताकर प्रारम्भ किया गया था। विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा बहुत सारे समझौता ज्ञापनों पर पर्यावरणीय अनुमति मिलने के पहले ही हस्ताक्षर किए गए।[24] विभिन्न मंत्रालयों को देखा गया कि वे परियोजनाओं को अनुमति मिलने में अत्यधिक उत्साहित थे जिनका उन परियोजनाओं में कुछ हित था।[25]

इन सब परिस्थितियों को देखकर हमें यह जानने तथा चर्चा करने की आवश्यकता है कि पूरे पूर्वोत्तर भारत में 63,328 मेगावाट क्षमता की कुल 168 परियोजनाएं क्या एक इको–फ्रेंडली कदम है या जन विरोधी विकास है क्योंकि पूरा पूर्वोत्तर भारत सिसमिकली सेंसिटिव जोन में आता है?

क्या यह पागलपन की पराकरष्ठा नहीं है? या क्या यह इसके भागेदारों द्वारा सभी कानूनों के घोर हनन का कॉरपोरेट लालच है? इससे निश्चित तौर पर पर्यावरण तथा पहले बताकर लेकर दी गई अनुमति, भागीदारी का अधिकार तथा पर्यावरण पर असर का असेसमेंट अध्ययन तथा समाज पर असर सम्मिलित क्षेत्र के मानव अधिकारों के अन्य मुद्दों का हनन हुआ है। आर्थिक विकास निश्चित तौर पर एक आवश्यकता है लेकिन इसे मानव के जीवन तथा उस पर्यावरण जहां हम रहते हैं के कीमत पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। राज्य इस प्रकार के पूर्व उत्तर क्षेत्र के मुद्दों के निवारण में असफल रहा है।

विधिक दृष्टि से मानव अधिकार की महत्ता तथा परियोजना से हुए विस्थापन के संबंध को उच्चतम न्यायालय के एक केस नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ एवं अन्य[26] में दर्शाया गया है। उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि आदिवासियों को उनके इच्छा विरुद्ध विस्थापित करना, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21[27] के साथ—साथ आई.अल.ओ. कॉनवेंशन 107[28] का उल्लंघन है।

राज्य के नीति निर्देशक तत्वों[29] के अंतर्गत ये राज्य का दायित्व है कि वे देश की पर्यावरण को बचाएगी तथा उसमें विकास करेगी तथा जंगल एवं वन्य जीवन की रक्षा करेगी।

उदाहरण के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर समिति ने आवश्यक प्रक्रिया गारंटी के अपने प्राधिकृत व्याख्या में कहा है कि इसमें राज्यों को करने के लिए आवश्यक कदम होंगे जिससे परियोजना से प्रभावित लोगों द्वारा उचित परामर्श किया जा सके ताकि प्रभावित सभी लोगों को खाली करने से पूर्व की तिथि में नोटिस दिया जा सके तथा जहां लागू हो वहां कानूनी उपचार तथा कानूनी सहायता दी जा सके।[30]

संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग ने भी बाध्य न करने वाले तत्वों को भी परिभाषित किया है जो आंतरिक विस्थापन से संबंधित है और जो राज्य पर उसके नागरिकों के दायित्व पर प्रकाश डालता है तथा सभी साध्य विकल्पों का परिक्षण करता है जिससे विस्थापन को पूरी तरह से रोका जा सके। वे यह भी कहते हैं कि विस्थापन की प्रक्रिया से प्रभावित हुए लोगों के जीवन, गरिमा, स्वतंत्रता तथा सुरक्षा के अधिकार का हनन न हो।[31]

अपने एक निर्णय[32] में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पहले से चली आ रही क्रियाओं में भी नए पर्यावरणीय कानून लागू होने हैं। अर्थात, परियोजना का अध्ययन प्रत्येक स्तर पर करना है भले ही पहले कुछ भी नतीजे निकले हों।

इसी प्रकार बांधों के ऊपर विश्व आयोग की रिपोर्ट[33] में कहा गया कि बड़े बांध परियोजनाओं को कार्यान्वित करने का एक विशिष्ठ कथन मानव अधिकारों और पर्यावरण गुणवत्ता को जोखिम में में डाले बिना है।

ये परेशानियां एक ओर विकास की धारणा तथा दूसरी ओर पूर्वोत्तर के लोगों के अधिकार के बीच तारतम्य बना पाने में बहुत बड़ी सिद्ध हुई हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा

उद्घोषणा ने स्पष्ट शब्दों में जोर देकर कहा है कि विकास का अधिकार एक ऐसा अहस्तान्तरकरणीय मानव अधिकार है जिससे सभी मानव तथा अन्य लोगों को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक विकास में भागीदारी, सहयोग तथा आनन्द प्राप्त करने का अधिकार है जिससे सभी मानव अधिकार तथा मूलभूत स्वतंत्रताएं पूरे तरह से प्राप्त की जा सकें।[34] अतः राज्य द्वारा बिजली के उत्पादन को जनहित में सही ठहराया जा सकता है। हालांकि, यह जानते हुए कि विकास का अधिकार एक अहस्तान्तरकरणीय अधिकार है, क्या यह फिर से सोच सकते हैं कि इस प्रकार के विकास को मानव जीवनों के कीमत पर न्यायसंगत ठहराया जा सकता है? संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम जो सामाजिक विकास और मानव अधिकारों के संरक्षण का ब्यौरा रखता है, ने अपनी 1990 के रिपोर्ट में कहा था कि :

"किसी राष्ट्र की असली सम्पत्ति वहां के लोग होते हैं। विकास का मूलभूत उद्देश्य लोगों के लिए एक ऐसा सहयोगी वातावरण बनाना है जिससे वे लम्बी, स्वस्थ्य तथा सृजनात्मक जीवन व्यतीत कर सकें। यह एक सरल सत्य प्रतीत हो सकता है। लेकिन इसे संसाधनों एवं वित्तीय धन एकत्रित करने में फूल जाया करते हैं।"[35]

अतः उपर्युक्त रिपोर्ट से स्पष्ट है कि विकास लोगों के हित के लिए होना चाहिए और न की उनके अस्तित्व को खतरे में डालना।

III. निष्कर्ष

नस्ली भेदभाव एवं बृहत पन बिजली परियोजना के मुद्दे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक का स्वभाव सिविल एवं राजनैतिक है तो दूसरा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों से एकरूप है। मानव अधिकार के ये दो महत्वपूर्ण क्षेत्र प्रणालीगत तरीके से छोटा कर दर्शाते हैं कि भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र को भारत के सीमांत क्षेत्र के रूप में ही देखा जाता है। लोगों के जीवन को राज्य के साथ समझौता किया जाता है चाहे वह व्यक्तिगत रूप से भेदभाव हो या एक समूह के रूप में भेदभाव हो। हालांकि, वही तंत्र भारत के विचार को सही मायने में समझने में असफल है। सशस्त्र बल (विशेष शक्तियाँ) अधिनियम बार–बार एक ऐसे उदाहरण के रूप में सामने आता है जो आजादी के समय से ही पूर्वोत्तर में लागू है। जबकि इसके अलावा पूरे भारत में मानव अधिकारों के मुद्दों को देखने के लिए भारतीय संविधान तथा अन्य आपराधिक कानूनों का सहारा लेता है वहीं पूर्वोउत्तर भारत आज भी क्रूर कानूनों के अंतर्गत अप्रत्यक्ष रूप से जी रहा है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत तथा यूनिवर्सल पिरिऑडिक रिव्यू में संयुक्त

राष्ट्र मानव अधिकार परिषद् के बार–बार सिफारिश के बाद भी सेना तथा केन्द्र सरकार के बीच इस अधिनियम को निरस्त करने के लिए एक दूसरे पर दोषारोपण करने के खेल ने प्राथमिकता ले ली है। यदि भारत को अन्य विकासशील देशों में अपने गिनती करवानी है तो इस बर्ताव को बदलना होगा।

* * * * *

मूल अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित

अंजली संकलानी
अमित कुमार राव
अखिलेश सिंह

संदर्भ :–

2 संपादकीय 'रेसिज़्म इन इंडिया', इकॉनोमिक एण्ड पोलिटीकल वी कली खण्ड XI, IX, सं0 41, अक्तूबर 11, 2014।

3 अनुच्छेद 1(1), 21 दिसम्बर, 1965 के महासभा संकल्प 20106 (ग) द्वारा अंगीकृत सभी प्रकार के जातिभेद के उन्मूलन संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय।

4 द बेज़बरुआ कमिटी रिपोर्ट का नाम इसके अध्यक्ष एम. पी. बेज़बरूआ, आई.ए.एस. (सेवानिवृत्त), पूर्वोत्तर परिषद के नाम पर रखा गया। इसका गठन अरूणाचल प्रदेश के छात्र नीजे तानिया की नृशंस हत्या, जो अभिकथित रूप से घृणा अपराध था, के बाद किया गया। यह 11 सदस्यीय समिति थी जिसने भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र से बाहर पूर्वोत्तर के लोगों द्वारा सामना किए जाने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर विचार किया। इसकी रिपोर्ट गृह मंत्रालय, नई दिल्ली को भेजी गई।

5 "श्री एम. पी. बंजबरूआ की अध्यक्षता में बेज़बरूआ समिति की रिपोर्ट भारत के अन्य भागों में रहने वाले पूर्वोत्तर के लोगों की समस्याओं पर विचार करने हेतु" गृह मंत्रालय, नई दिल्ली, पैरा 1.13 के पृष्ठ सं0 4,<http://mha.nic.in/sites/upload_files/mha/files/Report of MPBezbaruahCommittee.PDF>, visited on 24th October, 2014 पर उपलब्ध

6 आइ बिद पैरा 3(सी), पृष्ठ सं0 9

7 पूर्वोत्तर के लोगों के प्रति इस प्रकार की भाषा कही जाती हैं, जिनकी दक्षिण पूर्व एशियाई मूल जैसी शारीरिक समानता होती है। इस प्रकार की भाषा अपमानजनक है तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार उन्मूलन) अधिनियम 1989 की धारा 3(1) (XV) के तहत जुमाने सहित 5 वर्ष तक की कैद सहित दण्डनीय है।

8 येंगखम जिलनगम्बा 'लेट्स स्टॉप प्रिटेंडिंग देयर इजनोरेसिज्म इन इंडिया', द हिन्दु, 29 मई, 2012 <http://www.thehindu.com/opinion/op-ed/lets-stop-pretending-theres-no-racism-in-india/article3466554.ece>, पर उपलब्ध।

9 नोट 5, पैरा 5 (जी), पष्ठ 42

10 अरूणाचल टाइम्स, 24 अक्तूबर, 2014, (दिल्ली विश्वविद्यालय पूर्वोत्तर भाषाओं में सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम प्रारंभ करेगा" <http//www.arunachaltimes.in/>, last visited पर उपलब्ध।

11 'एन ई पीपुल डिमांड्स जस्टिस आउटसाइड पुलिस स्टेशन : मिज़ो गर्ल मर्डरड केस', इस्टर्न स्काई मीडिया, नई दिल्ली, 17 अक्तूबर, 2014 <http//easternskymedia.co.in/category/mizoram/>, पर

उपलब्ध। यह भी देखें, "पूर्वोत्तर भारतीय जनता जातिभेद के विरुद्ध खड़ी हुई", मैत्रेयी बरूआ, 3 फरवरी, 2014, <http://timesofindia.indiatimes.com/lifestyle/people/North-east-Indian-population-stands-up-against-discrimination/articleshow/29776184.cms>, पर उपलब्ध

12 अनीशा माथुर, "राजधानी में पूर्वोत्तर के लोगों के प्रति जातिभेद अत्यधिक है।", इंडियन एक्सप्रेस, नई दिल्ली, अगस्त, 21, 2014

13 प्रताप भानु मेहता, "इंडिया आफ्टर नीडो" इंडियन एक्सप्रेस, 6 फरवरी, 2014 <http://indian express.com/article/opinion/columns/india-after-nido/>, पर उपलब्ध।

14 इससे भारत के संविधान के भाग III में प्रदत्त मौलिक अधिकार, भाग IV में प्रदत्त राज्य के मौलिक कर्त्तव्य शामिल हैं। इसमें टी. एम. गोडावर्मन थिरूमुलकपाद बनाम भारत संघ, ए आई आर (1997) 2 एस सी सी 222 भी शामिल है, जो पूरे पूर्वोत्तर भारत में पेड़ों की कटाई पर रोक लगाता है। इन संरक्षणों के बावजूद भी जंगल के बहुत बड़े भाग को काटा गया।

15 अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाएँ जैसे सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कषतिक अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966, अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन प्रसंविदा 107 तथा 169 सदस्य राज्य पक्षकारों के लिए बाध्यकारी। ये प्रसंविदाएँ मानव अधिकारों, जिनमें से कुछ गैर–अप्रतिष्ठिक अधिकार हैं, की व्यापक श्रृंखला को शामिल करती है।

16 लेक परामर्श पूर्व सूचित स्वीकृति के अधिकार का भाग तथा राज्य सुशासन का भाग है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा नई दिल्ली में 27 जनवरी, 1994 को नोटिफिकेशन ऑन एनवायरमेंट इंपैक्ट असेसमेंट ऑफ डेवलपमेंट द्वारा पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन को अधिसूचित किया गया था।

17 चंदन कुमार दुआराह, यूरेशिया रिव्यू, "इंडिया क्लीयर्स 3000 एम डब्ल्यू दिबांग प्रोजेक्ट इन ईस्ट हिमालयन रीज़न", अक्तूबर 14, 2014 <www.eurasiareview.com/14102014-india-clears-3000-mw-dibang-project-east-himalayan-region-oped/>, पर उपलब्ध है। एफ ए सी ने वनभूमिका 45 स्क्वैयर करते हुए निष्कर्ष दिया था कि "वन भूमि के बहुत बड़े भाग को नष्ट करने जो राज्य के आदिवासी जनसंख्या के जीवन–यापन का बड़ा स्रोत है, की परिस्थितिक एवं सामाजिक लागत, परियोजना से होने वाले लाभों से अधिक महत्वपूर्ण होगी" बाद में प्रधान मंत्री कार्यालय (पी एम ओ) ने अभिकथित तौर पर पर्यावरण सचिव को 3 सितम्बर को एक पत्र भेजा था निवेश संबंधी केबिनेट समिति के निर्णय के अनुसार कि "परियोजना को त्वरित रूप से अनुमति दें। पर्यावरण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने भी कहा था कि विकास के नाम पर "सिंगल विंडोक्लीयरेंस" द्वारा परियोजनाओं को अनुमति दी गई थी।

18 डब्ल्यू पी 406/2004, गोवा फाउंडेशन बनाम भारत सरकार, आदेश 4/12/2006। यह मामला गोवा फाउंडेशन केस के नाम से भी जाना जाता है।

19 जय मजूमदार "सिक्किम उच्चतम न्यायालय के आदेश का उल्लंघन करते हुए हाइडल प्रोजेक्ट का निर्माण कर रहा है", तहलका अंक 42, खंड 10, अक्तूबर 19, 2013 http://www.tehelka.com/sikkim-constructing-projects-violation-of-sc-order/>,।

20 ये दोनों परियोजनाएं उच्चतम न्यायालय के "पर्यावरण–संवेदी ज़ोन" के अंतर्गत अधिदेशाधीन हैं।

21 इन परियोजनाओं में रिंग–टिंग, लिथांग, बोप, भीमकांग, लाचुंग तथा तीस्ता स्टेज–५, आरबिद शामिल हैं।

22 बाघोलिकर नीरज, एन एवं दास, पी. जे, 2010 "डैमिंग नॉर्थईस्ट इंडिया" कल्पवक्ष, आरण्यक एवं एक्शन एड इंडिया। पुणे/गुवाहाटी, नई दिल्ली, पृष्ठ 3।

23 आईबिद, पृष्ठ 8।

24 उदाहरण के लिए, अरूणाचल प्रदेश प्रत्येक एम ओ यू के लिए पेशगी राशि के रूप में कथित रूप से 7 लाख रुपये प्रति एम डब्ल्यू उपफ प्राप्त करता है। एम ओ यू में अरूणाचल प्रदेश में बांध हेतु कंपनियों के साथ हस्ताक्षर किया जाता है, जिसमें एन एच पी सी, एन ई ई पी सी ओ, रिलायंस एनर्जी, जे पी ग्रुप एवं अन्य शामिल हैं। सुबराम राजखोवा, "हाइड्रों डॉलर्स सैन्स इंफोर्मड् कांसन्ट" गुवाहाटी यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ लॉ, अंक 7, 2010, पृष्ठ 113।

25 उदाहरण के लिए डी एम पी प्रोजेक्ट के लिए, विदेश की केबिनेट समिति, खदान एवं खनिज मंत्रालय, इस्पात मंत्रालय एवं अरूणाचल राज्य सरकार के मंत्री एवं सचिव उपस्थित थे जिसके लिए "त्वरित रूप से अनुमति लेना था।" देखिए, परिणीता दांडेकर, "दिबांग इंसेसिटिविटी एनेलिसिस : एफ ए सी रिकमेंडेशन कैन डिस्ट्रॉय 4577 है0 रिचफोरेस्ट", अक्तूबर 23, 2014 <http://sandrp.wordpress.com/2014/10/23/insensitivity-analysis-of-dibang-multipurpose-project-fac-recommends-dibang-at-10-mt-height-reduction-will-destroy-4577-hectares-forest/>, पर उपलब्ध हैं।

26 1994 की रिट याचिका (सिविल) सं0 319, यह भी देखें, फिलिप कलेट "द इंडियन सुप्रीम कार्ट डिसीज़न ऑन सरदार सरोवर इन इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव", द इंटरनेशनल एण्ड कंपेरिटिव लॉ क्वार्टरली, अंक 50, सं0 4, अक्तूबर 2001, पृष्ठ 973–987।

27 भारत का संविधान, जनवरी 26, 1950।

28 अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन, स्वतंत्र देशों में सीमांत एवं अन्य आदिवासी एवं उप–आदिवासीजन संख्या के संरक्षण एवं एकता से संबंधित अभिसमय।

29 भारत का संविधान, अनुच्छेद 48–45, जनवरी 26, 1950।

30 आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों संबंधी समिति, सामान्य टिप्पणी 7 – उचित आवास का अधिकार अभिसमय का (अनु0 11.1) : जबरन बेदखल करना, यू एन डॉक ई/सी. 12/1997/4 (1997)।

31 यू एन कमीशन ऑन ह्यूमन राइट्स, गाइडिंग प्रिंसिपल्स ऑन इंटर्रल डिस प्लेसमेंट, यू एन डॉक. ई/सी एन, 4/1998/53/एड.2 (1998)

32 गाबी कोवो – नाग्यमारोस प्रोजेक्ट (हंगरी/स्लोवाकिया) जजमेंट, आई.सी.जे. रिपोर्ट 1997 पृष्ठ 7

33 वर्ल्ड कमीशन ऑन डैम, डैमस एण्ड डेवलपमेंट – ए न्यू फ्रेमवर्ग फॉर डिसीज़न मेकिंग, अर्थस्कैन, लंडन, नवम्बर 2000, पृष्ठ 1–356।

34 अनुच्छेद 1(1), यूनाइटेड नेशन जनरल असेंबली रेजोल्यूशन, 41/128 (1986), डेकलरेशन ऑन राइट टू डेवलपमेंट। <http://www.un.org/documents/ga/res/41/a41rl28.htm>, पर उपलब्ध।

35 यूनाइटेड नेशन डेवलपमेंट प्रोग्राम, ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1990, पृष्ठ 1–141, पृष्ठ. 9 पर, <http://hdr.undp.org/sites/default/files/reports/219/hdr_1990_en_complete_nostats.pdf>, पर उपलब्ध।

* * * * *

भारतीय सन्दर्भ में जनजातीय स्वास्थ्य का अध्ययनः दशा और दिशा

* डॉ0 राशिदा अतहर

"अच्छा स्वास्थ्य केवल कुपोषण एवं रोगों से मुक्ति का ही नाम नहीं है अपितु इसका सम्बन्ध पूर्ण शरीरिक, मानसिक एवं सामाजिक उन्नति से है।"

विश्व स्वास्थ्य संगठन [1]

डब्ल्यु.एच.ओ. द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषा मानव स्वास्थ्य को एक महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार करती है और उसे विकास की अवधारणा से जोड़ती है। संयुक्त राष्ट्र विकास योजना (यू0एन0डी0पी0) ने भी विकास के अधिकार में मुख्यतः तीन बातों को सम्मिलित किया है—शिक्षा, स्वास्थ्य और आय का स्तर। [2] मानव जीवन में स्वास्थ्य के महत्व को स्वीकार करते हुए हमारे संविधान ने भी राज्य का यह दायित्व निर्धारित किया है कि सार्वभौम स्वास्थ्य सेवाओं तक सबकी पहुँच हो तथा भुगतान असामर्थ्यता की वजह से किसी को भी इन सेवाओ से वंचित न होना पड़े। [3] वैसे तो सरकार ने आजादी के बाद से ही देश की जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा करने के लिए निरन्तर प्रयास किये है फिर भी जनजातीय जीवन में अन्य लोगों की अपेक्षा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याऐं अधिक पायी जाती है। जनजातीय आबादी के मामले मे भारत अफ्रीका के बाद दूसरे स्थान पर आता है। जनजातियों की आबादी वर्तमान देश की कुल आबादी की 8.2 प्रतिशत है। [4] भारतीय संविधान अनुच्छेद 342 के अनुसार देश मे करीब 697 जनजाति समूह है जिसमें 75 ऐसी जनजातियाँ जिन्हें आदिम जनजाति समूह प्रीमिटिव ट्राइवल—पी0जी0टी0) कहा गया है। जैसे बोड़ो, बोंदो, बिरहोर, बैगा, कमार, सहरिया और ओग आदि अन्यजातियों मे भी संथाल, गौंड़, गारो, नागा, खासी, चकमा, चेंचू, कोलम, ओंगू इत्यादि जनजातियाँ सम्मिलित है। [5]

---

* सहायक आचार्य, मानवाधिकार विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारत मे जनजातीय समाज की कल्पना सामाजिक एवं भौगोलिक पृथक्ता के रूप मे की जाती है। वे वृहत्तर भारतीय समाज से अलग रहते है और अपने परिवास के प्रदेश पर उनकी स्वायत्ता होती है। उनका भूमि वन अन्य संसाधनों पर नियंत्रण होता है और वे अपने परम्परायें एवं रीति–रिवाज रखते है। भारतीय जनजातियों को स्वतंत्र भारत के नागरिक के रूप मे सिविल , राजनीतिक सामाजिक अधिकार प्रदान किये गये है। इन प्रावधानों के अतिरिक्त जनजातियों को विशिष्ट समुदाय के सदस्य के नाते विशिष्ट अधिकार भी प्रदान किये गये है। ऐसे अधिकारों मे सांविधिक मान्यता (अनुच्छेद 342) संसद और राज्यविधान मण्डलों मे सामानुपातिक प्रतिनिधित्व (अनुच्छेद 330 और 332), विशेषज्ञ क्षेत्रों मे सामान्य नागरिकों की मुफ्तर रूप से घूमने फिरने या बस मे अथवा सम्पत्ति अर्जित करने पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 19(5)) जनजातीय भाषाओं, बालियों और संस्कृति आदि का संरक्षण (अनुच्छेद 29) जैसे प्राविधान शामिल है। संविधान मे एक ऐसा खण्ड भी शामिल किया गया है जिसके अन्तर्गत राज्य जनजातीय समुदायों के लिये सामान्य आरक्षण क प्रावधान (अनुच्छेद 14 (4)) और विशेष रूप से नौकरियों और नियुक्तियों मे उनके लिए आरक्षण (अनच्छेद 16 (4)) की व्यवस्था कर सकते है। संविधान में एक ऐसा निर्देशक सिद्धान्त भी है जिसके अनुसार जनजातियों सहित समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष रूप से प्रोत्साहित (अनुच्छेद 46) किया जाना चाहिए। इसके अलावा संविधान (अनुच्छेद 244 और 244(क)) की पांचवी और छठी अनुसूची मे ऐसे प्रावधान है जिनमें राज्य को यह अधिकार दिया गया कि वह जनजातीय क्षेत्रों मे विशेष प्रशासनिक व्यवस्था कर सकता है। संविधान मे जनजातीय क्षेत्रों के निर्धारण का प्रावधान शामिल है ताकि सांसद व राज्य विधान मण्डलों मे उन्हें प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सकें। इसके अतिरिक्त जनजातीय समुदायों के लिये सरकारी सेवाओं मे पदों का एक निश्चित प्रतिशत और शैक्षिक संस्थानों मे सीटों के आरक्षण के भी प्रावधान है।

उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों के पश्चात भी भारतीय जनजातियाँ विकास के हर चरण मे (सामाजिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक) पिछड़ी हुयी है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण जनजातियों का देश के विकास की मुख्य धारा से न जुड़ पाना है, जिसमें अन्य तमाम कारणों के साथ–साथ जनजातियों के स्वास्थ्य का अत्यधिक बुरा होना भी एक महत्वपूर्ण कारण है। स्वास्थ्य सम्बन्धी नाना प्रंकार की समस्यायें जनजातीय जनसंख्या को देश की समावेशी विकास की नीतियों से जोड़ने मे बाधित प्रतीत होती है। इनमें से कुछ समस्याऐं तो परिस्थिति सम्बन्धी कारणों से व कुछ वाह्य संस्कृतियों के सम्पर्क के

परिणामस्वरूप देखने को मिलती है। यह फैलने वाली बीमारियों जैसे–मलेरिया, तपेदिक, हैजा, चेचक, चर्मरोग, क्षयरोग व यौन रोग से अधिक ग्रसित होते है। इसी के साथ पर्यावरण सम्बन्धी कारकों से सम्बन्धित बीमारियों जैसे निमोनिया, विटामिन अथवा प्रोटीन की कमी से उत्पन्न बीमारियॉ आदि से भी अधिक प्रभावित होते है। यहॉ मूल भूत प्रश्न है कि जन स्वास्थ्य की आधुनिक सुविधाओं का कितना भाग जनजातियों तक पहुॅचा है ? भारत में समावेशी विकास के सपने को सत्य साकार करने के लिए जनजातीय समुदाय को उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित बुनियादी सुविधाऐं प्रर्याप्त रूपेण प्राप्त भी हो रही है अथवा नही ? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए जनजातियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का निम्न बिन्दुओं पर परीक्षण आवश्यक है।

संक्रमण एवं कुपोषण

जनजातीय लोगो का सामान्य स्वास्थ्य बुरा नही है परन्तु लगातार संक्रमण से उन्हें अक्सर बीमारियों का सामना करना पड़ता है। जनजातियों में सबसे अधिक मात्रा में जल संक्रामक रोग पाए जाते है। जिनसे बहुत से लोगों की मृत्यु हो जाती है। पीने के पानी की उपलब्धता की कमी इन रोगों का मुख्य कारण है जहॉ जल उपलब्ध है वहॉ दूर्षित एवं गन्दा है। फलतः अधिकतर लोग पेट–ऑत तथा चर्मरोगों, कालरा, पेचिश, अतिसार आदि का शिकार हो जाते है। [7] वर्तमान आकड़ो के अनुसार केवल 6.1 प्रतिशत लोगों के घरों में ही गन्दा पानी निकलने की नाली बनी हुई है। [8] यही कारण है कि देश में मलेरिया से होने वाली 60 प्रतिशत मौते यही होती है। [9] खनिज तथा अन्य तत्वों की कमी भी बीमारियों का कारण है। हिमालय क्षेत्र ने धेघा जैसी गले की बीमारी अधिक है। जिसका मुख्य कारण आयोडीन की कमी। पोशक तत्वों की कमी के कारण बहुत सी जन जातियों में क्षय रोग का अधिक्य है। कुष्ठ रोग एवं एड्स सम्पूर्ण भारत में व्याप्त है अतः जनजातियॉ भी इससे अछूती नही है। आन्ध्र प्रदेश के एजेन्सी क्षेत्रों, असम की मिकिर पहाड़ियों, पश्चिम बंगाल के बॉकुरा तथा पुरूलिया जिला, बिहार के संथाल परगना तथा उड़ीसा के मयूरभंज से पुरी तक इस रोग का बाहुल्य है। [10]

रक्ताल्पता या खून की कमी

जनजातीय समुदाय की दूसरी बड़ी चुनौती रक्ताल्पता है जिसके कारण जनजातियों में रोग प्रतिरक्षक शाक्ति की बहुत कमी पायी जाती है अतः ये लोग आसानी से किसी भी नई और बहुधा संक्रमण रोगों की चपेट में आ जाते हैं। वर्तमान में भारत की जनजातीय आबादी में खून की कमी तेजी से बढ़ी है। ओडिशा की आदिम जनजाति पौड़ी भुईया के भीतर 85 फीसदी रक्ताल्पता पाई गयी है। मध्यप्रदेश छत्तीसगढ़ के अबुझमरिया

जनजाति में 40 फीसदी, बिरहौर 29 फीसदी और बेगा में 42.2 फीसदी आबादी रक्ताल्पता का शिकार है।[11]

निर्धनता एवं अशिक्षा

जनजातीय स्वास्थ्य के शोचनीय स्तर के लिए बहुत हद तक उनकी निरक्षरता एवं निर्धनता भी जिम्मेदार है। आर्थिक समस्याओं के कारण जनजातीय लोग बहुधा स्वास्थ्य सेवाँ और शिक्षा प्राप्त नही कर पाते क्योकि इनकी आवश्यकता कहीं न कहीं मुद्राओं की मांग करती है इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए यह लोग ऋण लेते है और पीढ़ी दर पीढ़ी ऋणग्रस्तता की समस्या बनी रहती है। निम्न स्वास्थ्य के कारण व्यक्ति रोजगार न ही कर पाता जिससे निर्धनता बनी रहती है। निर्धनता एवं अशिक्षा के कारण बच्चे भी अधिक उत्पन्न होते है और वे भी मजदूरी करने की बाध्य होते है और उनका स्वास्थ्य भी निम्न स्तरीय ही बना रहता है।[12]

ऊपर से इन परिवारों में बच्चे भी अधिक उत्पन्न होते है। आदिवासी समाज की महिलाओं में अधिकाशतः प्रजनन दर अधिक पायी जाती है। 2011 की जनगणना के अनुसार राष्ट्रीय प्रजनन दर 2.3 है जबकि आदिवासी समुदाय में यह 3.12 है।[13] जनसंख्या बढ़ोतरी अथवा अधिक प्रजनन दर के पीछे मुख्य कारण अशिक्षा एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमों के प्रति उदासीनता है। इन समुदायों में शिक्षा का विकास राष्ट्रीय विकास की अपेक्षा अत्यधिक धीमा है जिसके लिए दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों में निवास करने के कारण स्कूल आदि की समुचित व्यवस्था न हो पाना, सरकारी स्कूलों में शिक्षा की अनुपस्थिति, बच्चों पर आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी का बोझ, शिक्षा व्यवस्था का प्रभावी न होना आदि है। हालॉकि सरकार इस दिशा में कदम उठा रही है पर कोई कदम प्रभावी दृष्टिगोचर नही है पा रहे है। तालिका नम्बर 1 व 2 द्वारा जनजातीय समुदायों की अशिक्षा एवं लिंगीय भेद का भली भांति अन्दाजा लगाया जा सकता है। यद्यिप इन समुदायों में पहले की अपेक्षा साक्षरता बड़ी है परन्तु राष्ट्रीय व अन्य वर्गो की अपेक्षा में यह अत्यधिक धीमी है।

तालिकाः 1

वर्ष	अनुसूचित जनजाति	राष्ट्रीय/आयवर्ग
कुल	63.1 प्रतिशत	72.8 प्रतिशत
महिला	54.4 प्रतिशत	64.0 प्रतिशत
पुरूष	71.7 प्रतिशत	81.1 प्रतिशत

स्त्रोत–एन एच एफ एस–3, 2005–06 [14]

तालिकाः 2

वर्ष	अनुसूचित जनजाति	राष्ट्रीय/आयवर्ग
2001	59.2 (34.8 प्रतिशत महिलाए)	75.3 प्रतिशत (53.7 महिलाए)
2011	68.5 (49.5 प्रतिशत महिलाए)	80.9 प्रतिशत (64.6 महिलाए)
महिला	54.4 प्रतिशत	64.0 प्रतिशत
पुरूष	71.7 प्रतिशत	81.1 प्रतिशत

स्त्रोत–जनसंख्या विभाग, 2011 [15]

जनजातीय स्वास्थ्य से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण सूचकांक

जनजातीय समुदाय के स्वास्थ्य स्तर को दर्शाने वाले कुछ महत्वपूर्ण सूचना कारको का वर्णन इस प्रकार है।

तालिकाः 3

क्रं0	सूचकांक	जनजाति	राष्ट्रीय
1.	शिशु मृत्युदर	62.1	5.7
2.	बाल मृत्यु दर	35.8	18.4
3.	गर्भ में मृत्यु दर	22.3	18.0
4.	पांच साल के मीटर मृत्यु दर	95.7	74.3
5.	अस्पतालों में प्रसूति	17.7	38.7
6.	स्वास्थ्य बीमा में भागीदारी	2.6	39.9
7.	खून की कमी एनीमिया	68.5	55.3

स्त्रोत–एन एफ एच एस–3, 2005–06 [16]

तालिका नं0–3 दर्शाती है की जनजातियों में शिशु–मृत्यु दर विशेषता 5 साल के भीतर होने वाली मृत्यु राष्ट्रीय दर की तुलना में काफी अधिक जिसका एक मुख्य कारण बच्चों

का टीकाकरण न होना है। इसके अतिरिक्त गर्भवती माता तथा नवजात की मृत्यु में घर पर ही कि जाने वाली प्रसूति भी अहम भूमिका निभाती है।

स्त्री पुरूष का अनुपातः

किसी भी समाज के स्वास्थ्य एवं सामाजिक संरचना का सबसे बड़ा पैमाना स्त्री पुरूष अनुपात होता है निम्नांकित तालिका यह दर्शाती है कि देश में 1000 पुरूषों पर 940 महिलाए है। जबकि अनुसूचित जनजाति में यह अनुपात 990 है। [17]

तालिकाः 4

वर्ष	अनुसूचित जनजाति	राष्ट्रीय/आयवर्ग
2011	990	940
2001	978	933
1991	972	927
1981	983	935
1971	982	930

स्त्रोत–जनसंख्या विभाग, 2011 [18]

जहॉ एक ओर तो महिलाओं के जीवन जीने के अधिकार के प्रति इतनी सजगता है तो वही दूसरी ओर बुनियादी सुविधाओं के अभाव में महिलाओं को अक्सर खराब स्वाथ्य का शिकार होना पड़ता है। ऑकड़े बताते है कि 10,42,81,034 (8.6 प्रतिशत) की आबादी में से केवल 1,12,62,206 ऐसे परिवार है जहॉ रसोई घर है और उनमें से केवल 12 प्रतिशत परिवार ही धुऑ रहित चूल्हे का प्रयोग करते है। 87.50 धुऑ छोड़ने वाले ईधन का प्रयोग करते है [19] परिणामतः टी0वी0 जैसे रोगों की चपेट में आसानी से आ जाते है। जनजातीय समुदाय की दूसरी बुनियादी असुविधा घर के बाहर शौच के लिए जाना है। आंकड़ों के अनुसार केवल 52,82,533 परिवारों के घर में ही शौचालय की सुविधा नही है। 1,80,46,572 परिवारों के घर में शौचालय की व्यवस्था नही है। [20] खुले में शौच अनेक प्रकार की बीमारियों को निमन्त्रित करता है। बाहर में शौच सुरक्षा की दृष्टि से खास करके महिलाओं के लिए अत्यन्त शोचनीय है। रसोई एवं शौच के

परम्परागत तरीके देश की जनजातीय आबादी को मुख्य धारा से जुड़ने में भी बाधित होते है।

मदिरापान एवं अन्य नशे की लत

जनजातीय लोगों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्याओं में नशीले पेय पदार्थों का सेवन भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। बाजरा, चावल तथा अन्य अनाज के दानें को सड़ाकर यह खुद ही पारम्परिक तरीके से घर पर ही मदिरा बना लेते है। जनजातीय लोगों में अफीम तथा अन्य औशधियों की लत भी एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है। अरूणाचल प्रदेश की सिंहफो जनजाति इसका ज्वलंत उदाहरण है। लगभग 150 वर्ष पूर्व इन लोगों की संख्या 40 हजार भी जो अब लगभग एक हजार रह गई है। नशे की लत लग जाने के कारण निर्धन जनजातीय लोग अपनी सम्पत्ति बेचते है या ऐसे समझौते करते है जिनमें शोषण निश्चित होता है। [21]

अंध विश्वास एवं गलत दृष्टिकोण

प्रायः जनजातीय लोग सरकारी चिकित्सालयों में कम ही आते है। इसका कारण जनजातियों की अपनी चिकित्सा पद्वतियॉ एवं उनका यह विश्वास है कि बीमारियॉ दैवी शाक्तियॉ, भूतप्रेतों के प्रकोप या किसी परम्परा या नियम उल्लधंन के कारण होती है और ऐसी बीमारियों का उपचार भी उसी प्रकार होना चाहिए। इसीलिए सुदूरवर्ती या दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों के अपने ओझा या जादूगर होते है। सभी उपचारों से निराश होकर ही यह लोग स्वास्थ्य कर्मचारियों से सम्पर्क करते है। साथ ही स्वास्थ्य कर्मचारियों तथा प्रशिक्षित नर्सों की कमी भी जनजातीय स्वास्थ्य की समस्या का एक महत्वपूर्ण पहलू है। धेवर कमीशन के अनुसार बीस वर्षो के लिए एक विशेष स्वास्थ्य सेवा का गठन करके इन समस्या का हल किया जा सकता है। स्थानीय लोगों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाय जिससे कि बीस वर्षों के बाद यही लोग अपने चिकित्सालयों को सुचारू रूप से चला सके। [22]

निष्कर्ष एवं सुझाव

देश का समावेशी विकास जनजातियों के स्वास्थ्य स्तर को बेहतर किये बिना नही किया जा सकता क्योकि स्वास्थ्य एवं सशक्तिकरण आपस में जुड़े हुए है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर आजादी के बाद से ही स्वास्थ्यगत नीतियों के अलावा भी अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रयास किए गये। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 1981 में अलग से जनजाति विकास योजना सेल बनाया। [23] इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वास्थ्य

नीति 1983 के अन्तर्गत जनजातियों के लिए खासतौर पर नीतिगत धोषणाएँ की गयी, साथ ही स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक, विनिमय नीड्स कार्यक्रम के अन्तर्गत आदिवासी जनसंख्या संरचना के अनुसार प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, वार्षिक चिकित्सा जांच, स्वास्थ्य कर्मियों की मोबाइल टीम का गठन, विशेष उपचार एवं त्वरित उपचार की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास किया है फिर भी जनजातीय लोगों की निर्धनता, कुपोषण, खून की कमी, भौगोलिक परिस्थिति, परम्परगत ढॉचा, अशिक्षा, सरकार द्वारा सही दृष्टिकोण की कमी, कार्यकर्ताओं तथा कर्मचारियो की समस्या, अपर्याप्त संचार व्यवस्था एवं दवाओं के वितरण से सम्बन्धित सफल नियमों का अभाव आदि के कारण इस क्षेत्र में निर्धारित सफलता प्राप्त नही हो पा रही हैं। जनजातीय समुदाय के लिए निम्नलिखित प्रयास अवश्य किये जाने चाहिए।

1. जनजातियों को स्वास्थ्य के बारे में जानकारी और स्वास्थ्य सुविधाओं तक उनकी पहुच बढ़ाने के लिए संगाठित यूनिवर्सल एक्सेस सिस्टम के तहत कार्य करना होगा। स्वास्थ्य सुविधाओं को सार्वभौमिक बनाने हेतु जगह–जगह दवाखाने खोले जाए तथा वहॉ सम्पूर्ण सुविधाएँ, प्रशिक्षित चिकित्साकर्मी, आवश्यक दवाए आदि उपलब्ध कराई जाये।
2. जनजातीय क्षेत्रों की भौगोलिक स्थितियों तथा दुर्गमता को ध्यान में रखते हुए सचल दवाखाने स्थिर दवाखानों से अधिक सफल होगें, इन चल अस्पतालों में डाक्टर, कर्मचारी एवं दवाओं की उपलब्धता होनी चाहिए। चल अस्पताल महीने में कम से कम एक बार इन क्षेत्रों में जाए उन्हे स्वास्थ्य सेवा प्रदान करें ताकि उनके स्वास्थ्य में सुधार हो सके।
3. जनजातियों को उनके स्वास्थ्य के प्रति जागरूक कराना आवश्यक है। आवश्यक है कि उन्हे भोजन की पौष्टिकता, पर्यावरण की सफाई पीने के पानी की शुद्धता के बारे में बताया जाये। आहार विशेषज्ञों द्वारा बच्चों, युवाओं, गर्भवती महिलाओं एवं वृद्ध नागरिकों की आहार सम्बन्धी जरूरतों को दर्शाने वाला चार्ट बनाना चाहिए तथा समय–समय पर इसकी जानकारी उनकी अपनी भाषा में दी जानी चाहिए जिससे कुपोषण एवं संक्रमण की समस्याओं को कम किया जा सके चलचित्रों तथा वीडियों कैसेटों की सहायता भी ली जा सकती है।
4. शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार भी इस दिशा में अत्यन्त आवश्यक है क्योकि एक शिक्षित व्यक्ति ही स्वास्थ्य के महत्व को भलीभांति समझ सकता है शिक्षित होने पर बहुत सी समस्याए स्वयं ही सुलझ जाएगी जैसे–जनजातियों का आधुनिक

चिकित्सा पद्धति एवं डाक्टरों में विश्वास बढ़ेगा साथ ही डॉक्टरो को भी इस बात की सलाह दी जाए कि वह स्थानीय ओझाओं और पुजारियों के बीच मैत्रीपूर्ण व्यवहार बढाएँ जिससे कि प्रतिद्वन्दता के स्थान पर मैत्री जन्म ले और लोगों को आधुनिक चिकित्सा प्रणाली का लाभ मिल सके।

5. एक सभ्य समाज का निर्माण बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता पर बहुत अधिक निर्भर करता है जनजातीय लोगों को खुलें में शौच और उससे होने वाले संक्रमण के बारे में बताना चाहिए साथ ही सरकार को भी इस बात का पूर्ण रूपेण निरीक्षण करना होगा कि सरकार द्वारा शौचालय बनवाने हेतु दी गयी धनराशि वास्तव में लोगो तक पहुँची है अथवा नही और यद्यपि पहुँची है तो उसका प्रयोग निर्धारित मद में हुआ है या नही।

6. जनजातियों के स्वास्थ्य स्तर को बेहतर बनाने के लिए राज्य सरकार, केन्द्र सरकार, गैर सरकारी संस्थाओं तथा स्वास्थ्य कर्मचारियों को मिलजुल कर प्रयास करना होगा। स्वास्थ्य की देखभाल के अधिकार को वास्तविक बनाने और देश के कोने–कोने में स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी प्रदान करने में स्वैच्छिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। जनजातीय समुदायों के लिए स्वैच्छिक संगठनों को अभी अधिक कर्मठ बनना होगा। इन संगठनों को सरकार द्वारा अच्छा काम करने पर प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए जिससें इन संगठनों की भागीदारी बढ़ सकें।

7. जनजातीय क्षेत्रों में अस्पतालों में भ्रष्टाचार बहुत अधिक व्याप्त है। अस्पतालों में भ्रष्टाचार को नियन्त्रित करने के लिए प्रत्येक चिकित्सा निदेशालय को सतर्क होना पड़ेगा। अस्पतालों से दवाइयों को बेचने और उनके स्थान पर नकली दवाइयॉ देने पर सख्त प्रतिबन्ध लगाए जाएँ एवं दोशियों के खिलाफ दंडात्मक कार्यवाही की जाए।

8. प्रशिक्षित डाक्टरों, नर्सो तथा अन्य कर्मचारियों को उनके दायित्वों के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए। सरकार को भी सभी स्वास्थ्य कर्मचारी जो कि जनजातीय क्षेत्रों में काम करते है उनके समुचित आवास, शिक्षा, मनोरंजन के साधनों एवं अन्य व्यवस्थाओं का अधिक ध्यान रखना चाहिए। अच्छा काम करने पर प्रोत्साहन के तौर पर इनाम आदि भी देते रहना चाहिए जिससे जनजातीय क्षेत्रों में जाकर काम करने की ललक बनी रहे।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते है कि जनजातीय समुदायों में (साक्ष्यों के अनुसार) बदलाव एवं अतीत की स्थितियों की निरन्तरता बनी हुई है।

कल्याणकारी राज्य की अवधारण ने आदिवासी समुदाय की सामाजिक भागीदारी तो बढ़ायी है, परन्तु इस बदलाव की गति अत्यधिक धीमी है। विशेष कर आदिम जनजातीय समुदायों में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। अधिकांशताः यह समुदाय आज भी बीमारियों से ग्रासित सामाजिक हाशियें पर है। यदि भारतीय लोकतंत्र को सही मायने मे सार्थक भागीदारी वाला बनाना है तो इसके ढ़ाचें मे समावेशी, समता मूलक एवं शोषण विहीन समाज की बुनियाद रखनी होगी। भातरीय जनता के सबसे निचले पायदान पर स्थित आदिवासियों का क्या होता है ? उनका आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षिक विकास किस प्रकार होता है ? उनका स्वास्थ्य कैसा है ? क्या वे अपना जीवन गरिमा के साथ जी पा रहे है ? इन प्रश्नों का उत्तर ढूढ़ना इसकी असली परीक्षा होगी। सरकार को भी मौजूदा नीतियों, कानूनों एवं योजनाओं की गहरी समीक्षा करके विकास के माडल को बदलना होगा। केवल एक स्वस्थ व्यक्ति ही अपने तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास में योगदान कर सकता है जब तक ऐसा मानकर सरकार, गैरसरकारी समूह एवं जनमानस स्वयं जनजातीय स्वास्थ्य को बेहतर करने के अभियान में भागीदारी नही लेगें तब तक स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार की सार्वभौमिक उपलब्धता केवल एक परिकल्पना मात्र ही बनी रहेगी।

* * * * *

सन्दर्भ :–

1. विश्वस्वास्थ्य संगठन का संविधान, *www.who.int/governance/eb/who-constitution,en.pdf,* accessedon20-09-2041
2. द राइट टू डेवलपमेन्ट एट अ ग्लान्स, *www.unorg/en/events/rightodevlopment/pdf/rtd-at-a-glancepdf*,accessedon22-9-2014
3. विजय कुमार यादव, "भारत में ग्रामीण स्वास्थ्य परिदृष्य", *कुरूक्षेत्र,* अक्टूबर 2008, पेज नं0 6
4. भारत की जनगणना 2011, *रजिस्ट्रार जनरल, गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया, 2011*
5. भारत की जनगणना 2011, *रजिस्ट्रार जनरल, गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया, 2011*
6. वर्जीनियस खाखा ''संवैधानिक प्राविधान, कानून और जनजातियाँ'' *योजना,* जनवरी 2014, पेज नं0 7

7. नदीम हसनैन, *समकालीन भारतीय समाज,* 2011, पेज नं0 285

8. भारत की जनगणना 2011, *रजिस्ट्रार जनरल, गर्वमेन्ट ऑफ इण्डिया, 2011*

9. न्यायमूर्ति वाई भास्कर राव, "स्वास्थ्य का अधिकारः समाज के समक्ष प्रमुख चुनौतिया", *नई दिशये,* राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, अंक 2, 2005, पेज नं0 21

10. नदीम हसनैन, वही, पेज नं0 285

11. नूतन मौर्या, "विकास की अवधारण एवं जनजातीयों का स्वास्थ्य", *योजना,* जनवरी 2014, पेज नं0 39

12. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, "गांवों में स्वास्थ्य सेवाओं का मूल्याकंन", *कुरूक्षेत्र,* अक्टूबर 2008 पेज नं0 11

13. नूतन मौर्या, वही, पेज नं0 39

14. ट्राइबल प्रोफाईल एट अ ग्लान्स, मई 2013, *tribal.nic.in/.../CMS/.../201306061001146927823STProfileataglance.pdf*.accessedon

15. *ट्राइबल प्रोफाईल एट अ ग्लान्स,* मई 2013, वही

16. *ट्राइबल प्रोफाईल एट अ ग्लान्स*, मई 2013, वही

17. *योजना*, जनवरी 2014, पेज नं0 39

18. *ट्राइबल प्रोफाईल एट अ ग्लान्स*, मई 2013, *tribal.nic.in/.../CMS/.../201306061001146927823STProfileataglance.pdf*.accessedon

19. *ट्राइबल प्रोफाईल एट अ ग्लान्स*, मई 2013, वही

20. *योजना*, जनवरी 2014, पेज नं0 39

21. *नदीम हसनैन*, वही, पेज नं0 287

22. *नदीम हसनैन*, वही, पेज नं0 287

23. डॉ0 रितु शाश्वत, "अनुसूचित जाति एवं जनजाति के स्वास्थ्य हेतु प्रयास", *कुरूक्षेत्र*, अक्टूबर 2008 पेज नं0 26

* * * * *

शैक्षिक प्रयास एवं जनजातीय विकास

*** डॉ. संतोष कुमार सिंह**

निरन्तर विकास किसी भी समाज के अस्तित्व के लिए एक आधारभूत आवश्यकता है जो कि सामाजिक इकाइयों के बीच स्पर्धा को जन्म देकर पारम्परिक समाज को जटिल समाज की ओर ले जाता है। कुछ समाजों में विकास की गति अति मंद होती है और कुछ में अत्यधिक तीव्र। जनजातीय समाज मंद गति से विकसित समाजों का ही स्वरूप है। जनजातीय विकास को संस्कृति के संदर्भ में देखा जाए तो जनजातीय संस्कृति इस समाज के लोगों के जीवन जीने का एक ढंग है और विकास इस जीवन जीने के तरीके में परिवर्तन लाने का एक प्रयास है।

जनजातीय क्षेत्रों में विकास की समस्या समाज के अन्य वर्गों से बुनियादी तौर पर भिन्न है। अन्य वर्गों का विकास जहां कुछ नये कार्यों के क्रियान्वयन से ही हो सकता है वहां जनजातियों का सर्वांगीण विकास इस बात पर निर्भर है कि जिन कारणों से जनजातीय क्षेत्र या समाज पिछड़ेपन से ग्रस्त हैं वे कारण किस सीमा तक समाप्त हुए हैं। जनजातियों के विषय में विकास के नये काम तभी लाभप्रद एवं जीवन को परिवर्तन करने वाले सिद्ध हो सकते हैं जब पिछड़ेपन के कारणों को पहले समाप्त किया जाए। ठक्कर बापा का कहना है, ''जनजातियों की समस्याओं का समाधान जनजातीय क्षेत्रों को पूर्णरूपेण या आंशिक रूप से देश के अन्य भागों से अलग करके नहीं हो सकता। वस्तुतः जनजातियों को देश के सभ्य समुदायों का एक अंश बनाया जाना चाहिए।'' [1]

ब्रिटिश काल में 18वीं शताब्दी से ही जनजातियों के विकास के लिए अनेक कार्य किए गए। जैसे– 1773 का क्लीवलैण्ड समझौता, 1976 का रेगुलेशन नम्बर–1, 1827 का रेगुलेशन, 1831 का रेगुलशन, 1833 का बंगाल अधिनियम, 1839 का

---

* **राजनीति विज्ञान विभाग, श्री अ.प्र.ब. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अगस्त्यमुनि (रुद्रप्रयाग), उत्तराखण्ड**

विल्किन्सन रेगुलेशन, 1855 का रेगुलेशन, 1874 का अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम, 1919 का भारत सरकार अधिनियम और 1935 का भारत सरकार अधिनियम।

इस प्रकार स्वतंत्रता से पूर्व जनजातीय विकास की दिशा में अंग्रेजों द्वारा किए गए महत्वपूर्ण प्रयास रहे किन्तु व्यक्तिगत हितों पर आधारित होने के कारण इन प्रयासों को ठोस गति नहीं मिल सकी। ये प्रयास जनजातीय क्षेत्रों में मात्र शांति और व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित रहे।

स्वतंत्रता के पश्चात् जनजातियों को राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा में जोड़ने के लिए अथक प्रयास किए गए हैं। इसके अन्तर्गत जनजातियों को संविधान के अन्तर्गत अनेक संरक्षण प्रदान किए गए है ताकि वे अपना सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक स्तर ऊंचा कर सके। भारतीय संविधान के अंतर्गत जनजातीय समाज को अनेक संवैधानिक प्रावधान दिए गए है। जैसे – अनुच्छेद 14, 15, 16, 16(4), 19(5), 23, 29, 46, 164, 243 (3), 244 (1), 244 (2), 275 (1), 330, 332, 335, 338, 339, 340, 342, 342 (1), 342 (2) और 366 (25) मुख्य हैं।

भारत सरकार द्वारा जनजातीय विकास के लिए समय–समय पर अनेक एतिहासिक कदम उठाए गए हैं। जैसे–1956 में जनजाति विकास प्रक्रिया के पांच मार्गदर्शी सिद्धान्त, 1958 में बहुउद्देशीय जनजातीय विकासखण्ड, 1961 में जनजाति विकासखण्ड, 1969 में जनजातीय विकास अभिकरण, 1974 में जनजातीय उपयोजना, 1987 में ट्रायफेड (जनजाति सहकारी विपणन विकास महासंघ) का गठन, 1993 में पंचायती राज व्यवस्था (73 वां संविधान संशोधन), 1996 में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1999 में जनजातीय कार्य मंत्रालय का गठन, 2001 में अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम की स्थापना, 2003 में अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना तथा 2006 में अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी (वन अधिकार को मान्यता) अधिनियम मुख्य हैं। इन प्रावधानों के अलावा प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में जनजातीय विकास के लिए कई योजनाएं भी संचालित की गई हैं।

विकासात्मक गतिविधियों के साथ–साथ मूल्यांकन एवं समीक्षा, विकास प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है। इस हेतु भारत सरकार द्वारा जनजातीय समस्याओं, प्रशासन तथा विकासात्मक गतिविधियों की समीक्षा हेतु अनेक समितियों का गठन किया गया। इन समितियों में मुख्य हैं– कालेलकर समिति (1955), रेणुका राय समिति (1959),

वेरियर एल्विन समिति (1960), यू0एन0 ढेबर समिति (1961), शीलू आओ समिति (1966), लोकुर समिति (1965), चंदा समिति (1967), ए0वी0 ठक्कर समिति (1971), अप्पू समिति (1971), एस0सी0दुबे समिति (1972), दिलीप सिंह भूरिया समिति (1995), बी0एस0 रेनके समिति (2008) एवं विर्जिनस समिति (2014) इसके अलावा भी जनजातीय क्षेत्रों में प्रशासनिक सुधार हेतु कई राज्य स्तरीय समितियां एवं उपसमितियां गठित की गई है।

भारत में जनजातियों के लिए किसी भी नीति–निर्माण की दुविधा यह है कि किस तरह से यह संतुलन बनाया जाए कि जनजातियों की पहचान, संस्कृति एवं मूल्यों का संरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य और आय सष्जन तक उनकी पहुंच सुनिश्चित की जाए जिससे उनका जीवन बेहतर हो सके। जनजातीय विकास के सम्बन्ध में नेहरू ने पांच सिद्धान्त दिए, जिन्हें पंचशील के नाम से जाना जाता है। ये सिद्धान्त हैं :–

- लोगों को उनकी अंतर्निहित क्षमताओं के अनुरूप विकसित होने देना चाहिए तथा उन पर हमें किसी भी विचार को थोपने की प्रवृत्ति को टालना चाहिए। हमें हर तरीके से उनकी कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए।
- जनजातीय समुदाय के भूमि एवं वन सम्बन्धी अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए।
- प्रशासन तथा विकास कार्यों के संचालन में उन लोगों की भागीदारी को बढ़ाना चाहिए।
- हमें इन क्षेत्रों की अति–प्रशासित या अधिसंख्य कार्यक्रमों से सरोबार नहीं करना चाहिए। हमें उनके स्वयं के सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थानों के माध्यम से काम करना चाहिए न कि प्रतिद्वन्दिता के साथ।
- हमें परिणामों का आकलन आकड़ों के जरिए या खर्च की गई धनराशि के रूप में नहीं बल्कि मानव चरित्र की गुणवत्ता के विकास के रूप में करना चाहिए।

उपरोक्त बिन्दुओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि जनजातीय विकास के पंचशील सिद्धान्त विकास के स्थाई एवं मार्गदर्शी सिद्धान्त है और आज भी विकासात्मक योजनाओं को लागू करते समय हमें इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

अनादिकाल से ही भारतीय समाज में विभिन्न प्रजातीय समूह निवास करती रही हैं। समय–समय पर भारत में विभिन्न समुदाय प्रवेश करते रहे और उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं की धाराओं में समाहित हो गए। इसके पश्चात् भी इनमें अनेक मानव समूह ऐसे थे जिन्होंने बाह्य सभ्यता के कुछ तत्वों को ग्रहण करने के पश्चात् भी अपनी मौलिक सांस्कृतिक विशेषताओं को नष्ट नहीं होने दिया। साधारणतः ऐसे समूहों को हम आदिवासी, वन्यजाति, आदिम जनजाति, अनुसूचित जनजाति आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। अनुसूचित जनजाति का पता लगाने की जो जरूरी विशेषताएं होनी चाहिए और जिनका पहली बार निर्धारण लाकुर समिति[3] द्वारा किया गया था, जो इस प्रकार हैं–

– आदिम जनजाति गुण;

– अनूठी संस्कृति;

– आम लोगो से सम्पर्क करने से कतराना;

– भौगोलिक अलगाव;

– पिछड़ापन।

सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि ऐसा समुदाय जो निश्चित भू–भाग पर रहने वाला आदिम समूह है, जो एक सामान्य भाषा, धर्म, प्रथा, परम्परा, व्यवसाय और अन्य सामाजिक नियमों के द्वारा एक सूत्र में बंधकर सामाजिक संगठन को जन्म देता है, अनुसूचित जनजाति कहलाता है।

भारतीय संविधान में जनजातियों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। संविधान के अनुच्छेद 366 (25) में कहा गया है कि ''अनुसूचित जनजातियों से तात्पर्य वैसे जनजातीय समुदाय से है जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत अनुसूचित जनजाति समझा जाता है।''[4] अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की पहचान के मामले में कहा गया हैः अनुच्छेद 342 (1) के अनुसार ''राष्ट्रपति किसी राज्य या केन्द्रशासित प्रदेश के सन्दर्भ में और राज्य के मामले में राज्यपाल से परामर्श के बाद जनजातियों या जनजातीय समुदायों या उसके समूहों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में अधिसूचित कर सकते हैं।''[5] यह अनुच्छेद जनजाति या उसके समूह को उनके राज्य/केन्द्रशासित प्रदेश में संवैधानिक संरक्षण उपलब्ध करवाकर, संवैधानिक हैसियत प्रदान करता है।

इस प्रकार अनुच्छेद 342 (1) के अनुसार केवल वे जनजातियां अनुसूचित जनजाति मानी जाएगी जिनके बारे में राष्ट्रपति प्रारम्भिक सार्वजनिक अधिसूचना के जरिए तत्सम्बन्धी घोषणा करेंगे। इस सूची में किसी प्रकार का संशोधन संसद कानून बनाकर अनुच्छेद 342 (2) के जरिए कर सकती है। संसद कानून बनाकर किसी भी जनजाति या जनजातीय समुदाय या उसके किसी समूह को अनुसूचित जनजातियों की सूची में जोड़ सकती या उसे हटा सकती है। यह आवश्यक नहीं कि किसी एक राज्य में अनुसूचित जनजाति घोषित समुदाय, किसी दूसरे राज्य में अनुसूचित जनजाति मानी जाए।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत 700 से अधिक (इनमें से कई, एक से अधिक राज्यों में है) जनजातियों को अधिसूचित किया गया है। ये देश के विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों में फैली हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि हरियाणा, पंजाब और केन्द्रशासित प्रदेश चण्डीगढ़, दिल्ली और पुडुचेरी में किसी भी समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में पहचान नहीं की गई है।

अनुसूचित जनजाति : जनसंख्या परिदृश्य

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 10.42 करोड़ है जो कि देश की कुल जनसंख्या का 8.60 प्रतिशत है। वर्ष 1961 से अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस तथ्य की पुष्टि तालिका–01 से हो रही है–

तालिका 01 – अनुसूचित जनजाति जनसंख्या में दशकीय वृद्धि दर

(करोड़ में)

वर्ष	कुल जनसंख्या	कुल अजजा जनसंख्या	कुल जनसंख्या में अजजा का प्रतिशत	दशकीय वृदि दर
1961	43.92	3.01	6.85	–
1971	54.82	3.80	6.94	26.2
1981	68.33	6.77	8.08	35.8
1991	83.86	6.78	8.10	31.2
2001	102.70	8.43	8.20	24.5
2011	121.05	10.42	8.60	23.7

स्रोत – भारत की जनगणना 2011, जनगणना निदेशालय, नई दिल्ली।

तालिका–01 से स्पष्ट है कि वर्ष 1961 से 1971 के बीच जनसख्या में दशकीय वृद्धि दर 26.2 प्रतिशत रही है। इसके अतिरिक्त 1971 से 1981 के बीच दशकीय वृद्धि दर 35. 8 प्रतिशत रही जो अब तक यानी वर्ष 2011 तक में उच्च है। वर्ष 1991 से लगातार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या वृद्धि दर में निरन्तर गिरावट आ रही है। दूसरी तरफ वर्ष 2001 से 2011 के बीच सबसे कम अर्थात् 23.7 प्रतिशत की दशकीय वृद्धि हुई है।

अनुसूचित जनजाति : साक्षरता दर

वर्ष 2001 से 2011 की अवधि के दौरान भारत में कुल जनसंख्या का साक्षरता दर 64. 84 प्रतिशत से बढ़कर 74.04 प्रतिशत हुई जबकि अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता दर 47.10 प्रतिशत से बढ़कर 58.95 प्रतिशत हुई। इसी अवधि के दौरान अनुसूचति जनजातियों के पुरूषों के बीच साक्षरता दर 59.17 प्रतिशत से बढ़कर 68.50 प्रतिशत हुई और अनुसूचित जनजातियों महिलाओं की साक्षरता दर 34.76 प्रतिशत से बढ़कर 49.40 प्रतिशत हुई। अनुसूचित जनजातियों में महिला साक्षरता सामान्य जनसंख्या की समग्र महिला साक्षरता की तुलना में वर्ष 2001 में 18.91 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011 में 16.06 प्रतिशत हो गई।

वर्ष 1961 में अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर 8.53 प्रतिशत थी, जो वर्ष 2011 में 58.95 प्रतिशत हो गई जबकि कुल जनसंख्या में समानुरूपी वृद्धि वर्ष 1961 में 28.30 प्रतिशत की तुलना में 74.04 प्रतिशत हुई। इस तथ्य की पुष्टि तालिका–02 से हो रही है–

तालिका–02 : अनुसूचित जनजातियों तथा सभी सामाजिक समूहों में साक्षरता

(प्रतिशत में)

वर्ष	अनुसूचित जनजातियां			सभी सामाजिक समूह		
	पुरूष	महिला	कुल	पुरूष	महिला	कुल
1961	13.83	3.16	8.53	40.40	15.35	28.30
1971	17.63	4.85	11.30	45.96	21.97	34.45
1981	24.52	8.04	16.35	56.38	29.76	43.57
1991	40.65	18.19	29.60	64.13	39.29	52.21
2001	59.17	34.76	47.10	75.26	51.67	64.84
2011	68.50	49.40	58.95	82.14	65.46	74.04

स्रोत – भारत की जनगणना 2011, जनगणना निदेशालय, नई दिल्ली।

वर्ष 2001 से 2011 के बीच अनुसूचित जनजाति जनजाति की साक्षरता दर में 11.85 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि समान अवधि के दौरान कुल आबादी की साक्षरता दर में 9.20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अनुसूचित जनजाति के महिला–पुरूष का साक्षरता दर का अन्तर वर्ष 2001 में 24.41 प्रतिशत से घटकर वर्ष 2011 में 19.10 प्रतिशत हुआ दूसरी तरफ भी कुल जनसंख्या के महिला–पुरूष का साक्षरता दर का अन्तर वर्ष 2001 में 21.59 प्रतिशत से घटकर 2011 में 16.68 प्रतिशत हुआ।

अनुसूचित जनजाति में शिक्षा

शिक्षा न केवल दक्षता बढ़ाने का साधन है बल्कि यह लोकतन्त्र में भागीदार बनाने तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की समग्र गुणवत्ता के स्तर को भी सुधारने का एक कारगर साधन है। दूसरी तरफ अनुसूचित जनजाति में शैक्षिक सुधार आशाओं के अनुरूप नहीं हुआ है। इस बात को ध्यान में रखते हुए सरकार शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने का भरसक प्रयास कर रही है। भारत सरकार ने शिक्षा के माध्यम से अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए अनेक कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया है, जिनका विवरण निम्न है–

- **छात्रों और छात्राओं के लिए छात्रावास**

अनुसूचित जनजाति के छात्राओं के छात्रावासों के निर्माण की योजना तीसरी योजना अवधि के दौरान शुरू की गई थी। अनुसूचित जनजाति लड़कों के लिए छात्रावासों के निर्माण की एक अलग योजना 1989–90 से शुरू की गई थी। दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान दोनों योजनाओं को एक योजना में मिला दिया गया था। वित्त वर्ष 2008–09 से योजना को संशोधित कर दिया गया है।

योजना का मुख्य उद्देश्य ऐसे जनजातीय विद्यार्थियों को छात्रावास आवास देकर जनजातीय विद्यार्थियो के बीच साक्षरता को बढ़ावा देना है, जो अपनी खराब आर्थिक स्थिति और अपने गांवों की दूर–दराज की अवस्थिति के कारण अपनी शिक्षा को जारी रखने मे असमर्थ होते है। इस योजना के अन्तर्गत नये छात्रावास भवनों के निर्माणों अथवा मौजूदा छात्रावासों के विस्तार के लिए राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को केन्द्रीय सहायता दी जाती है। संशोधित योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारें सभी लड़कियों के छात्रावासों तथा नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में लड़कों के छात्रावासों के निर्माण हेतु 100 प्रतिशत केन्द्रीय हिस्सा के पात्र है। अन्य लड़को के छात्रावासें के लिए निधियन प्रणाली 50:50 आधार पर है। संघ राज्य क्षेत्रों के मामले में केन्द्र सरकार लड़कों और लड़कियों

दोनों के छात्रावासों के निर्माण की सम्पूर्ण लागत वहन करती है। छात्रावास का रख–रखाव राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों की जिम्मेदारी है। छात्रावास मिड़िल, सेकेण्डरी, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के लिए हो सकती है। श्वित्तीय वर्ष 2014–15 के दौरान 70.00 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया।

- **आश्रम विद्यालयों की स्थापना**

यह योजना जनजातीय उपयोजना राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में वर्ष 1990–91 से चल रही है। इसका उद्देश्य अनुसूचित जनजातियों हेतु सीखने के लिए प्रेरक वातावरण में उन्हें आवासीय विद्यालय प्रदान करना ताकि जनजातीय विद्यार्थियों में साक्षरता दर को बढ़ाया जा सके और उन्हें देश के अन्य जनसंख्या के समतुल्य लाया जा सके। योजना को वित्तीय वर्ष 2008–09 से संशोधित किया गया है। संशोधित योजना के अर्न्तगत केन्द्र सरकार लड़कियों के सभी आश्रम विद्यालये तथा नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में लड़को के आश्रम विद्यालय के निर्माण के लिए 100 प्रतिशत केन्द्रीय हिस्सा प्रदान करती है। अन्य लड़कों के आश्रम विद्यालयों के लिए निधियन प्रणाली 50:50 आधार पर है। संघ राज्य क्षेत्रों में केन्द्र सरकार लड़को और लड़कियों दोनों के छात्रावासों के निर्माण की सम्पूर्ण लागत वहन करती है। यह योजना 22 राज्यों और 2 संघ राज्य क्षेत्रों में फैले हुए देश के सभी जनजातीय उपयोजना क्षेत्रों को कवर करती है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के दौरान 65.00 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया।

- **मैट्रिकोत्तर छात्रवृति योजना (पीएमएस)**

यह योजना 1944–45 से चल रही है। इस योजना का उद्देश्य मैट्रिकोत्तर पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। योजना विभिन्न स्तरों पर व्यावसायिक तकनीकी और उसी प्रकार विभिन्न स्तरों के गैर–व्यावसायिक और गैर–प्रौद्योगिकी पाठ्यक्रमों को कवर करती है। साथ ही साथ इसमें दूरस्थ और सतत् शिक्षा सहित पत्राचार पाठ्यक्रम शामिल हैं। इस योजना को 01.07.10 से संशोधित किया गया है। योजना के तहत अभिभावकों/संरक्षकों की वार्षिक आय वित्तीय वर्ष 2013–14 से 2.50 लाख रूपये निर्धारित की गई है। इसके तहत राज्य सरकार और संघ राज्य क्षेत्र को 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता दी जाती है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के दौरान 747.50 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया।

● **पुस्तक बैंक**

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में चुने गए अनुसूचित जनजाति के अनेक छात्रों के लिए अपने विषयों की पुस्तकें उपलब्ध न होने के कारण शिक्षा जारी रखना कठिन होता है क्योंकि वे अधिकांशतः महंगी होती है। व्यावसायिक संस्थानों/विश्वविद्यालयों में अनुसूचित जनजाति के छात्रों द्वारा पढ़ाई कर जाने की दर कम करने के लिए इस योजना के अर्न्तगत पुस्तकें खरीदने के लिए पुस्तकें प्रदान की जाती हैं। यह योजना अनुसूचित जनजाति के उन सभी छात्रों के लिए खुली है जो मेडिकल (मेडिसिन और होमियोपैथी की भारतीय प्रणालियों सहित), इंजीनियरिंग, कृषि, पशु चिकित्सा, पॉलीटेक्नीक, कानून, चार्टर्ड एकाउंटेंसी, व्यापार प्रबन्धन, जैव विज्ञान विषय में पढ़ते हैं और जो मैट्रिकोत्तर छात्रवषति प्राप्त कर रहे हैं। यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है और व्यय केन्द्र और राज्य के बीच 50:50 के अनुपात में बांटे जाते हैं। तथापि, संघ राज्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में 100 प्रतिशत अनुदान दिए जाते हैं।

● **प्रतिभा उन्नयन**

यह योजना जो पहले अलग योजना के रूप में चल रही थी, दसवीं पंचवर्षीय योजना में मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति योजना में विलय कर दी गई है। तब से यह मैट्रिकोत्तर छात्रवृति योजना की उपयोजना के रूप में कार्य कर रही है। वित्त वर्ष 2008–09 से संशोधन कर दिया गया है।

अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों की प्रतिभा के उन्नयन के लिए कक्षा 9–12 तक में उपचारात्मक एवं विशेष कोचिंग विभिन्न विषयों में कमियों को दूर करने के विचार से प्रदान की जा रही है। तकनीकी एवं प्रशासनिक जैसे पेशेवर पाठ्यक्रमों में प्रवेश चाहने हेतु प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए विद्यार्थियों को तैयार करने के लिए विशेष कोचिंग प्रदान की जाती है। यह योजना राज्यों और संघ राज्य को 100 प्रतिशत केन्द्रीय सहायता प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत प्रति विद्यार्थी 19,500 रूपये का अनुदान पैकेज दिया जाता है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 1.50 करोड़ रूपये का आबंटन किया गया।'

● **विदेश में उच्चतर अध्ययन के लिए राष्ट्रीय समुद्रपारीय योजना**

यह एक गैर योजना थी जो 1954–55 से चल रही है। विदेश में शिक्षा के लिए राष्ट्रीय छात्रवृति की इस योजना को वर्ष 2007–08 से संशोधित किया गया है। इस योजना का

उद्देश्य केवल इंजीनियरिंग, प्रौद्यौगिकी तथा विज्ञान के विशिष्ट क्षेत्रों में उच्चतर अध्ययन मास्टर्स, पी0एच0डी0, पोस्ट डाक्टोरल तथा अनुसंधान कार्य कर रहे अनुसूचित जनजातीय छात्रों को सहायता प्रदान करना है। इस योजना के तहत अधिकतम 17 अनुसूचित जनजाति और 3 आदिम जनजाति समूह के उम्मीदवारों को वार्षिक छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। उम्मीदवार या उसके माता–पिता या अभिभावक की कुल आय 2013–14 से 6.00 लाख रूपये प्रति वर्ष से अधिक न हो। स्नातक स्तर के पाठ्यक्रमों में पढ़ रहे छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान नहीं की जाती है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 1.00 करोड़ रूपये आवंटित किए गए है।'

● **राजीव गांधी राष्ट्रीय अध्येतावृत्ति (आरजीएनएफ)**

यह योजना वर्ष 2005–06 से आरम्भ की गई। इस योजना के तहत एम.फिल और पी. एच.डी. जैसे उच्चतम अध्ययन करने के लिए अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों के लिए अध्येतावृत्ति प्रदान की जाती है। अध्येतावृत्ति की अधिकतम अवधि 5 वर्ष है। प्रत्येक वर्ष अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों को 667 अध्येतावृत्ति प्रदान करने का प्रावधान है। यह योजना जनजातीय कार्य मन्त्रालय की ओर से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा कार्यान्वित की जा रही है। योजना के तहत कोई भी अनुसूचित जनजाति, विद्यार्थी जिसने यूजीसी के मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर परीक्षा पास की है, आवेदन कर सकता है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 80.00 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया है।'

● **उच्च श्रेणी शिक्षा छात्रवृत्ति**

जनजातीय कार्य मंत्रालय ने वर्ष 2007–08 में अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों के लिए उच्च श्रेणी शिक्षा छात्रवृत्ति की नई योजना शुरू की है। इस योजना का उद्देश्य प्रतिभाशाली अनुसूचित जनजाति छात्रों के संस्थानों की चुनिंदा सूची में से किसी एक में, जिसमें छात्रवृत्ति योजना चालू होगीय स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करना है। इस योजना के अर्न्तगत 213 सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएं हैं जिनमें प्रबन्धन, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, कानून और वाणिज्यिक पाठ्यक्रम हो रहे हैं। प्रति वर्ष 625 छात्रवषत्तियां पांच वर्षों के लिए दी जाती है। वित्तीय वर्ष 2013–14 से जनजाति विद्यार्थी की सभी स्त्रोतों से पारिवारिक आय 4.50 लाख प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 12.75 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया है।'

● मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति

मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति योजना कक्षा 9 और कक्षा 10 में पढ़ने वाले अनुसूचित जनजातियों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान करने के लिए है। कक्षा 9 तथा 10 में अध्ययनरत अपने बच्चों की शिक्षा के लिए अनुसूचित जनजाति बच्चों के माता–पिता को समर्थन देना ताकि ड्राप आउट (विद्यालय छोड़ना) की घटना, विशेष रूप से प्राथमिक से माध्यमिक स्तर की तक, की कम से कम किया जाए। साथ ही मैट्रिक पूर्व स्तर की 9 और 10 कक्षाओं में अनुसूचित जनजाति बच्चों की भागीदारी को सुधारना ताकि वे बेहतर परिणाम सामने लाएं और इन्हें शिक्षा के मैट्रिकोत्तर स्तर पर पहुंचने का बेहतर मौका मिले। यह एक केन्द्रीय प्रायोजित योजना है जिसमें 100 प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार वहन करती है। योजना उन सभी अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों को कवर करती है जिनके माता–पिता की वार्षिक आय 2.00 लाख रूपये से अधिक नहीं है। यह योजना राज्य सरकारों एवं संघ शासित प्रदेशों के माध्यम से कार्यान्वित की जाती है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 79.00 करोड़ रूपये आवंटित किए गए हैं।'

● कम साक्षरता वाले क्षेत्रों में जनजाति बालिकाओं की शिक्षा

जनजाति महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि करने के उद्देश्य से वर्ष 1992–93 से कक्षा पहली से पांचवीं तक की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना की गई। इस योजना का कार्यान्वयन राज्य सरकार के स्वायत्तशासी निकायों और स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से किया जाता है। वित्तीय वर्ष 2008–09 में इस योजना को संशोधित किया गया है। इस योजना का उद्देश्य चिन्हित जिलों में जनजातीय लड़कियों का 100 प्रतिशत नामांकन सुनिश्चित करना, विशेषकर नक्सल प्रभावित क्षेत्रों के निवास स्थानों में। शिक्षा के लिए अच्छा माहौल बनाकर प्रारम्भिक स्तर पर बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वालों में कमी करके सामान्य महिला जनसंख्या तथा जनजातीय महिलाओं के बीच साक्षरता स्तर के अन्तर को पूरा करना है। इस योजना में वैसे क्षेत्रों जहां पांच किमी0 की दूरी के भीतर विद्यालय नहीं है, वहां विद्यालय एवं छात्रावास की सुविधा उपलब्ध कराकर अनुसूचित जनजाति की लड़कियों हेतु विद्यालय शिक्षा उपलब्ध कराये जाने पर बल दिया गया है। यह योजना 54 चिन्हित जिलों को कवर करती है, जहां 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति जनसंख्या 25 प्रतिशत या उससे अधिक है तथा अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता 35 प्रतिशत से कम है। निःशुल्क शिक्षा के साथ ही जनजाति बालिकाओं को आवास, पुस्तकें, भोजन का पैसा और इनसेंटिव दिया जाता है। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 35.00 करोड़ रूपये का आवंटन किया गया है।'

● **निःशुल्क कोचिंग व्यवस्था**

अनुसूचित जनजातियों को कोचिंग योजना चौथी पंचवर्षीय योजना से आरम्भ की गई है। इस योजना को वित्तीय वर्ष 2007–08 से संशोधित किया गया है। योजना का उद्देश्य वंचित परिवारों और उपेक्षित परिवेश की अनुसूचित जनजातियों के लिये सामाजिक और आर्थिक रूप से सुदृढ़ पृष्ठभूमि से आये लोगों के साथ प्रतियोगिता करना कठिन होता है। इसलिए जनजातीय कार्य मंत्रालय ने गुणवत्ता कोचिंग संस्थानों में वंचित अनुसूचित जनजाति के प्रत्याशियों को कोचिंग प्रदान करने के लिए बढावा दिया जाता है ताकि वे प्रतियोगी परिक्षाओं में बैठ सके और सिविल तथा सार्वजनिक क्षेत्र में उपयुक्त नौकरी पा सके। प्रत्याशी की आय सीमा (अपनी स्वयं की आय/माता–पिता की आय, यदि उन पर निर्भर है) वित्त वर्ष 2013–14 से 2.50 लाख रूपये से अधिक नहीं होनी चाहिए। 'वित्तीय वर्ष 2014–15 के लिए 45.00 करोड़ रूपये अनुसूचित जनजाति की निःशुल्क कोचिंग के लिए आवंटित हुए।'

समस्याएं और सुझाव :

- जनजातियों की शिक्षा के धीमें विकास का एक महत्वपूर्ण कारण है, उपयुक्त शिक्षकों की कमी। अधिकतर गैर–जनजातीय शिक्षक जो कि जनजातीय बच्चों को पढ़ाते हैं, उनके जीवन मूल्यों तथा रहन–सहन को हेय दृष्टि से देखते हैं। इस कमी को दूर करने के लिए शिक्षकों को वहां के जीवन और संस्कृति के बारे में विस्तृत जानकारी होनी चाहिए तथा और वहां की भाषा का ज्ञान भी आवश्यक रूप से होना चाहिए। यदि संभव हो सके तो जनजातीय समुदायों से ही शिक्षकों का चयन किया जाना चाहिए या शिक्षकों का एक पृथक समूह बनाना चाहिए जो जनजातीय क्षेत्रों में जाकर उनकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।
- भाषा जनजातीय शिक्षा के विकास में एक बड़ी बाधा है। अधिकतर जनजातीय भाषाएं मौखिक हैं; जिनकी कोई लिपि नहीं हैं। अधिकतर राज्यों में जनजातियों तथा गैर जनजातीय को एक ही क्षेत्रीय भाषा में शिक्षित किया जा रहा है। जिसके कारण अधिकतर जनजातियों में शिक्षा के प्रति रूचि कम हो गई है। आवश्यकता इस बात की है कि जनजातीय समुदाय को उनकी मातृभाषा में ही शिक्षा दी जानी चाहिए।
- शैक्षिक पाठ्यक्रम में औपचारिक शिक्षा का अभाव पाया जाता है, जिस कारण जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा कर स्तर निम्न है। अतः एक ऐसे पाठ्यक्रम तथा प्रणाली

की संरचना होनी चाहिए जो जनजातीय परम्पराओं, स्थानीय आवश्यकताओं तथा राष्ट्रीय शिक्षा योजना में संतुलन स्थापित कर सके।

- जनजातीय समुदायों के निवास स्थानों के कारण भी शिक्षा का विकास धीमा रहा है। अधिकतर जनजातीय ग्राम दूर–दूर हैं तथा स्कूलों तक पहुंचने के लिए उन्हें लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है। ग्रामों के निकट तथा स्थानीय लोगों की स्वीकृति से स्कूल खोले जाने की स्थिति में शिक्षा योजना सफल हो सकती है।
- अधिकांश जनजातीय छात्रावासों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव है, भवनों का रख–रखाव अच्छी तरह से नहीं किया जाता है और राज्यों से समुचित/पूर्ण प्रस्ताव पास न होने के कारण छात्रावास भवनों के निर्माण कार्य में व्यवधान पड़ता है; जिससे शिक्षा भी प्रभावित होती है। छात्रों की बुनियादी सुविधाओं और उनके रख–रखाव में लगातार सुधार करने की जरूरत है।
- जनजातियों द्वारा शिक्षा की ओर कम ध्यान देने के पीछे आर्थिक परिस्थितियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अधिकतर जनजातीय परिवार इतने निर्धन हैं कि वे लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते। अधिकतर जनजातियों को खाने के लिए पर्याप्त भोजन तक उपलब्ध नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में ये लोग शिक्षा की बात सोच भी नहीं सकते है। इस कमी को दूर करने के लिए मनरेगा जैसी योजनाओं को और भी अधिक कारगर तरीके से लागू करना चाहिए जिससे जनजातीय समुदाय के बच्चे शिक्षा का समुचित लाभ उठा सके।
- यह भी देखने में आया है कि जनजातीय स्कूलों में पाठ्यपुस्तकें या तो प्रदान ही नहीं कराई जाती है या सत्र आरम्भ होने के काफी बाद प्रदान कराई जाती है, जिससे शिक्षा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे वह उद्‌देश्य हल नहीं हो पाता जिसके लिए इन विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तकें निःशुल्क दी जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि समय से जनजातीय समुदाय के बच्चों की पुस्तकें वितरित करवाई जाए जिससे वे शिक्षा के प्रति गंभीर बने।
- अधिकांश जनजातियां ऋण के बोझ से दबी है और साहुकारों के शोषण के शिकार हैं जिससे जनजातीय समाज में शिक्षा का स्तर शोचनीय है। जनजातीय व्यक्ति के लिए दिन–प्रतिदिन यह चिन्ता सताती रहती है कि उनके ऋण का बोझ कब कम होगा। ऋणग्रस्तता को समाप्त करने के लिए सरकार को दोहरी नीति का पालन करना चाहिए। एक ओर साहकारों के चंगुल से मुक्ति दिलाने के लिए जनजाति को दीर्घकालीन ऋण प्रदान करने चाहिए तथा उनकी आर्थिक स्थितियों

में सुधार लाकर उन्हें ऋण वापस करने में सक्षम बनाना चाहिए। यदि ईमानदारी और समर्पण की भावना से ऐसा किया गया तो निश्चित रूप से जनजातीय लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार आएगी और शिक्षा का स्तर भी सुधारेगा।

- जनजातीय क्षेत्रों में विभिन्न स्वयंसेवी संस्थाएं एवं धार्मिक संगठन अपने–अपने ढंग से शिक्षण संस्थाएं चलाती है जिसने जनजातीय समुदाय को ऊहापोह और असमंजस की स्थिति में डाल दिया है। अतः सरकार को चाहिए कि या तो इन शिक्षण संस्थाओं को अपने हाथ में ले या फिर इन्हें एक समान शिक्षा पद्धति लागू करने को बाध्य करे।
- किसी समाज के उत्थान में महिलाओं का योगदान बहुत महत्वपूर्ण होता है, जिस समाज की महिलाएं जितनी अधिक साक्षर होगी उतना ही वह समाज प्रगति की ओर उन्मुख होगा। दुर्भाग्य से जनजातीय महिलाओं में शिक्षा का पूर्णतया अभाव है। प्रायः महिलाओं की शिक्षा के प्रति कोई रूचि नहीं हैं। इसका कारण आर्थिक–सामाजिक दोनों हैं। जनजातियों में महिलाएं अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग होती हैं। वे घर में भोजन सामग्री इकट्ठा करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। यदि वे अपना समय शिक्षा में लगाती है तो यह उनके घरेलू व्यवस्था पर प्रभाव डालेगा। अतः इनके लिए ऐसे समय का निर्धारण करना होगा जिससे उनकी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव न पड़े जो सांयकालीन ही हो सकती है। उनकी शिक्षा का व्यावहारिक होना भी अति आवश्यक है, जो उनके आम उपयोग में आ सके।

मूल्यांकन

केन्द्र सरकार समय–समय पर जनजातियों के शैक्षणिक विकास हेतु गंभीरता से प्रयास कर रही है किन्तु पूर्णतः वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे है। इसमें सबसे बड़ी बाधा है जनजातियों में अलगाव की भावना। चूंकि जैसा हम जानते है कि जनजातियों का रहन सहन एक भिन्न भौगौलिक वातावरण में होता है। इसलिए वे शिक्षा प्रसार के प्रयासों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और मन से नहीं अपनाते है। जनजातीय समुदाय प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियों में स्थित होने के कारण जनजातियों को शिक्षित करने का काम अत्यधिक खर्चीला होता है। बिजली और दूरसंचार की सुविधाओं की कमी के कारण उपग्रह आधारित शिक्षा इन तक नहीं पहुंच पाती। घुमंतू जनजातियों के लिए, शिक्षा की व्यवस्था करना अपने आप में चुनौती पूर्ण कार्य है। आवश्यकता इस बात की है कि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा को अधिक व्यावहारिक और क्रियान्मुख बनाया जाना चाहिए जिससे शिक्षित जन शक्ति का प्रयोग जनजातीय विकास को सही दिशा

देने में किया जा सके। शिक्षा व साक्षरता के पाठ्यक्रमों को इस प्रकार बनाया जाए कि इससे जनजातियों की रोजी–रोटी का समाधान हो सके। अतः सरकार सहित हम सभी का पुनीत कर्तव्य है कि हम इन लोगों को शिक्षा के माध्यम से जागरूक बनाएं ताकि वे सभ्य जीवन से अवगत हो सके। ऐसा करने पर ही ये लघु समाज अपनी विशेषताओं को लिए हुए राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ सकेंगे तथा समाज में फैली हुई बुराइयों और कुरीतियों को दूर करने में सहयोग कर सकेंगे। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जनजातीय समुदाय भारतीय समाज, संस्कृति और राष्ट्र की अभिन्न इकाई है। उनकी समस्याओं के विवेकपूर्ण समाधान के बिना राष्ट्रीय एकता का स्वप्न साकार नहीं हो सकता।

* * * * *

सन्दर्भ सूची

1. बापा, ठक्कर, उद्धृत योगेश अटल, 'आदिवासी भारत', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2011, पृष्ठ संख्या–122.
2. नेहरू, पण्डित जवाहर लाल, उद्धश्त वेरियर एल्विन, 'ए फिलॉसफी फॉर नेफा', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई, 1960, प्रस्तावना.
3. वार्षिक रिपोर्ट 2013–14, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या–31.
4. भारत का संविधान (पॉकेट एडिशन), सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या–217.
5. भारत का संविधान, (पॉकेट एडिशन), सेण्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2011, पृष्ठ संख्या–198.
6. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
7. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
8. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).

9. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
10. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
11. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
12. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
13. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
14. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).
15. जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा जारी बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–17) के दौरान स्वीकृत व्यय (www.tribal.nic.in).

* * * * *

खण्ड – तीन

स्त्री सशक्तीकरण, मीडिया एवं मानवाधिकार

महिलाओं के मानवाधिकार उल्लंघन पर न्यायपालिका की भूमिका

* ज्ञानेन्द्र कुमार शर्मा
** प्रणव वशिष्ठ

अधिकांशतः महिलाओं की पुरूषों पर निर्भरता आधुनिक युग का तथ्य नहीं है, बल्कि यह प्राचीन प्रथाओं, परम्पराओं एवं विश्वासों से परिलक्षित होता है। प्राचीन परम्पराओं के अनुसार परिवार में महिला को सबसे बाद में सोना चाहिए, सबसे पहले उठ जाना चाहिए एवं कम खाना खाकर 24 घण्टे कार्य में व्यस्त रहना चाहिए। यह सही है कि यह मान्यता कुछ हद तक समाप्त हो चुकी है, किन्तु महिलाओं के विरूद्ध होने वाले सामाजिक अत्याचारों, घरेलू हिंसा एवं योन हिंसा आदि से महिलाओं को निजात नहीं मिली है। इन हिंसओं को रोकने के लिए विधायिका एवं कार्यपालिका की भूमिका तो संदिग्ध रही ही है, बल्कि, कुछ हद तक न्यायपालिका भी इस सम्बन्ध में अपने दायित्वों का निर्वहन करने में असफल रहती प्रतीत होती है। यदि जिला स्तरीय न्यायालयों की तरफ ध्यान आकर्षित किया जाय, तो वे अपनी तकनीकी एवं पारंपरिक कार्यशैली के आधार पर काम करने के कारण महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों एवं मानवाधिकारों के उल्लंघन पर त्वरित निर्णय नहीं कर पाते हैं। इसका दुष्प्रभाव यह है कि यौन अत्याचार से पीड़ित महिला को ही लम्बे समय तक वाद लंबित रहने एवं न्यायालय में स्वच्छ वातावरण न होने के कारण कष्ट भोगने पड़ते हैं तथा एक तरह से सज़ा उसी को मिलती है। जनपदीय न्यायालयों को महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों से सम्बन्धित वादों को त्वरित एवं वर्तमान विधि के अन्तर्गत वैज्ञानिक एवं आधुनिक तरीकों से निस्तारित करना चाहिए।

---

* निदेशक, उत्तराखण्ड न्यायिक एवं विधिक अकादमी, भवाली, नैनीताल।
** अध्येता, विधि विभाग, पंजाब वि0वि. चंड़ीगढ

समस्या– जन्म से पूर्व ही भ्रूण हत्या कर महिलाओं के प्रति विपरीत एवं जटिल सोच परिलक्षित हो जाती है। प्रमुख समस्या यही है कि क्या महिला या भारतीय नारी एक व्यक्ति है[1]? व्यक्ति का तात्पर्य यह होता है कि उसे समाज एवं विधि द्वारा प्रदत्त समस्त अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्वाह करने का अवसर विधि द्वारा प्रदान किया गया हो तथा उन अधिकारों एवं कर्तव्यों का उपयोग उसके द्वारा किया गया हो। यदि महिलाओं के अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों की तरफ ध्यान आकर्षित किया जाय, तो 'भारत का संविधान' व अन्य विधियों द्वारा अधिकारों का वर्णन तो किया गया है परन्तु वास्तव में वो अधिकार महिलाओं को प्राप्त नहीं हैं तथा महिला एक वस्तु या सामान की तरह रह गयी है। अर्थात् मुख्य समस्या महिला के अस्तित्व की है, उसकी पहचान की है [2]।

इस विषय पर मेरे द्वारा उत्तराखण्ड के भूतपूर्व मा0 मुख्यमंत्री जी का साक्षात्कार लिया गया। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह कहा कि महिलाओं के समान अधिकारों की चर्चा ही हमें नहीं करनी चाहिए, क्योंकि महिलाओं को भारतवर्ष में माँ का दर्जा दिया गया है तथा माँ किसी भी तरीके से परिवार के पुरूष वर्ग के समकक्ष नहीं हो सकती है। अतः समानता के दर्जे के बारे में सोचना भी नहीं चाहिए। माँ का स्थान हमेशा उच्च होता है। यदि हम समान अधिकारों की बात महिला के लिए करते हैं, तो हम महिला की स्थिति को कम कर आँकते हैं। मा0 मुख्यमंत्री जी द्वारा यह भी कहा गया कि भारतवर्ष में प्राचीन परम्परा के अनुसार परिवार को चलाने की जिम्मेदारी महिला पर थी तथा जब तक वह परिवार का निर्वाह ठीक तरीके से करती रही वैवाहिक व पारिवारिक विवाद पैदा नहीं हुए तथा महिला ने जैसे ही पारिवारिक जिम्मेदारियों, बच्चों के पालन–पोषण की जिम्मेदारी के साथ–साथ नौकरी–पेशा करना शुरू किया, उसकी वजह से ही यह पारिवारिक एवं वैवाहिक विवाद अधिक बढ़ गये हैं[3]।

उपरोक्त तथ्यों से एक बात स्पष्ट होती है कि भारतीय समाज में महिला को अगर कोई अधिकार प्राप्त है, तो वह संबन्धों के आधार पर ही है। अर्थात् महिला जब तक एक बेटी, पत्नी तथा माँ है, तो उसके अधिकार उस हद तक सुरक्षित है जब तक वह

1 इज एन इन्डियन वूमॅन ए परसन, दी टाइम्स आफ इन्डिया, जनवरी 9, 2013 पृष्ठ संख्या 12।

2 इज एन इन्डियन वूमॅन ए परसन, दी टाइम्स आफ इन्डिया, जनवरी 9, 2013 पृष्ठ संख्या 12।

3 शोधकर्ता द्वारा की गयी अपनी विवेचना।

उन अधिकारों का निर्वहन परिवार के पुरुष सदस्यों की इच्छा के अनुरूप करे। यदि इन सम्बन्धों से बाहर आकर कोई महिला अपने अधिकार का स्वेच्छा से उपयोग करना चाहे, तो वह अपने अधिकांश अधिकारों का उपयोग स्वेच्छा से नहीं कर सकती। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भारतवर्ष में अधिकांशतः महिलाऐं व्यक्ति की परिभाषा में नहीं आती है, क्योंकि वह अपनी इच्छा से अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकती। चाहे वह शिक्षा सम्बन्धी अधिकार हों, पारिवारिक मामलों में निर्णय में उसकी उपयोगिता हो या उसके शादी–विवाह जैसा प्रकरण में उसकी इच्छा का प्रश्न हो कहीं पर भी महिला अपने अधिकारों का प्रयोग स्वतंत्रता व अपनी इच्छा से नहीं कर सकती है[4]। यहां तक कि उसे कैसे कपड़े पहनने चाहिए, उसे मोबाइल रखना चाहिए अथवा नहीं, शिक्षा किन विद्यालयों में ग्रहण करनी चाहिए इन पर भी निर्णय पुरूष प्रधान खाप पंचायत करते हैं और यदि कोई महिला अपनी इच्छा से किसी पुरूष के साथ विवाह कर लेती है, तो उसका वध किया जाना सामान्य बात है[5]। यहां पर कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना मुझे उचित प्रतीत होता है।

कुछ समय पूर्व भारतवर्ष के असम राज्य की राजधानी गुवाहाटी में भी एक महिला के विरूद्ध हिंसात्मक गतिविधियों को पूरे देश ने देखा है। दिनांक 09.07.2012 को गुवाहाटी में सरे–बाजार एक नाबालिक लड़की के साथ बहुत से पुरूषों ने मिलकर केवल छेड़छाड़ ही नहीं किया वरन उसके वस्त्र तक फाड़ दिए गए। किसी भी पुरूष सदस्य द्वारा उसे बचाने का प्रयास नहीं किया गया। यहां तक कि लोकतंत्र के चतुर्थ स्तम्भ कहे जाने वाले प्रेस के पुरूष सदस्य का आचरण भी सामाजिक मान्यताओं के अनुकूल नहीं रहा। पुरूष वर्ग के साथ मिलकर प्रेस के एक सदस्य ने भी पुरूष समाज द्वारा लज्जित की जाने वाली महिला की वीडियो फिल्म बनाई तथा उसे टेलिविजन के भिन्न–भिन्न चैनलों के माध्यम से प्रसारित कराया। पुलिस व प्रशासन भी तभी हरकत में आया जब प्रिन्ट मीडिया एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा घटना की भर्त्सना की गयी तथा पुलिस व प्रशासन की निष्क्रियता पर प्रश्न उठाये गये[6]।

दिल्ली में बिहार राज्य की एक होनहार बच्ची के साथ दुराचार की घटना केवल एक राष्ट्रीय शर्म नहीं रही, बल्कि, अन्तराष्ट्रीय जगत द्वारा भी इसकी निन्दा की गयी।

---

4 इज एन इन्डियन वूमॅन ए परसन, दी टाइम्स आफ इन्डिया, जनवरी 9, 2013 पृष्ठ संख्या 12।

5 दी बैटल्स फार वूमन्स राइटस, टाइम्स आफ इन्डिया, जुलाई 12, 2012 पृष्ठ संख्या 12।

6 सी0 उदय भाष्कर, समाज का बदरंग चेहरा, दैनिक जागरणर, जुलाई 16, 2012, पृष्ठ संख्या 9।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा तो इस घटना के सम्बन्ध में यहा तक कहा गया कि बलात्कार भारत की राष्ट्रीय समस्या है। भारत सरकार व उसके अवयवों की निष्क्रियता उस समय सामने आई, जब इस घटना के विरोध में दिल्ली व भारतवर्ष के अन्य स्थानों पर आन्दोलन किया गया तथा उस आन्दोलन का दमन करने का प्रयास किया गया । इस आन्दोलन की तुलना भी बाबा रामदेव व अन्ना हजारे द्वारा चलाये गए सामाजिक आन्दोलनों से की गयी। वास्तव में यह एक भिन्न तरह का आन्दोलन था, जो सरकार से यह चाहता था कि भारतवर्ष के प्रत्येक नागरिक को निजी व सामाजिक सुरक्षा प्राप्त कराई जाय तथा महिलाओं को विशेष रूप से यह सुरक्षा प्राप्त हो, जिससे उनका शारीरिक व लैंगिक उत्पीड़न न हो सके[7]।

पुरुष मनोवृत्ति दिल्ली में चलती बस में एक बच्ची के साथ बलात्कार के तरीके से परिलक्षित होती है, जिस तरह का कृत्य उस बच्ची के साथ किया गया वह कोई सामान्य सत्चित् व्यक्ति नहीं कर सकता, बल्कि पैशाचिक प्रवृत्ति से युक्त व्यक्ति ही इस तरह का कृत्य कर सकता है।

खाप पंचायतों द्वारा लड़कियों एवं महिलाओं के रहन–सहन, परिवेश, आर्थिक एवं सामाजिक निर्वहन को लेकर दिशा–निर्देश जारी किए जाते रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में भी महिलाओं के प्रति पुरूष वर्ग का रवैया भेदभावपूर्ण ही है। सभी घटनाओं के पीछे शारीरिक एवं यौन शोषण एक प्रमुख मुद्दा है[8]।

महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते हुए शारीरिक एवं यौन अपराधों पर शासन एवं समाज की उदासीनता एक भयंकर सामाजिक बुराई बन चुकी है। हाल ही में तेजपाल प्रकरण में भारत सरकार का मौन व्रत इसका उदाहरण है। महिलाओं के विरूद्ध शारीरिक एवं योन उत्पीड़न सामाजिक आतंकवाद के रूप में भारतवर्ष में उभर रहा है। लोकतंत्र में इस तरह की घटनाओं का कोई स्थान नहीं है। उक्त घटनाओं से स्पष्ट होता है कि 'भारत का संविधान' एवं अन्य विधियों में वर्णित महिलाओं की स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकार केवल कागजी घोड़े हैं। पुरुष प्रधान समाज उस समय परिलक्षित हुआ जब हरियाणा में बढ़ती हुई यौनहिंसा पर खाप पंचायत द्वारा आश्चर्यजनक निर्णय लिया गया कि दुष्कर्म की घटनाओं को रोकने के लिए हरियाणा में लड़कियों की शादी की उम्र 18

---

[7] कविता कृष्णन, इंसाफ पर गंभीर संवाल, दैनिक जागरण, 26 सितम्बर, 2013, पृष्ठ संख्या 10।

[8] रूपा सैनगुप्ता, दी डरटियस्ट पिक्चर, दी टाइम्स आफ इण्डिया, जुलाई 19, 2012, पृष्ठ संख्या 10।

वर्ष से घटाकर 15 वर्ष कर देना चाहिए[9]। आश्चर्यजनक रूप से हरियाणा के एक वरिष्ठ नेता ने खाप पंचायत द्वारा लिए गए इस निर्णय का स्वागत किया। आधुनिक युग में किसी कम आयु की लड़की का विवाह किए जाने के दुष्परिणाम पर संज्ञान लिया जाना चाहिए। समाज में महिलाओं के विरूद्ध बढ़ती हुई उत्पीड़न की घटनाऐं शासन व उसके तंत्र की विफलता को दर्शित करती हैं। यह अजीब बात है कि शासन के सभी तंत्रों में निष्क्रियता एवं विफलता के कारण महिलाओं के विरूद्ध बढ़ती हुई व्यभिचार की घटनाओं का दण्ड भी महिलाओं एवं लड़कियों को ही मिले कि उनका विवाह 15 वर्ष में कर दिया जाय। क्या किसी विवाहित महिला के साथ व्यभिचार की घटनाएँ नहीं होती? कुछ भी हो यह दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की विफलता है।

घरेलू हिंसा पर अभिनेता आमिर खान द्वारा अपने कार्यक्रम ''सत्यमेव जयते'' पर किए गए शोध से भी यह स्पष्ट है कि समाज का एक वर्ग (पुरुष) दूसरा वर्ग (महिला) की पिटाई करता है, उस पर हमला करता है। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय एवं योजना आयोग द्वारा अलग–अलग अध्ययन कर इस बात का खुलासा किया है कि भारतवर्ष में 40 से 80 प्रतिशत महिलाऐं घरेलू हिंसा का शिकार हैं। महिलाएं घरेलू हिंसा में केवल पति के उत्पीड़न का शिकार नहीं हैं, बल्कि पुत्री अपने पिता के उत्पीड़न का शिकार है। माँ अपने पुत्र के उत्पीड़न का शिकार है एवं बहन, भाई के उत्पीड़न का शिकार है। इस हिंसा का कारण पितृसत्तात्मक सोच भी रही है, जिसके अनुसार पुरूष महिला से श्रेष्ठ है। पुरुष तय करेंगे कि महिला के लिए हितकर क्या है? पुरूष अपनी मर्जी से महिला के जीवन को नियंत्रित करेगा। इसी सोच के कारण भ्रूण हत्या कर दी जाती है। परिवार में कन्या के साथ सौतेला व्यवहार किया जाता है। उसे शिक्षा से वंचित रखा जाता है, या उसकी शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता है। केवल घरेलू काम सिखाये जाते हैं। पितृात्मक सोच के कारण बाल विवाह, दहेज प्रथा, विधवाओं के साथ भेदभाव, संपत्ति में असमान हिस्सेदारी जैसी समस्याऐं भी उत्पन्न हो रही हैं[10]। सत्यमेव जयते के दूसरे चरण में आमिर खान द्वारा यह बताया गया कि किस तरीके से परिवार व समाज बलात्कार शिकार लड़की को ही उसके पहनावे व सामाजिक व्यवहार के आधार पर बलात्कार के लिए दोषी मानते हैं। बलात्कार के उपरान्त उसे परिवार व समाज की सांत्वना व सहारे व सहयोग की आवश्यकता होती है। इस तरीके से यह

---

[9] शैलेन्द्र प्रताप यादव, समाज का शर्मनाक चेहरा, दैनिक जागरण, अक्टूबर 2, 2012 पृष्ठ संख्या 10।

[10] आमिर खान, घरेलू हिंसा की त्रासदी, दैनिक जागरण दिनांक 28.06.2012, पृष्ठ संख्या 7।

प्रतीत होता है कि समाज व परिवार बलात्कारी के साथ खड़े हैं न कि उस लड़की के साथ, जिसके साथ बलात्कार हुआ। मेरे द्वारा अपने शोध के दौरान प्रश्नावली में एक प्रश्न निम्नलिखित रूप से रखा गया–

क्या आप मानते हैं कि भारतवर्ष में महिलाओं के साथ भेदभाव होता है? (हिन्दी रूपान्तरण)

इस प्रश्न के उत्तर में पुरुष एवं महिलाओं को मिलाकर कुल 641 उत्तर मुझे प्राप्त हुए, जिसमें 92 प्रतिशत द्वारा यह स्वीकार किया गया कि लैंगिक भेदभाव भारतवर्ष में अभी भी एक बड़ी समस्या है। केवल 4 प्रतिशत द्वारा इससे इन्कार किया गया, जबकि 4 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि इसका ज्ञान उन्हें नहीं है।

कुल 273 पुरुषों द्वारा उत्तर दिया गया जिसमें से 88 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि भारतवर्ष में अभी भी लैंगिक भेदभाव एक गंभीर समस्या है। 7 प्रतिशत द्वारा इससे इन्कार किया गया, जबकि 5 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि वह इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते हैं। इसी तरह कुल 368 महिलाओं द्वारा प्रश्न का उत्तर दिया गया, जिसमें 96 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि महिलाएं भारतवर्ष में लैंगिक भेदभाव का शिकार हैं तथा लैंगिक भेद अभी भी प्रमुख सामाजिक समस्या है। 1 प्रतिशत महिलाओं द्वारा लैंगिक भेदभाव की समस्या से इन्कार किया गया, जबकि 3 प्रतिशत द्वारा कहा गया कि वह इस विषय पर कुछ नहीं कह सकती।

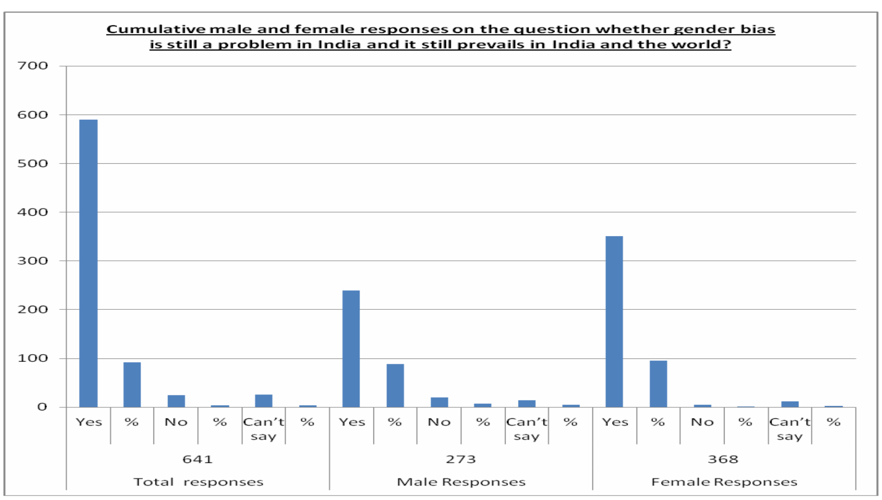

प्रश्न पर महिलाओं व पुरुषों द्वारा दिए गये उत्तर पर बनाया गया चार्ट।

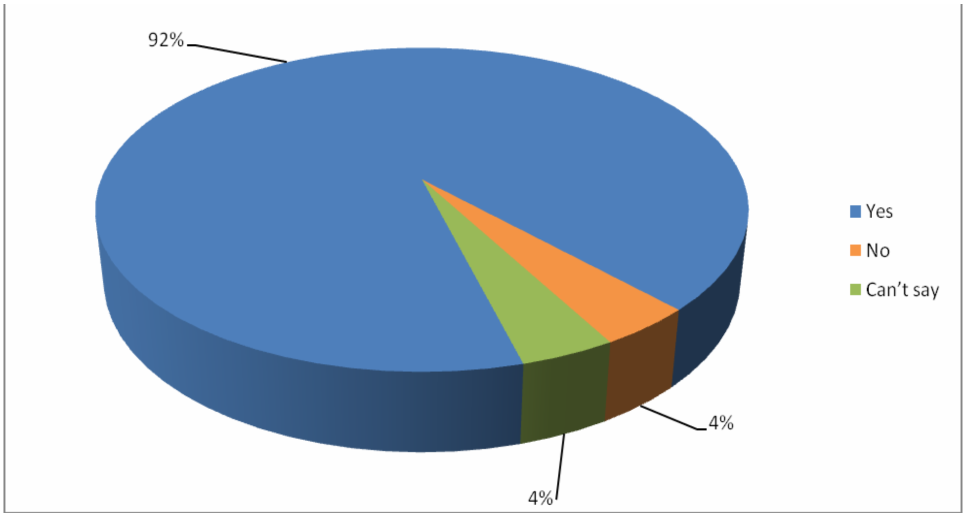

प्रश्न पर महिलाओं व पुरुषों द्वारा दिए गये उत्तर पर बनाया गया चार्ट।

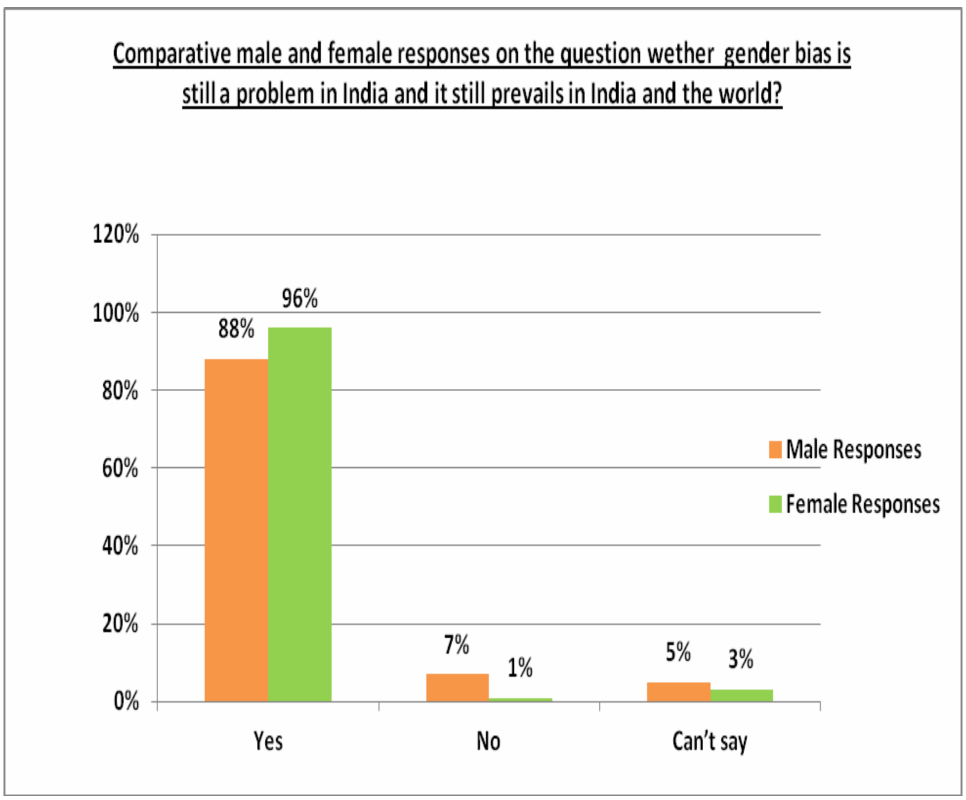

महिलाओं व पुरुषों द्वारा दिए गए उत्तरों का तुलनात्मक चार्ट।

उपरोक्त शोध परिणाम से यह स्पष्ट है कि लैंगिक भेदभाव अभी भी एक बड़ी सामाजिक समस्या है तथा इस लैंगिक भेदभाव के कारण ही बच्चों, लड़कियों व महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है। चाहे वह महिला के अस्तित्व का प्रश्न हो, परिवार में लालन–पालन का प्रश्न हो, शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा या रोजगार के अवसर का प्रश्न हो, भारतीय समाज में उनके सभी तरह के मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण अभी भी हो रहा है, जो कि एक मुख्य समस्या है। भारतवर्ष के अधिकांश हिस्सों से लड़कियां व महिलाऐं घर से बाहर निकलकर स्वयं की इच्छा अनुसार शिक्षा ग्रहण कर रही हैं तथा उन्होंने अपने अनुसार ही सामाजिक व्यवहार जैसे–रहन–सहन, पहनावा आदि शुरू कर दिया है। पुरूष वर्ग को यह स्वीकार नहीं होता इसलिए घरेलू हिंसा व सामाजिक हिंसा अक्सर देखने को मिलते हैं।

समस्या का मुख्य कारण– विपरीत पुरुष मनोदशा व मनोवृत्ति समस्या का मुख्य कारण, मेरे शोध में उजागर हुई है। शोध के दौरान मेरे द्वारा भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव के कारणों को लेकर अपनी प्रश्नावली में एक प्रश्न रखा गया जो इस प्रकार है–

'निम्नलिखित में से किसे आप भारतीय समाज में लैंगिक भेदभाव का कारण समझते हैं''–

(क) पुरुष प्रधानता।

(ख) अशिक्षा।

(ग) ईश्वरीय प्रदत्त भिन्नता।

(घ) सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन।

(ङ) अन्य कोई कारण। (हिन्दी रूपान्तरण)

इस प्रश्न के सापेक्ष कुल 641 उत्तर मेरे शोध में प्राप्त हुए। 24 प्रतिशत द्वारा कहा गया कि पुरूष प्रधानता लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण है। 34 प्रतिशत द्वारा कहा गया कि अशिक्षा लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण है। 1 प्रतिशत द्वारा कहा गया कि यह लैंगिक भेदभाव ईश्वरीय प्रदत्त है, क्योंकि ईश्वर ने पुरूष व महिला को अलग–अलग बनाया है। 40 प्रतिशत द्वारा कहा गया कि लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन है, जबकि केवल एक प्रतिशत द्वारा अन्य वजह को लैंगिक भेदभाव का कारण बताया।

कुल 273 पुरूषों के जवाब मुझे प्राप्त हुए जिसमें से 23 प्रतिशत पुरूषों द्वारा पुरूष प्रधानता को लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण बताया। 35 प्रतिशत पुरूषों द्वारा अशिक्षा को लैंगिक भेदभाव का कारण बताया। 1 प्रतिशत पुरूषों द्वारा यह कहा गया कि ईश्वर द्वारा ही पुरूष व महिला को अलग–अलग शारीरिक कृति दी गयी है तथा यही लैंगिक भेदभाव का कारण है। 40 प्रतिशत पुरूषों द्वारा कहा गया कि सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण है, जबकि 1 प्रतिशत पुरूषों द्वारा कहा गया कि लैंगिक भेदभाव किसी अन्य कारण की वजह से है।

लिंगभेद के कारण

कुल प्राप्त उत्तर	पुरूषों द्वारा दिए गए उत्तर	महिलाओं द्वारा दिए गए उत्तर
641	273	368
पुरुष प्रधानता		24 %
अशिक्षा		34 %
ईश्वरीय प्रदत्त भिन्नता		1 %
समाजिक व आर्थिक पिछड़ापन		40 %
अन्य कोई कारण		1 %
पुरुष प्रधानता		23 %
अशिक्षा		35 %
ईश्वरीय प्रदत्त भिन्नता		1 %
समाजिक व आर्थिक पिछड़ापन		40 %
अन्य कोई कारण		1 %
पुरूष प्रधानता		27 %
अशिक्षा		32 %
ईश्वरीय प्रदत्त भिन्नता		1 %
समाजिक व आर्थिक पिछड़ापन		39 %
अन्य कोई कारण		1 %

इसी तरह कुल 368 महिलाओं द्वारा इस प्रश्न का उत्तर दिया गया। 27 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि पुरूष प्रधानता लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण है। 31 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि अशिक्षा लैंगिक भेदभाव की मुख्य वजह है। 1 प्रतिशत महिलाओं द्वारा यह माना गया कि शारीरिक व मानसिक रूप से ईश्वर ने ही पुरूष व महिला को अलग–अलग बनाया है, जो लैंगिक भेदभाव का कारण है। 40 प्रतिशत महिलाओं द्वारा यही कहा गया कि सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन समाज में लैंगिक भेदभाव का मुख्य

कारण है तथा 1 प्रतिशत महिलाओं द्वारा यह कहा गया कि लैंगिक भेदभाव की वजह उपरोक्त से कुछ भिन्न है। इस 1 प्रतिशत में पुरूषों वह महिलाओं द्वारा कुछ प्रश्नों में यह दर्शित भी किया गया कि यह अन्य वजहें क्या हैं।

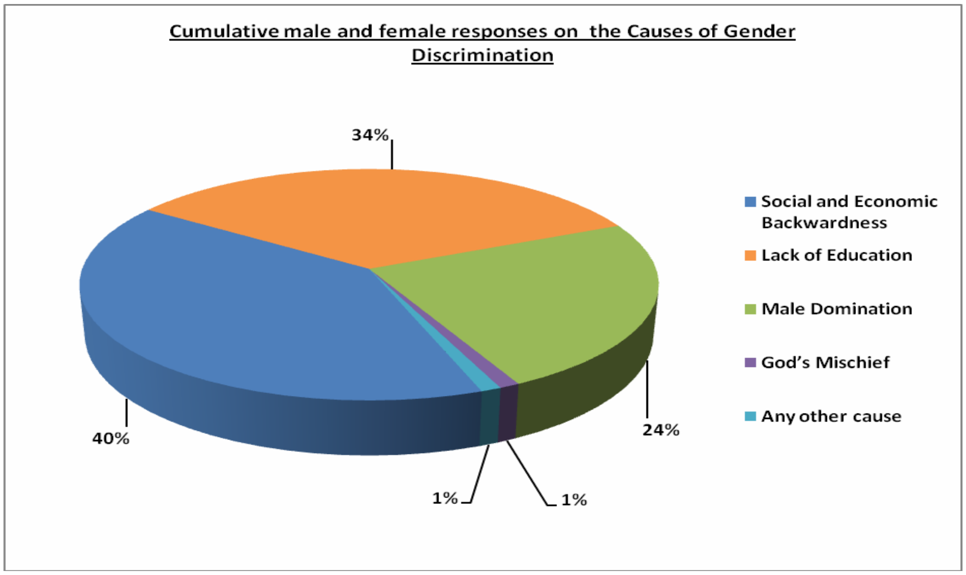

लिंगभेद के कारणों पर महिलाओं व पुरूषों द्वारा दिए गए उत्तरों के आधार पर निर्मित चार्ट।

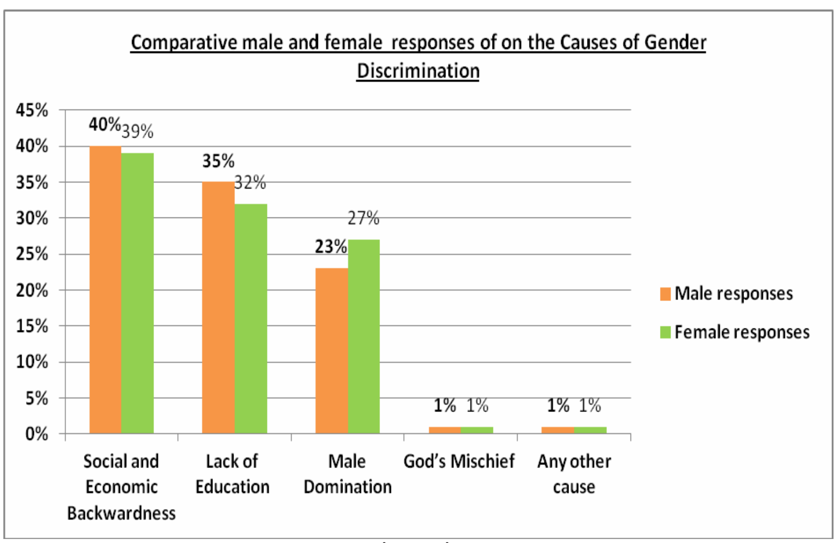

लिंगभेद के कारण

लिंगभेद के कारणों पर पुरूष व महिलाओंद्वारा दिए गए उत्तरों पर निर्मित तुलनात्मक चार्ट।

लैंगिक भेदभाव के कारणों एव प्रभावों को सामाजिक व पारिवारिक प्रकरणों में महिला की भूमिका से मैंने अपने शोध में सिद्ध करने का प्रयास किया तथा शोध प्रश्नावली में निम्नलिखित प्रश्न रखा गया–

''क्या भारतवर्ष में पारिवारिक व घरेलू मामलों के निर्णयों में महिला की कोई भूमिका होती है''? (हिन्दी रूपान्तरण)

कुल 661 जवाबों में से 25 प्रतिशत ने यह माना कि भारतवर्ष में महिलाओं का पारिवारिक एवं घरेलू निर्णयों में महिलाओं की भूमिका रहती है, जबकि 67 प्रतिशत ने यह माना की भारतवर्ष में घरेलू व पारिवारिक निर्णयों में महिलाओं की कोई भूमिका नहीं होती है, जबकि 8 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि इस प्रश्न पर वह कुछ नहीं कह सकते।

कुल 273 पुरुषों से उत्तर प्राप्त हुए तथा 27 प्रतिशत द्वारा यह माना गया कि भारतवर्ष में घरेलू व पारिवारिक निर्णयों में महिला की अहम भूमिका होती है। 58 प्रतिशत द्वारा यह कहा गया कि भारतवर्ष में घरेलू एवं पारिवारिक निर्णयों में महिला की भूमिका अहम नहीं होती, जबकि 15 प्रतिशत पुरुषों द्वारा यह कहा गया कि इस प्रश्न

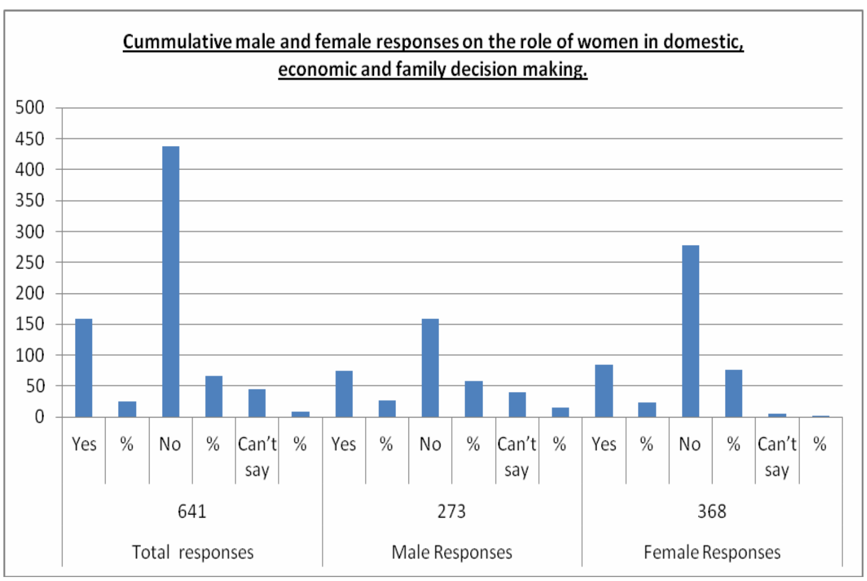

महिलाओं की परिवार में पारिवारिक एवं आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर निर्मित चार्ट।

पर उन्हें कुछ नहीं कहना है। इसी तरह कुल 368 महिलाओं द्वारा प्रश्न का उत्तर दिया गया। 23 प्रतिशत महिलाओं द्वारा यह माना गया कि महिलाओं की भूमिका भारतीय समाज में पारिवारिक व घरेलू निर्णयों में होती है। 76 प्रतिशत महिलाओं द्वारा यह कहा गया कि उनकी कोई भूमिका पारिवारिक एवं घरेलू निर्णयों के मामलों में नहीं होती। यह निर्णय मात्र पुरूषों द्वारा ही लिए जाते हैं जबकि 1 प्रतिशत महिलाओं द्वारा यह कहा गया कि वह इस प्रश्न पर कोई उत्तर नहीं दे सकतीं।

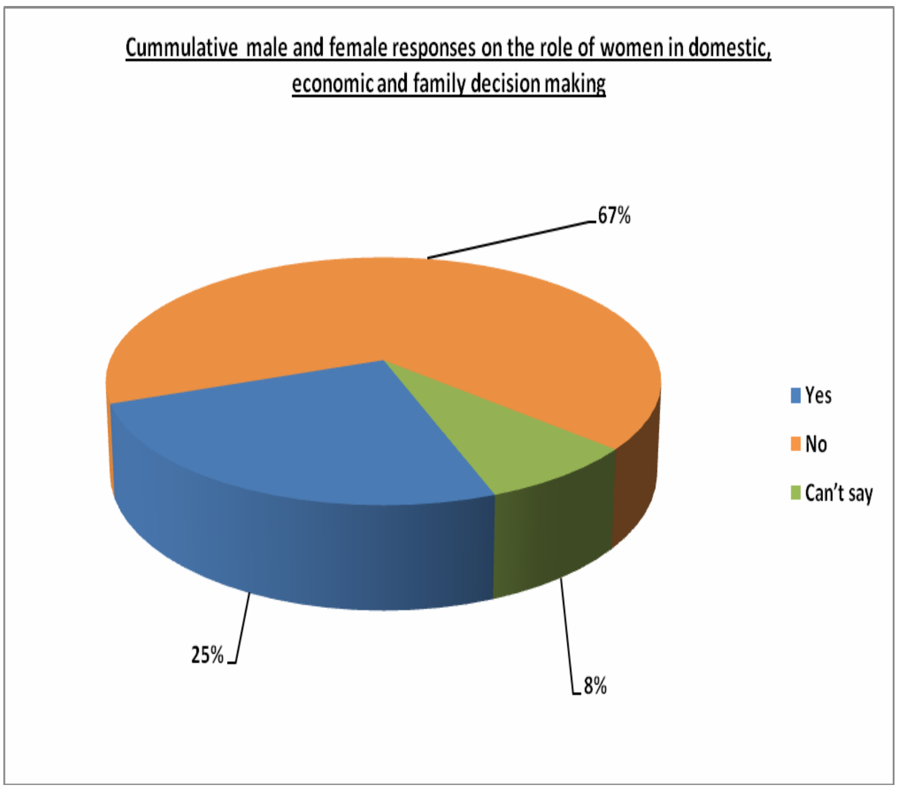

महिलाओं की परिवार में पारिवारिक एवं आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर निर्मित चार्ट।

उपरोक्त शोध कार्य में जो निष्कर्ष निकलकर आया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि परम्परागत सोच वाली पुरुष प्रधानता, अशिक्षा तथा सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन इस लैंगिक भेदभाव के मुख्य कारण है। परम्परागत मानसिकता से ग्रसित पुरुष प्रधान समाज व परिवार में महिला शिक्षा, सामाजिक व आर्थिक अधिकारों से वंचित है।

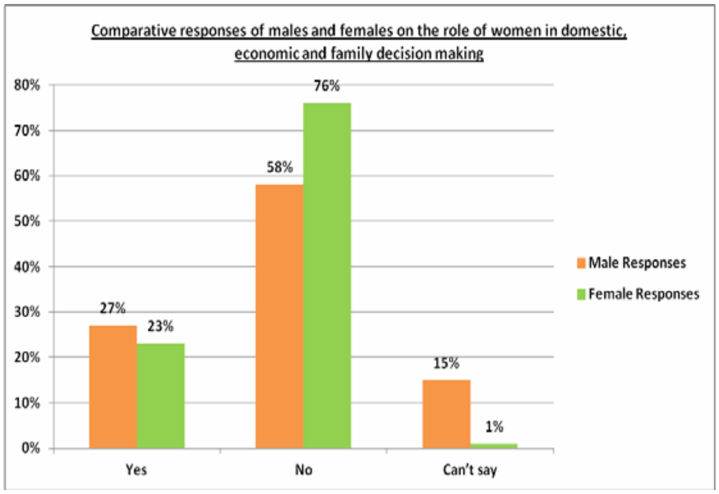

महिलाओं की परिवार में पारिवारिक एवं आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर पुरूषों एवं महिलाओं के उत्तरों पर निर्मित तुलनात्मक चार्ट।

उपरोक्त शोध कार्य से यह स्पष्ट होता है कि केवल महिला ही नहीं, बल्कि संवेदनशील पुरुषों की भी यह शिकायत है कि समाज में स्त्री को एक वस्तु के तौर पर देखा जाता है। यूरोपियन जनरल ऑफ सोसियल साईकोलॉजी में भी एक शोध प्रकाशित हुआ है, जिसके मुताबिक इंसानी दिमाग स्त्री और पुरूष को अलग–अलग तरीके से देखता है। वह पुरुष को अलग नजरिये से देखता है जबकि स्त्री को दूसरे नजरिये से देखता हें उपरोक्त शोध एक चौकाने वाला निष्कर्ष भी देता है कि सिर्फ पुरुषों का ही नहीं, बल्कि स्त्रियों का दिमाग भी यह भेदभाव करता है। जब हम किसी पुरुष को देखते हैं या उसके बारे में विचार करते हैं, तो हमारे दिमाग में जिस तरह की प्रक्रिया होती है उसे ग्लोबल या सार्वभोमिक संज्ञान प्रक्रिया कहते हैं। यह ऐसी प्रक्रिया होती है, जिसमें हम किसी व्यक्ति को उसकी सम्पूर्णता में देखते और पहचानते हैं। वहीं जब हम किसी स्त्री को देखते हैं, तो आम तौर पर हमारा दिमाग जिस प्रक्रिया का सहारा लेता है उसे लोकल या स्थानीय संज्ञान प्रक्रिया कहते हैं इस प्रक्रिया में हम चीजों को जैसे कार या मकान को देखते हैं उसमें हम किसी चीज को कई हिस्सों के एक समुच्य की तरह देखते हैं।

उपरोक्त शोध में यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि यह देखा गया है कि स्त्री और पुरुष दोनों के दिमाग एक ही तरह से कार्य करते हैं। इस शोध की वैज्ञानिकों द्वारा पुष्टि भी कर ली गयी है। वैज्ञानिकों ने यह माना है कि हमारा दिमाग की उपरोक्त

प्रक्रिया जैविक वजहों से हो सकती है। प्रजनन और वंश वृद्धि जीवों का बुनियादी संवेग है। चूंकि प्रजनन स्त्रियों से होता है, इसलिए आदिम युग से ही पुरुषों का दिमाग स्त्रियों को योन और प्रजनन की दृष्टि से देखने का आदी हो गया है तथा यह जैविक वजह अभी भी महिला को प्रजनन और यौन की दृष्टि से देखने का है, जो उसके लगभी सभी मानवीय अधिकारों का उल्लंघन है[11]।

मुख्य रूप से मौलिक अधिकारों का उल्लंघन—महिलाओं के मानवाधिकारों का उल्लंघन में मुख्य रूप से भ्रूण हत्या, जिससे महिलाओं का अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह् लगता है एवं उसके विरूद्ध शारीरिक एवं यौन अपराध हैं। शारीरिक एवं यौन उत्पीड़न अधिकतर परिवार में ही होता है। यौनाचार, महिलाओं के विरूद्ध हमला, महिला व्यापार, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा मुख्य रूप से मानवाधिकारों का उल्लंघन है। यौनाचार को भारतीय संसद द्वारा आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 2013 के माध्यम से परिभाषित किया गया है। आपराधिक संशोधन अधिनियम, 2013, के प्रमुख प्रावधान जो महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा प्रयोजन के बनाये गये हैं, इस प्रकार हैंः—

326 ख— स्वेच्छया अम्ल फेंकना या फेंकने का प्रयत्न करना— जो काई, किसी व्यक्ति को स्थायी या आंशिक नुकसान कारित करने या उसका अंगविकार करने या जलाने या विकलांग बनाने या विद्रूपित करने या निःशक्त बनाने या घोर उपहति कारित करने के आशय से उस व्यक्ति पर अम्ल फेंकता है या फेंकने का प्रयत्न करता है या किसी व्यक्ति को अम्ल देता है या अम्ल देने का प्रयत्न करता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

> स्पष्टीकरण 1— धारा 326क और इस धारा के प्रयोजनों के लिए ''अम्ल'' में कोई ऐसा पदार्थ सम्मिलित है, जो ऐसे अम्लीय या संक्षरक स्वरूप या ज्वलन प्रकृति का है, जो ऐसी शारीरिक क्षति करने योग्य है, जिससे क्षतन्हि् बन जाते हैं या विद्रूपता या अस्थायी या स्थायी निःशक्तता हो जाती है।
>
> स्पष्टीकरण 2— धारा 326 के और इस धारा के प्रयोजनों के लिये स्थायी या आंक्षिक नुकसान या अंगविकार का अपरिवर्तनीय होना आवश्यक नहीं होगा।

---

[11] नजर का फर्क, हिन्दुस्तान संपादकीय 30 जुलाई, 2012 पष्ठ संख्या 10।

354क–लैंगिक उत्पीड़न और लैंगिक उत्पीड़न के लिए दण्ड–

(1) ऐसा कोई निम्नलिखित कार्य अर्थात–

(i) शारीरिक सम्पर्क और अग्रक्रियायें करने जिनमें अवांछनीय और लैंगिक सम्बन्ध बनाने सम्बन्धी स्पष्ट प्रस्ताव अंतर्वलित हों; या

(ii) लैगिक स्वीकृति के लिए कोई मांग या अनुरोध करने; या

(iii) किसी स्त्री की इच्छा के विरूद्ध अश्लील साहित्य दिखाने; या

(iv) लैंगिक आभासी टिप्पणियां करने,

वाला पुरूष लैंगिक उत्पीड़न के अपराध का दोषी होगा।

(2) ऐसा कोई पुरुष जो उपधारा (1) के खण्ड (i) या खण्ड (ii) या खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट अपराध करेगा, वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जायेगा।

354ख. निर्वस्त्र करने के आशय से स्त्री पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग–

ऐसा कोई पुरुष जो किसी स्त्री को किसी सार्वजनिक स्थान में र्निवस्त्र करने या निर्वस्त्र होने के लिये बाध्य करने के आशय से उस पर हमला करेगा या उसके प्रति आपराधिक बल का प्रयोग करेगा या ऐसे कृत्य का दुष्प्रेषण करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

354ग. दृश्यरतिकता–

ऐसा कोई पुरुष, जो कोई ऐसी किसी स्त्री को, जो उन परिस्थितियों के अधीन, जिनमें वह यह प्रत्याशा करती है कि उसे अपराध करने वाला या अपराध करने वाले के कहन पर कोई अन्य व्यक्ति देख नहीं रहा होगा, किसी प्राईवेट कृत्य में लगी किसी स्त्री को एकटक देखेगा या उसका चित्र खींचेगा अथवा उस चित्र को प्रसारित करेगा, प्रथम दोषसिद्धि पर दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु जो तीन वर्ष तक हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा

और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा और द्वितीय अथवा पश्चात्वर्ती किसी दोषसिद्धि पर दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिकी अवधि तीन वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरण 1— इस धारा के प्रयोजनों के लिये, ''प्राइवेट कृत्य'' के अंतर्गत ऐसे किसी स्थान में देखने का कार्य किया जाता है, जिसके सम्बन्ध में, परिस्थितियों के अधीन, युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा की जाती है कि वहां एकांतता होगी और जहां कि पीड़िता के जननांगों, नितंबों या वक्षस्थलों को अभिदर्शित किया जाता है या केवल अधोवस्त्र से ढका जाता है अथवा जहां पीड़िता किसी शौचघर का प्रयोग कर रही है; या जहां पीड़िता ऐसा कोई लैंगिक कृत्य कर रहीं है, जो ऐसे प्रकार का नहीं है, जो साधारणतया सार्वजनिक तौर पर किया जाता है।

स्पष्टीकरण 2— जहां पीड़िता चित्रों या किसी अभिनय के चित्र को खींचने के लिये सम्मति देती है किन्तु अन्य व्यक्तियों को उन्हें प्रसारित करने की सम्मति नहीं देती है और जहां उस चित्र या कृत्य का प्रसारण किया जाता है वहां ऐसे प्रसारण को इस धारा के अधीन अपराध माना जायेगा।

354 घ. पीछा करना—

(1) ऐसा कोई पुरुष जो—

(i) किसी स्त्री का उससे व्यक्तिगत अन्योन्यक्रिया को आगे बढ़ाने के लिये उस स्त्री द्वारा स्पष्ट रूप से अनिच्छा उपदर्शित किये जाने के बावजूद, बारंबार पीछा करता है और सम्पर्क करता है या सम्पर्क करने का प्रयत्न करता है : अथवा

(ii) जो कोई किसी स्त्री द्वारा इन्टरनेट, ई—मेल या किसी अन्य प्ररूप की इलेक्ट्रानिक संसूचना का प्रयोग किये जाने को मानीटर करता है :

पीछा करने का अपराध करता है :

परन्तु ऐसा आचरण पीछा करने की कोटि में नहीं आयेगा, यदि वह पुरुष, जो ऐसा करता है, यह साबित कर देता है कि –

(i) ऐसा कार्य अपराध के निवारण या पता लगाने के प्रयोजन के लिये किया गया था और पीछा करने के अभियुक्त पुरुष को राज्य द्वारा उस अपराध के निवारण और पता लगाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था : या

(ii) ऐसा किसी विधि के अधीन या किसी विधि के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा अधिरोपित किसी शर्त या अपेक्षा का पालन करने के लिये किया गया थाः या

(iii) विशिष्ट परिस्थितियों में ऐसा आचरण युक्तियुक्त और न्यायोचित था।

(2) जो कोई पीछा करने का अपराध करता है, वह प्रथम दोषसिद्धि पर दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा और द्वितीय या पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।''।

धारा 375, धारा 376क,धारा 376 ख, धारा 376 ग और धारा 376घ के स्थान पर नई धाराओं का प्रतिस्थापन– दण्ड संहिता की धारा 375, धारा 376क, धारा 376 ख, धारा 376 ग और धारा 376घ के स्थान पर, निम्नलिखित धाराएं रखी गयी हैं, अर्थात्:–

''375. बलात्संग–यदि कोई पुरुष,–

(क) किसी स्त्री की योनि, उसके मुहं, मूत्रमार्ग या गुदा में अपना लिंग किसी भी सीमा तक प्रवेश करता है या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है; या

(ख) किसी स्त्री की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में ऐसी कोई वस्तु या शरीर का कोई भाग, जो लिंग न हो, किसी भी सीमा तक अनुप्रविष्ट करता है या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है; या

(ग) किसी स्त्री के शरीर के किसी भाग का इस प्रकार हस्तसाधन करता है, जिससे कि उस स्त्री की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग या शरीर के किसी भाग में प्रवेशन

कारित किया जा सके या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है; या

(घ) किसी स्त्री की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग पर अपना मुहं लगाता है या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है,

तो उसके बारे में यह कहा जायेगा कि उसने ''बलात्संग'' किया है, जहां ऐसा निम्नलिखित सात भांति की परिस्थितियों में से किसी के अधीन किया जाता हैः–

पहला–उस स्त्री की इच्छा के विरूद्ध।

दूसरा–उस स्त्री की सम्मति के बिना।

तीसरा–उस स्त्री की सम्मति से, जब उसकी सम्मति उसे या ऐसे किसी व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मष्त्यु या उपहति के भय में डालकर अभिप्राप्त की गई है।

चौथा–उस स्त्री की सम्मति से, जब कि वह पुरूष यह जानता है कि वह उसका पति नहीं है और उसने सम्मति इस कारण दी है कि वह यह विश्वास करती है कि वह ऐसा अन्य पुरूष है जिससे वह विधिपर्वूवक विवाहित है या विवाहित होने का विश्वास करती है।

पांचवां–उस स्त्री की सम्मति से, जब ऐसी सम्मति देने का समय, वह विकृतचित्तता या मत्तता के कारण या उस पुरुष द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से कोई संज्ञाशून्यकारी या अस्वास्थ्यकर पदार्थ दिये जाने के कारण, उस बात की, जिसके बारे में वह सम्मति देती है, प्रकषति और परिणामों को समझने में असमर्थ है।

छठवां–उस स्त्री की सम्मति से या बिना, जब वह अटठारह वर्ष से कम आयु की है।

सातवां–जब वह स्त्री सम्मति ससूंचित करने में असमर्थ है।

स्पष्टीकरण 1– इस धारा के प्रयोजनों के लिये ''योनि'' के अन्तर्गत वृहद् भगोष्ठ भी है।

स्पष्टीकरण 2– सम्मति से कोई स्पष्ट स्वैच्छिक सहमति अभिप्रेत है, जब स्त्री शब्दों, संकेतों या किसी प्रकार की मौखिक या अमौखिक संसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट लैंगिक कृत्य में शामिल होने की इच्छा व्यक्त करती है:

परन्तु ऐसी स्त्री के बारे में, जो प्रवेशन के कष्त्य का भौतिक रूप से विरोध नहीं करती है, मात्र इस तथ्य के कारण यह नहीं समझा जायेगा कि उसने विनिर्दिष्ट लैंगिक क्रियाकलाप के प्रति सम्मति प्रदान की है।

अपवाद 1– किसी चिकित्सकीय प्रक्रिया या अंतः प्रवेशन से बलात्संग गठित नहीं होगा।

अपवाद 2– किसी पुरूष का अपनी स्वयं की पत्नी के साथ, मैथुन या लैंगिक कृत्य, यदि पत्नी पन्द्रह वर्ष से कम आयु की न हो, बतात्संग नहीं है।

376. बलात्संग के लिये दण्ड–

(1) जो कोई, उपधारा (2) में उपबंधित मामलों के सिवाय, बलात्संग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कठोर कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

(2) जो कोई–

(क) पुलिस अधिकारी होते हुए–

(i) उस पुलिस थाने की, जिसमें ऐसा पुलिस अधिकारी नियुक्त है, सीमाओं के भीतर; या

(ii) किसी भी थाने के परिसर में; या

(iii) ऐसे पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में या ऐसे पुलिस अधिकारी के अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में, किसी स्त्री से बलात्संग करेगा; या

(ख) लोक सेवक होते हुए, ऐसे लोक सेवक की अभिरक्षा में या ऐसे लोक सेवक के अधीनस्थ किसी लोक सेवक की अभिरक्षा में की किसी स्त्री से बलात्संग करेगा; या

(ग) केन्द्रीय या किसी राज्य सरकार द्वारा किसी क्षेत्र में अभिनियोजित सशस्त्र बलों का सदस्य होते हुये, उस क्षेत्र में बलात्संग करेगा; या

(घ) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित किसी जेल, प्रतिप्रेषण गृह या अभिरक्षा के अन्य स्थान के या स्त्रियों या बालकों की किसी संस्था के प्रबंधतंत्र या कर्मचारीवृंद में होते हुए, ऐसी जेल, प्रतिप्रेषण गृह, स्थान या संस्था के किसी निवासी से बलात्संग करेगा; या

(ङ) किसी अस्पताल के प्रबंधतंत्र या कर्मचारीवृंद में होते हुये, उस अस्पताल में किसी स्त्री से बलात्संग करेगा; या

(च) स्त्री का नातेदार, संरक्षक या अध्यापक अथवा उसके प्रति न्यास या प्राधिकारी की हैसियत में का कोई व्यक्ति होते हुये, उस स्त्री से बलात्संग करेगा; या

(छ) सांप्रदायिक या पंथीय हिंसा के दौरान बलात्संग करेगा; या

(ज) किसी स्त्री से यह जानते हुये कि वह गर्भवती है बलात्संग करेगा; या

(झ) किसी स्त्री से, जब वह सोलह वर्ष से कम आयु की है, बलात्संग करेगा; या

(ञ) उस स्त्री से, जो सम्मति देने में असमर्थ है, बलात्संग करेगा; या

(ट) किसी स्त्री पर नियंत्रण या प्रभाव रखने की स्थिति में होते हुए, उस स्त्री से बलात्संग करेगा; या

(ठ) मानसिक या शारीरिक निःशक्तता से ग्रसित किसी स्त्री से बलात्संग करेगा; या

(ङ) बलात्संग करते समय किसी स्त्री को गम्भीर शारीरिक अपहानि कारित करेगा या विकलांग बनायेगा या विद्रूपित करेगा या उसके जीवन को संकटापन्न करेगा; या

(ढ) उसी स्त्री से बार–बार बलात्संग करेगा,

वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्त जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, जिससे उस व्यक्ति के शेष प्राकृत जीवनकाल के लिये कारावास अभिप्रेत होगा, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिये–

(क) ''सशस्त्र–बल'' से नौसेनिक' सैनिक और वायु सैनिक अभिप्रेत है और इसके अर्न्तगत तत्समय प्रवष्त किसी विधि के अधीन गठित सशस्त्र बलों का, जिसमें ऐसे अर्द्धसैनिक बल और कोई सहायक बल भी है, जो केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन है, कोई सदस्य भी है;

(ख) ''अस्पताल से अस्पताल का अहाता अभिप्रेत है और इसके अर्न्तगत किसी ऐसी संस्था का आहाता भी है, जो स्वास्थ लाभ कर रहे व्यक्तियों को या चिकित्सीय देखरेख या पुनर्वास की अपेक्षा रखने वाले व्यक्तियों के प्रवेश व उपचार करने के लिये है;

(ग) ''पुलिस अधिकारी'' का वहीं अर्थ होग, जो पुलिस अधिनियम, 1861 (1861 का 5) के अधीन ''पुलिस'' पद में उसका है;

(घ) ''स्त्रियों या बालकों की संस्था'' से स्त्रियों और बालकों को ग्रहण करने और उनकी देखभाल करने के लिये स्थापित और अनुरक्षित कोई संस्था अभिप्रेत है, चाहे उसका नाम अनाथालय हो या अपेक्षित स्त्रियों या बालको के लिये गृह हो या विधवाओं के लिये गृह या किसी अन्य नाम से ज्ञात कोई संस्था हो।

376क. पीड़िता की मृत्यु या लगातार विकृतशील दशा कारित करने के लिये दण्ड– जो कोई, धारा 376 की उपधारा (1) या (2) के अधीन दण्डनीय कोई अपराध करता है और ऐसे अपराध के दौरान ऐसी कोई क्षति पहुंचाता है, जिससे स्त्री की मृत्यु कारित हो जाती है या जिसके कारण उस स्त्री की दशा लगातार विकृतशील हो जाती है, वह ऐसी अवधि के कठोर कारावास से, जिसकी अवधि बीस वर्ष से कम की नही होगी, किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकती, जिससे उस व्यक्ति के शेष प्राकृत जीवनकाल के लिये कारावास अभिप्रेत होगा, या मृत्युदण्ड से दण्डित किया जायेगा।

376ख. पति द्वारा अपनी पत्नी के साथ पृथकरण के दौरान मैथुन.– जो कोई, अपनी पत्नी के साथ, जो पृथकरण की डिक्री के अधीन या अन्यथा, पृथक रह रही है, उसकी सम्मति के बिना मैथुन करेगा वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष से कम की नही होगी, किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरण,– इस धारा में, ''मैथुन'' से धारा 375 के खण्ड (क) से खण्ड (घ) में वर्णित कोई कृत्य अभिप्रेत होगा।

376ग. प्राधिकार में किसी व्यक्ति द्वारा मैथुन.–जो कोई–

(क) प्राधिकार की किसी स्थिति या वैश्वासिक सम्बन्ध रखते हुये; या

(ख) कोई लोक सेवक होते हुये; या

(ग) तत्समय प्रवृत किसी विधि द्वारा या उसके भारसाधन के अधीन स्थापित किसी जेल, प्रतिप्रेषण गष्ह या अभिरक्षा के अन्य स्थान का या स्त्रियों या बालकों की किसी संस्था का अधीक्षक या प्रबंध होते हुए; या

(घ) अस्पताल के प्रबंधतंत्र या किसी अस्पताल का कर्मचारीवृंद होतु हुए ऐसी किसी स्त्री को, जो उसकी अभिरक्षा में है या उसके भारसाधन के अधीन है या परिसर में उपस्थित है, अपने साथ मैथुन करने हेतु, जो बलात्संग के अपराध की कोटि में नहीं आता है, उत्प्रेरित या विलुब्ध करने के लिये ऐसी स्थिति या वैश्यासिक सम्बन्ध का दुरूपयोग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जो पांच वर्ष से कम का नहीं होगा, किन्तु दस साल तक का हो सकेगा, दण्डित किया जायेगा या जुर्माने से दण्डनीय होगा।

स्पष्टीकरण,1– इस धारा में, ''मैथुन'' से धारा 375 के खण्ड (क) से खण्ड (घ) में वर्णित कोई कृत्य अभिप्रेत होगा।

स्पष्टीकरण 2.– इस धारा के प्रयोजन के लिये, धारा 375 का स्पष्टीकरण 1 भी लागू होगा।

स्पष्टीकरण 3– किसी जेल, प्रतिप्रेषण–गृह या अभिरक्षा के अन्य स्थान या स्त्रियों या बालकों की किसी संस्था के सम्बन्ध में, ''अधीक्षक'' के अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति है, जो जेल, प्रतिप्रेषण–गृह, स्थान या संस्था में ऐसा कोई पद धारण करता है, जिसके आधार पर वह उसके निवासियों पर किसी प्रधिकार या नियंत्रण का प्रयोग कर सकता

स्पष्टीकरण 4– ''अस्पताल'' और ''स्त्रियों की संस्था'' पदों का क्रमशः वहीं अर्थ हो, जो धारा 376 की उपधारा (2) के स्पष्टीकरण में उनका है।

376 घ. सामूहिक बलात्संग–जहां किसी स्त्री से एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा, एक समूह गठित करके या सामान्य आशय को अग्रसर करने में कार्य करते हुये

बलात्संग किया जाता है, वहां उन व्यक्तियों में से प्रत्येक के बारे में यह समझा जायेगा कि उसने बलात्संग का अपराध किया है और वह ऐसी अवधि के कठोर कारावास से, जिसकी अवधि बीस वर्ष से कम की नहीं होगी, किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, जिससे उस व्यक्ति के शेष प्राकृत जीवनकाल के लिये कारावास अभिप्रेत होगा, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगाः

परन्तु ऐसा जुर्माना पीड़िता के चिकित्सीय खर्चों को पूरा करने और पुनर्वास के लिये न्यायोचित और युक्तियुक्त होगाः

परन्तु यह और कि इस धारा के अधीन अधिरोपित कोई जुर्माना पीड़िता को संदत्त किया जायेगा।

376ङ– पुनरावृत्तिकर्ता अपराधियों के लिये दण्ड– जो कोई, धारा 376 या धारा 376क या धारा 376 घ के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के लिये पूर्व में दण्डित किया गया है और तत्पश्चात् उक्त धाराओं में से किसी के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के लिये सिद्धदोष ठहराया जाता है, वह आजीवन कारावास से, जिससे उस व्यक्ति के शेष प्राकष्त जीवनकाल के लिये कारावास अभिप्रेत होगा, या मृत्युदण्ड से दण्डित किया जायेगा।

अब प्रश्न यह है कि क्या आपराधिक संशोधन अधिनियम, 2013 के प्राविधान महिलाओं के हित के विरूद्ध हैं? शोधकर्ता के रूप में मेरी राय यह है कि बलात्संग से सम्बन्धित प्राविधान शादीशुदा महिलाओं के हित के विरूद्ध हैं क्योंकि यह प्राविधान प्रत्येक पति को अपनी पत्नी से यहां तक की उसकी इच्छा या सहमति के विरूद्ध वो सभी कृत्य करने की कानूनी अनुमति देते हैं, जो बलात्संग की परिभाषा में शामिल हैं। बलात्संग की परिभाषा को विस्तृत कर दिया गया है। इसमें गुदा मैथुन, वस्तु गुदा मैथुन, वस्तु योनि मैथुन, मुख मैथुन तथा किसी भी दशा में शरीर का हस्तसाधन भी शामिल है। अपनी पत्नी के साथ किया गया लिंगात्मक कृत्य बलात्कार नहीं होगा। यह कैसा कानून जो पति को यह अधिकार देता है कि वह अपनी पत्नी को भोग की वस्तु की तरह प्रयोग कर सके। पत्नी की इच्छा या शारीरिक व मानसिक स्थिति का कोई महत्व इस कानून में नहीं है। पति जैसे चाहे जब चाहे कोई भी लैंगिक कृत्य पत्नी के साथ कर सकता है, चाहे वह भयंकर बीमारी की हालत में क्यों न हो। यह एक जल्दबाजी में बनाया गया कानून है, जिसमें विवाहित महिलाओं के हितों एवं पति से उनकी शारीरिक एवं लैंगिक सुरक्षा का ध्यान नहीं रखा गया है।

उपरोक्त से स्पष्ट हो जाता है कि पुरूष प्रधान समाज में पुरूष की मनोदशा जो कि जैविक कारणों से हो सकती है, महिलाओं के साथ लैंगिक भेदभाव का मुख्य कारण है तथा इसी वजह से महिलाओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है।

समस्या के समाधान पर न्यायपालिका की भूमिका– भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की कुछ सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों से कुछ हद तक महिलाओं की आर्थिक सम्पन्नता बढ़ी है, किन्तु जब तक आर्थिक उन्नति के साथ सामाजिक स्वतन्त्रता महिलाओं को नहीं मिलेगी तब तक आर्थिक सम्पन्नता का कोई महत्व नहीं है। पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश आदि इसके उदाहरण हैं। बदलते परिवेश में महिलाऐं आर्थिक रूप से सम्पन्न हुई हैं, किन्तु खाप पंचायत में होने वाले निर्णय एवं सामाजिक परंपराओं के कारण महिलाऐं सामाजिक पहचान बनाने में असफल रही हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक महिला जज को शासन से सुरक्षा की गुहार लगानी पड़ी, क्योंकि उसके द्वारा अपने पिता एवं परिवार के सदस्यों की इच्छा के विरूद्ध प्रेम विवाह कर लिया था। इससे स्पष्ट होता है कि आर्थिक सम्पन्नता के बावजूद भी सामाजिक स्वतंत्रता के अभाव के कारण उस आर्थिक स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं रह जाता है। महिलाओं के विरूद्ध इस तरह की मानसिक प्रवृत्ति एवं उनके विरूद्ध होने वाले अपराधों में सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों द्वारा सराहनीय भूमिका निभाई है। लेकिन, जनपदीय न्यायालयों का ध्यान अभी तक इस ओर आकृष्ट नहीं है एवं जनपद स्तरीय न्यायालयों द्वारा अभी भी तकनीकी रूप से एवं परम्परागत ढाँचे के अन्तर्गत ही न्याय प्रदान किया जाता है। निर्भया दुर्घटना के पश्चात् महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों से सम्बन्धित वादों के निस्तारण में त्वरितता आयी है। किन्तु, जनपदीय न्यायालयों से इस सम्बन्ध में जो अपेक्षा की जाती है वह अपनी तकनीकी व परम्परागत कार्य प्रणाली के कारण उस अपेक्षा के अनुरूप कार्य नही कर पा रहे है।

कोई भी समाज अपरिवर्तनीय नहीं है। प्रगति एवं परिवर्तन समाज का अभिन्न अंग है। अतः न्याय प्रदान करते समय कानून की विवेचना इस परिवर्तन को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए। अर्थात् कानून का उल्लंघन किए बिना कानून को सामाजिक परिवर्तन के अनुसार लागू किया जाना चाहिए, किन्तु, जनपद स्तरीय न्यायालय अपनी तकनीकी एवं परम्परागत रवैये के कारण न्याय करने में असफल रहे हैं, जिससे महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों के निस्तारण में विलम्ब हो जाता है। कभी–कभी विलम्ब से दिया गया निर्णय का कोई महत्व नहीं रह जाता है। कुछ विशेष वादों को छोड़कर

महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों में जनपद स्तरीय न्यायालयों के न्याय निर्णयन सराहनीय नहीं कहे जा सकते हैं। गुजरात में एक बलात्कार के वाद में जिला स्तरीय न्यायालय द्वारा 15 दिनों में ही वाद का निस्तारण कर सजा सुनाई गयी। यह एक अपवाद मात्र है। कुछ उदाहरण जो समाचार पत्रों एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में सुखियाँ बने, से स्पष्ट होता है कि हमारी जनपदीय न्याय व्यवस्था अत्यन्त जटिल, तकनीकी एवं परम्परागत है। जेसिका लाल हत्या काण्ड, प्रियदर्शिनी मट्टू बलात्कार एवं हत्याकाण्ड, नीतीश कटारा हत्याकाण्ड एवं चंण्डीगढ़ का रूचिका प्रकरण कुछ ऐसे ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिससे जिला स्तरीय न्यायालयों द्वारा विलम्ब से किए जाने वाले न्याय के अतिरिक्त तकनीकी रूप में न्याय किया जाना परिलक्षित हुआ है। कुछ प्रकरणों में वादों का निस्तारण तो हुआ लेकिन न्याय नहीं हुआ, जबकि न्यायालयों का मुख्य दायित्व न्याय करना है तथा वाद का निस्तारण न्याय प्रदान करने का रास्ता है।

जनपदीय न्यायालय को क्या करना चाहिए– महिलाओं से सम्बन्धित अपराध के मामले जनपदीय न्यायालयों तथा मुख्य रूप से परिवार न्यायालय में या फिर मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी/दण्डाधिकारी के समक्ष आते हैं। परिवार न्यायालय के समक्ष वादों में न्यायालय की विशेष भूमिका हो जाती है। किन्तु अन्तरिम भरण–पोषण प्रार्थना पत्र का निस्तारण करने में ही यदि 2–3 वर्ष या इससे अधि का समय लग जाता हो, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि परिवार न्यायालय या दण्डाधिकारी न्यायालय द्वारा अपने कर्तव्यों का निर्वाह ठीक प्रकार से किया गया। पारिवारिक एवं वैवाहिक वादों की प्रकृति को देखते हुए भारतीय विधि आयोग द्वारा इन वादों के निस्तारण हेतु एक अलग से न्याय–निर्णयन व्यवस्था की संस्तुति की गयी जो सिविल न्यायालय से भिन्न प्रक्रिया के तहत वादों का निस्तारण सुनिश्चित करे। किन्तु एक ही न्यायालय द्वारा भिन्न–भिन्न वादों में पष्थक प्रक्रिया के तहत कार्यवाही किए जाने की अपेक्षा से उपजी जटिलता के कारण परिवार न्यायालय अधिनियम पारित कर पृथक से परिवार न्यायालय का गठन किया गया।

परिवार न्यायालय अधिनियम के तहत वादों के निस्तारण को प्रमुखता देने की व्यवस्था नहीं है। यदि इस अधिनियम की प्रस्तावना की ओर ध्यान आकर्षित किया जाय तो यह स्पष्ट है कि सुलह समझौते की कार्यवाही द्वारा पक्षकरों को समझा–बुझाकर उजड़ते हुए परिवारों को बसाया जाय तथा वादों का निपटारा सुलह समझौते के आधार पर किया जाय। सबसे प्रशसनीय प्राविधान जो परिवार न्यायालय के अन्तर्गत है,

वह यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता एवं दण्ड प्रक्रिया संहिता के जटिल प्रक्रियात्मक प्राविधानों से परिवार न्यायालय बाधित नहीं है। परिवार न्यायाधीश स्वयं की बनायी गयी प्रक्रिया के तहत वादों का न्याय निर्णयन कर सकते हैं अर्थात् प्रत्येक परिवार न्यायालय या वह न्यायाधीश जिसे पारिवारिक एवं वैवाहिक वादों की जिम्मदारी दी गयी है, वह अपनी प्रक्रिया व्यवस्था न्याय प्रदान करने हेतु निर्धारित कर सकते हैं।

दुर्भाग्य से भारतवर्ष में ऐसे बहुत कम न्यायाधीश कार्यरत हैं जिनके द्वारा इन विषेश कानून व्यवस्था का लाभ उठाकर अपनी सृजित की गई प्रक्रिया के तहत विवादों को सुलझाया गया हो या सत्यता पर पहुंचने का प्रयास किया गया हो। प्रायः यह देखा गया है कि नोटिस जारी करने पर विलम्ब हो जाता है, चूँकि परिवार न्यायाधीश तकनीकी एवं रूढ़ीवादी तरीके से ही नोटिस की तामील सुनिश्चित करा रहे हैं। यदि काई परिवार न्यायाधीश उक्त वर्णित कानून व्यवस्था के तहत अपनी प्रक्रिया बनाकर नोटिस की तामील ई–मेल, मोबाईल द्वारा एस0एम0एस0, कोरियर के माध्यम से कराता है तो यह प्राचीन युग में उन्नत विज्ञान का न्याय प्रणाली में प्रवेश होगा। बतौर परिवार न्यायाधीश इस तरह की व्यवस्था को मेरे द्वारा सफलतापूर्वक अमल में लाया गया है। परिवार न्यायालयों एवं अन्य न्यायालयों जिनके द्वारा महिलाओं से सम्बन्धित वादों को निस्तारित करने का दायित्व है, को निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसके क्रियान्वयन से निश्चित रूप से महिला मानवाधिकार उत्पीड़न के वादों के निस्तारण में त्वरितता आयेगी एवं महिलाओं के उत्पीड़न के वादों की संख्या में भी कमी आयेगी।

1. महिलाओं से सम्बन्धित वाद जिनमें विधायिका, न्यायाधीश को अपनी प्रक्रिया अपनाये जाने हेतु अधिकष्त करता है तो उस न्यायाधीश का दायितव है कि वह एक तर्कसंगत एवं सुसंगत कार्य प्रणाली को अपनाते हुए प्रशासनिक आदेश या कार्यालय ज्ञाप के माध्यम से अपनी प्रक्रिया निर्धारित करें।
2. उक्त प्रक्रिया के तहत दूसरे पक्षकार को सूचना देने के सम्बन्ध में नवीनतम वैज्ञानिक प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। प्रशासनिक आदेश या कार्यालय ज्ञाप के माध्यम से ई0 मेल, मोबाईल पर एस0एम0एस0 या कोरियर के द्वारा नोटिस की तामीली किया जाना प्रक्रिया में सम्मलित होना चाहिए।
3. प्रारम्भ में प्रत्येक न्यायाधीश को अपनी मनोदशा को परिवर्तित करते हुए तकनीकी प्रक्रिया, कठोर आचरण एवं अपनी रूढ़िवादिता से बाहर आकर बदलते हुए सामाजिक परिवेश के अनुरूप न्याय निर्णयन सुनिश्चत करना चाहिए। यह केवल मात्र सामाजिक, विधिक व नैतिक प्रशिक्षण से ही संभव है।

4. न्यायाधीश का आचरण एवं कष्त इस तरह का होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति निडर होकर अपनी समस्या एवं व्यथा न्यायाधीश के समक्ष रख सके। यदि न्यायाधीश का आचरण इस तरह का है कि वादकारी अपनी समस्या रखने में डरते हो या हिकिचाते हों तो इसे न्यायिक स्वतन्त्रता नहीं कहा जा सकता।

5. न्यायाधीश का आचरण एवं कृत न्यायिक स्वतन्त्रता के अनुरूप होना चाहिए। इसका पैमाना यह है कि प्रत्येक न्यायाधीश जब वह न्याय कक्ष में बैठकर कार्य कर रहा हो उसके द्वारा अपनाई गयी प्रक्रिया के सम्बन्ध में किसी वादकारी द्वारा की गयी टिप्पणी या तर्कसंगत आलोचना से विचलित न हो। उस न्यायाधीश द्वारा इतनी पारदर्शिता बरती चाहिये कि उसके द्वारा अपनाई गयी प्रक्रिया व तौर–तरीकों को वादकारियों के लिए तर्कसंगत आलोचनाओं के लिये खुला रखना चाहिये। अर्थात प्रत्येक वादकारी के इस अधिकार की सुरक्षा न्यायाधीश को करनी चाहिए कि वह न्यायाधीश के रूप में अपनी आलोचना सुनने के लिये उस हद तक तत्पर एवं तैयार रहे जब तक कि न्यायालय की गरिमा ही खण्डित न हो रही हो। इससे न्यायपालिका में पनपे अहंकार का तो अंत होगा ही अपितु पूर्ण पारदर्शिता भी बनाई जा सकेगी।

6. महिलाओं से सम्बन्धित प्रत्येक वाद में न्यायाधीश को समयबद्ध तरीके से न्याय निर्णयन करना चाहिए। हाल ही में मा0 सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह मत अवधारित किया गया है कि समयबद्ध तरीकों से वादों का निस्तारण नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों एवं विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुरूप होना चाहिये। अतः न्यायाधीश को निर्धारित प्रक्रिया के तहत समयबद्ध तरीके से वादों का निस्तारण सुनिश्चित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त महिलाओं एवं वरिष्ठ नागरिकों से सम्बन्धित वादों को प्राथमिकता के आधार पर निस्तारण किया जा सकता है।

7. भारतीय संसद द्वारा आपराधिक विधियों को अनेक बार संशोधित किया गया है, किन्तु संशोधनों के उपरान्त उन प्रावधानों को विधयिका ने जिस आशय से उन्हें कानून में जोड़ा उस उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हेतु न्यायालय द्वारा लागू नहीं किया गया है, बल्कि न्यायालय की प्रक्रिया जैसे पहले चली आ रही थी, वैसे ही संशोधनों के बाद भी चलती रही। अतः प्रत्येक न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि वह संशोधित कानून एवं प्रक्रिया के तहत न्यायालय का संचालन करें।

8. प्रत्येक न्यायालय को उस महिला के प्रति जो न्यायालय में या तो वादकारी या गवाह के रूप में उपस्थित होती है, संवेदनशील होना चाहिए। बहुधा देखा गया है

कि महिलाओं के बयान लिखे जाते समय न्यायाधीश द्वारा वह सतर्कता नहीं बरती जाती, जिसकी विधि द्वारा अपेक्षा की जाती है। यहां पर मेरा यह मानना है कि न्यायाधीश स्वयं अपने हाथ से या लैपटॉप पर गवाह के बयान टाइप करें और यदि यह संभव न हो तो अपने स्टेनों से पक्षकारों के सामने गवाहों के सामने बयान अंकित करायें। दूसरे पक्षकारों को ऐसा कष्त करने की अनुमति न दी जाय जो महिलाओं की प्रतिष्ठा एवं गरिमा के अनुरूप न हो।

9. भरण–पोषण के वादों में प्रत्येक न्यायालय को चाहिए कि अन्तरिम भरण–पोषण प्रार्थना पत्र का निस्तारण वाद की प्रथम तिथि या अविलम्ब कर देना चाहिए। ऐसा होने पर पारिवारिक व वैवाहिक वादों की संख्या में कमी होगी। यदि पत्नी को त्वरित भरण–पोषण नहीं मिलता तो अन्य विधियों में प्रचलित व्यवस्था के तहत पक्षकारों द्वारा अन्य वाद योजित करने की सम्भावना पूर्ण रूप से बनी रहती है।

10. मा0 उच्च न्यायालयों को चाहिए कि वह जिला स्तरीय न्यायालयों को आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के अनुरूप न्याय निर्णयन करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करे तथा सामाजिक, विधिक एवं नैतिक प्रशिक्षण द्वारा न्यायाधीशों की मनोदशा को बदलने में मदद करें।

यदि उपरोक्त व्यवस्थानुसार जिला स्तरीय न्यायालयों में कार्य किया जाता है तो निश्चित रूप से जिला स्तरीय न्यायालयों में पारदर्शिता आयेगी एवं वादकारियों का विश्वास जिला स्तरीय न्यायालय में बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार होगा।

* * * * *

मानव अधिकार और महिला सशक्तीकरण

* संजय भास्कर

मानवाधिकार पुरुष व महिला दोनों वर्गों की दृष्टि से एक ही हैं, तो भी महिलाओं के परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों का प्रश्न इसलिए अलग से विचारणीय और महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि पुरुष सत्तात्मक विश्व में लिंग भेद की परम्परा सदियों से चली आ रही है। वस्तुतः मानव जगत् में यदि कोई सबसे प्राचीन असमानता अथवा विभाजक रेखा है तो वह लिंग भेद ही है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रंग आदि सभी विभाजक तथा भेदभावात्मक प्रक्रियाओं का जन्म इसके बाद ही हुआ है। लिंग भेद की अवधारणा ने मानव जीवन को दो ध्रुवों में बांटकर स्त्री व पुरुष को परस्पर पूरक होने का अवसर न देकर, स्त्री को पुरुष का अनुगामी घोषित किया। वास्तव में लैंगिक भेदभाव विकसित–अविकसित सभी प्रकार के समाज में स्थूल या सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहता है। लेकिन विभिन्न कारणों से 20वीं शताब्दी में महिलाओं की समानता तथा भूमिका के मुद्दे पर जागृति के स्वर लगभग प्रत्येक देश में उठे हैं। धर्म, राजनीति व सत्ता सभी महत्त्वपूर्ण बुनियादी पक्षों को इस सदी में यह स्वीकारना पड़ा है कि महिला का स्थान पुरुष के समान है और कोई भी ऐसा अधिकार, कानून या विधान नहीं हो सकता जो लिंग भेद के आधार पर स्त्रियों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक करार दे सके। महिलाओं के मानव अधिकार सर्वव्यापी मानव अधिकारों के अभिन्न, अंतरंग और अविभाज्य अंग हैं। इनको मानव अधिकार के मुद्दों से पृथक्, विभाजित या अलग नहीं किया जा सकता। महिलाओं के मानव अधिकार अभिन्न और अविभाज्य हैं, क्योंकि महिलाएँ, महिलाएँ होने के नाते, और मानव होने के नाते, विशिष्ट रूप में भेदभाव और समान तौर से संसार की विभिन्न जनसंख्या का अंग होने के नाते हर क्षेत्र के मानवाधिकार के मुद्दों से प्रभावित होती हैं। समाज में स्त्रियों के विकास एवं उन्नति में मानव अधिकार एक औजार की तरह हैं। आधुनिक राज्य में सत्ता का केन्द्रीकरण इतना अधिक है कि नागरिक अधिकारों के अभाव में मनुष्य के लिए आत्म–सम्मानपूर्वक जीवन जीना नामुमकिन है। किसी भी देश और समाज का विकास

* स्वतंत्र लेखक, सीकर, राजस्थान

तभी संभव है जब विकास की हर कड़ी बिना भेदभाव के सभी वर्गों के लिए लागू हो। इसलिए जब तक समान अवसरों को स्त्रियों के लिए व्यापक स्तर पर उपलब्ध नहीं कराया जाता तब तक कोई सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक उपलब्धि और राजनैतिक सत्ता समाज में विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकती। यही कारण रहा है कि महिलाओं की मौलिक स्वतंत्रता की पूर्णता संयुक्त राष्ट्र की प्राथमिकता रही है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने 1948 के घोषणा–पत्र में मानव अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए स्त्री–पुरुष दोनों को एक पूर्ण इकाई मानकर अग्रिम विकास का श्रीगणेश किया। आगे इसी दिशा में पहल करते हुए महिलाओं के प्रश्न पर लोगों को जागृत करने के लिए और राजनैतिक विचार–विमर्श की ओर अग्रसर होने के लिए महिला हैसियत आयोग (CSW) की स्थापना की गई। आयोग ने प्रत्येक व्यक्ति को घोषणा–पत्र में प्रकाशित समस्त अधिकारों व स्वतंत्रताओं का बिना किसी भेदभाव के अधिकृत करते हुए सभी को समान अधिकार दिया। महिलाओं के राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक अधिकारों को बढावा देने तथा महिलाओं के लिए विश्वव्यापी नीतियों का निर्माण करने हेतु व महिलाओं को उन्नति और विकास के उचित अवसर देने के लिए आयोग ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 1952 में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर आम सभा में समझौता हुआ, जिसमें कानून के अन्तर्गत समान राजनीतिक अधिकारों का प्रथम विश्वव्यापी अनुमोदन किया गया। 1957 में शादीशुदा महिलाओं की राष्ट्रीयता के संबंध में करार घोषित किया गया। 1967 में अंगीकृत ''महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन की उद्घोषणा'' महिलाओं के विषय में आरम्भिक और दूरगामी उपलब्धि थी।

सन् 1975 को अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाते हुए और 1975–84 को प्रथम महिला दशक के रूप में मनाते हुए काफी कार्यक्रम चलाये गये। महिला अधिकारों के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष 1979 का आया। 1967 में अंगीकृत उद्घोषणा के घोषणा–पत्र के सिद्धान्त के बाद एक अनिवार्य अन्तरराष्ट्रीय समझौता 1979 में आम सभा द्वारा अपनाया गया, जिसे ''महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन की उद्घोषणा'' अर्थात् ''कन्वेंशन ऑन एलिमिनेशन ऑफ डिसक्रिमिनेशन एगेंस्ट वीमेन (CEDAW सीडा)'' के नाम से जाना जाता है। इसमें प्रस्तावना तथा 30 धाराएँ हैं। यह समझौता विश्वव्यापी मानव अधिकार दस्तावेजों में सबसे आधुनिक है और व्यक्ति व समूह के प्रति अन्तरराष्ट्रीय नियमों को परिभाषित करता है। यह समझौता

परिभाषित करता है कि महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव किससे निर्मित होता है। यह इस भेदभाव को मिटाने की कार्यसूची भी तैयार करता है। इस समझौते की निपत्ति संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्यों में ही मूल रूप से निहित है, जिनमें वह मानव अधिकारों के प्रति व्यक्ति के मानवीय मूल्य और गरिमा में तथा स्त्री व पुरुष के समान अधिकारों के प्रति विश्वास व्यक्त करता है। यह दस्तावेज बराबरी के अर्थ का खुलासा करता है और बताता है कि इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने में समझौता केवल महिलाओं के अधिकारों पर कार्य व पहल करने और उन्हें उपभोग करने की गारण्टी दिलाने के लिए मजबूर करता है। 3 दिसम्बर, 1981 से इसके प्रभावी क्रियान्वयन की शुरुआत होते ही 20 दिनों के भीतर ही 20 सदस्य राष्ट्रों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिये।

इस समझौते के अनुच्छेद–1 में भेदभाव की परिभाषा कि ''ऐसी असमानता जो कि महिला व पुरुष का लिंग आधार पर बहिष्कार करे तथा जिसका उद्देश्य व प्रभाव मानव जीवन के किसी भी क्षेत्र में उसके द्वारा प्रयोग किये जाने वाले मूल अधिकारों का हनन करना हो'' दी गई और यह कहा गया है कि ''महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव'' मानव अधिकार और आर्थिक, सामाजिक, नागरिक, राजनीतिक या अन्य किसी क्षेत्र में मौलिक स्वतंत्रताओं का उल्लंघन है। यह समझौता पुरुष महिला समानता पर आधारित है। यह समझौता मुख्य रूप से निम्न बातें इंगित करता है–

1. महिलाओं को राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन, शिक्षा और रोजगार में समानता तथा अवसर की सुनिश्चितता कराने का आधार प्रदान करता है।
2. महिलाओं के संतानोत्पत्ति अधिकार, स्वयं की और उनके बच्चों के लिए राष्ट्रीयता प्राप्त करने, बदलने की स्वीकृति देता है।
3. स्वतंत्र राष्ट्र महिलाओं के देह व्यापार और उत्पीड़न के समस्त स्वरूपों के विरुद्ध कदम उठाने पर सहमति देता है।
4. राष्ट्र विधान सहित सभी उपायों पर सहमत है, जिससे महिलाएँ अपने समस्त मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं को प्राप्त कर सके।

सीडा के पश्चात् महिलाओं के मानवाधिकार की दिशा में दूसरा चरण 1993 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाया गया महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की समाप्ति पर घोषणा–पत्र है। 1993 में वियना में हुए विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में उन सभी मानवाधिकारों की पुनर्पुष्टि की जो 1948 के घोषणा–पत्र में शामिल है। 25 जून, 1993 को 171 राज्यों के

प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से मानवाधिकार पर विश्व सम्मेलन के लिए कार्य योजना और वियेना उद्घोषणा को अपनाया।

हमारे देश में महिला अधिकारों के प्रावधानों के अन्तर्गत संवैधानिक प्रावधान सर्वप्रथम रहे हैं। संविधान की उदेशिका में ''हम भारत के लोग.........संकल्प करते हैं'' के रूप में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिया गया है। इसके साथ ही साथ निम्न संवैधानिक प्रावधान दृश्टव्य हैं–

(1) विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद–14)

(2) धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नहीं (अनुच्छेद–15)

(3) लोक नियोजन में अवसर की समानता (अनुच्छेद–16)

(4) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद–19)

(5) मानव के अवैध व्यापार, बेगार और अन्य बलातश्रम का निषेध (अनुच्छेद–23)

(6) नीति निर्देशक तत्त्व (अनुच्छेद–39)

(7) समान न्याय व विधिक सहायता (अनुच्छेद–39क)

(8) काम की न्याय संगत एवं मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता का उपबन्ध (अनुच्छेद–42)

(9) निर्वाचक नामावली में भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद–325)।

इसके साथ ही कुछ अधिनियम भी हैं, जो निम्न हैं–

1. बाल विवाह अवरोध अधिनियम 1929 संशोधित 1976
2. चलचित्र अधिनियम 1952
3. विशेष विवाह अधिनियम 1954
4. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 संशोधन 2005
5. अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 संशोधित 1986
6. दहेज निवारण अधिनियम 1961 संशोधित 1986
7. गर्भ समापन अधिनियम 1971
8. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976

9. स्त्री अशिष्ठ रूपण (प्रतिबंध) अधिनियम 1986
10. सतीप्रथा निवारण अधिनियम 1987
11. पंचायत राज अधिनियम 1993
12. प्रसवपूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994 संशोधन 2002
13. घरेलू हिंसा (रोक) अधिनियम 2005
14. यौन अपराधों से बच्चों की सुरक्षा कानून 2012
15. क्रिमिनल लॉ (एमेन्डमेंट) एक्ट 2013
16. गोद लेने का हक संबंधी अधिकार 2010
17. घरेलू कामगार संबंधी अधिनियम
18. भरण–पोषण का अधिकार (धारा 125)
19. सेना में सेवा में स्थायी कमीशन संबंधी अधिकार
20. ससुराल में बहू का हक,
21. कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोक आदि अनेक अधिनियम भी हैं।

भारतीय दंड संहिता में भी धारा 304(ख) दहेज हत्या, धारा 354 में लज्जा भंग, धारा 366 में अपहरण, धारा 372 में बेचान, धारा 373 में वेश्यावृत्ति, धारा 376 में बलात्कार, धारा 493 में धोखाधड़ी से वैवाहिक संबंध, धारा 494 में विवाह शून्य, धारा 495 से 498 तक वैवाहिक धोखाधड़ी, जान–बूझकर गैर कानूनी विवाह, अनैतिक संबंध आदि, धारा 498(क) दहेज क्रूरता, धारा 509 शब्द–फब्तियाँ जैसे कृत्य हेतु दण्ड प्रावधान हैं। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 100 में सातवां क्लॉज (तेजाब संबंधित चोट आदि) जोड़ा गया और धारा 166 में 166ए व 166बी जोड़े गए।

इस प्रकार हमारे संवैधानिक व कानूनी प्रावधान यह इंगित करते हैं कि महिलाओं के सामाजिक सशक्तीकरण के लिए हमने उपरोक्त काफी प्रावधान किए हैं। हम जानते हैं कि महिलाओं के विकास में उनका आर्थिक और शैक्षिक रूप से सशक्त होना बहुत ज्यादा जरूरी है। हमारे संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत धारा 38 ''सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय प्राप्ति के लिए है तो धारा 39, 42 और 43 के अन्तर्गत राज्य ऐसी विधि पारित कर सकता है, जिससे समान कार्य के लिए समान वेतन, कार्य की

औचित्यपूर्ण और मानवीय परिस्थितियाँ, मातृत्व अवकाश व लिविंगवेज स्तरीय जीवन जैसी होनी सुनिश्चित की जा सके। आर्थिक सशक्तीकरण के क्षेत्र में इक्वल रेम्यूनरेशन एक्ट 1976 (संशोधन 1987), मातृत्व अधिनियम 1961, मिनिमम वेजिस एक्ट 1968 आदि अधिनियमों के साथ ही महिला सशक्तीकरण, जेंडर मेनस्ट्रिमिंग और जेंडर समानता दृष्टिकोण जैसी रणनीतियां भी अपनाई गई हैं। जेंडर बजटिंग के विस्तृत निर्देश लागू किए व 'नेशनल पॉलिसी फार एम्पावरमेंट ऑफ विमैन 2001 में बजट प्रक्रिया में जेंडर परसपेक्टिव अपनाने पर बल दिया गया। राष्ट्रीय नीति 2001 के अन्तर्गत ऐसा आर्थिक व सामाजिक वातावरण निर्माण करने पर बल दिया गया, जिससे नारी अपना पूर्ण विकास कर सके। विश्व में भारत सबसे विस्तृत व व्यापक माइक्रो फाइनेंस कार्यक्रम चलाने वाला देश है। महिला स्वयं सहायता समूह (SHG) व राष्ट्रीय महिला कोष (RMK) आदि महिला सशक्तीकरण में मील के पत्थर हैं।

महिलाओं का सामाजिक व आर्थिक सशक्तीकरण तभी सुचारू रूप से गति पकड़ सकता है जबकि उनका शैक्षिक सशक्तीकरण सुनिश्चित हो। महिला सशक्तीकरण में शिक्षा का अहम स्थान है। यूरोपियन परिषद् (1998) ने किसी राष्ट्र में महिला और पुरुषों की राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन में समान सहभागिता, आर्थिक स्वायत्तता और जैंडर समानता की प्राप्ति के लिए शिक्षा को प्रमुख व यूनिवर्सल लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है (वेल्बी : 2005)। शिक्षा सुदृढ़ और विकसित राष्ट्र का स्तम्भ है। राष्ट्र के विकास और सामाजिक परिवर्तन के लिए महिलाओं को शिक्षित करना अनिवार्य है। यह माना जाता है कि यदि तुम एक पुरुष को शिक्षित करोगे तो केवल एक व्यक्ति को ही शिक्षित करोगे, लेकिन यदि तुम एक महिला को शिक्षित करोगे तो सारे परिवार को शिक्षित करोगे। अध्ययन से यह पता चलता है कि जिन राष्ट्रों में महिलाओं का शिक्षा का स्तर ऊँचा है, वहां आर्थिक विकास तेजी से हो रहा है। जीवन स्तर में सुधार हुआ है तथा जनसंख्या वृद्धि में कमी आई है (ई. एण्ड एस.सी., 2006)। शिक्षा का अधिकार अन्य मानवीय अधिकारों के साथ अटूट रूप से जुड़ा हुआ है, जैसे स्वतंत्रता का अधिकार, काम प्राप्त करने का अधिकार, भेदभाव से आजादी का अधिकार–शिक्षा, ज्ञान और सूचना की बड़ी दुनिया के दरवाजे खोल देते हैं–जो अन्यथा, महिलाओं की पहुंच से बाहर होते हैं। शिक्षा उनको यह अवसर देती है कि वे अपने अधिकारों की मांग कर सकें, जेंडर भेदभाव का सफलतापूर्वक विरोध कर सकें और अन्य महिलाओं को उनके अधिकारों के संरक्षण में पूरा सहयोग दे सकें। महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए किए जा रहे प्रयत्नों में शिक्षा की केन्द्रीय भूमिका है। शिक्षा का महत्त्व यहीं तक सीमित नहीं

है कि उन्हें साक्षर बनाया जाये बल्कि उनमें व्यावसायिक, तकनीकी योग्यता का विकास हो, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों में सुधार हो सके (डी. डब्ल्यू.सी.डी. : 2005)। महिलाओं की शिक्षा के उच्च स्तर व अनेक सामाजिक संकेतकों के सुधार में पारस्परिक संबंध हैं, जैसे महिलाओं के शिक्षित होने पर जन्म दर में कमी होना, बाल–मृत्यु दर (प्डत) में कमी आना तथा जीवन प्रत्याशा में वृद्धि होना आदि (एन. आई.पी.सी.डी. : 2005)।

मानव अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र 1948 के अन्तर्गत शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति के मूल अधिकार के रूप में स्वीकार करते हुए इस प्रकार व्यवस्था की गई है कि लिंग भेद किए बिना सभी को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त हों। मानव अधिकारों की प्रथम प्रसंविदा में भी विभिन्न धाराओं में शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है। बच्चों के मानव अधिकार की प्रसंविदा (CRC) में भी शिक्षा के अधिकार हेतु धाराएँ हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में आयोजित डाकर सम्मेलन 2000 में सबके लिए शिक्षा (EFA) का लक्ष्य रखा गया था। डाकर लक्ष्य में केवल सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा ही नहीं थी बल्कि इसमें जेंडर समानता स्थापित करना भी था। डाकर लक्ष्य निम्न प्रकार से थे–

1. प्रारम्भिक बाल सुरक्षा तथा शिक्षा का व्यापक विस्तार।
2. 2015 तक सभी बच्चों को विशेष रूप से बालिकाओं की पूर्ण, निःशुल्क अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा की व्यवस्था। एम.डी.जी. गोल 2 : अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करना।
3. सभी युवक और वयस्कों की साक्षरता आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त शिक्षा तक समान पहुंच। एम.डी.जी. गोल 3 : जेंडर समानता व महिला सशक्तीकरण का संवर्धन करना।
4. 2015 तक वयस्क साक्षरता के स्तर में 50 प्रतिशत तक सुधार का लक्ष्य प्राप्त करना।
5. 2005 तक प्राइमरी व सेकेंडरी शिक्षा में जेंडर असमानता को दूर करना व 2015 तक शिक्षा में जेंडर समानता को प्राप्त करना।
6. गुणवत्तीय शिक्षा के सभी स्तरों में सुधार, सभी के लिए विशिष्टता की व्यवस्था।

हम देख रहे हैं कि डाकर लक्ष्य–2 लड़कियों की 2015 तक गुणवत्ता शिक्षा के लिए है तो चतुर्थ लक्ष्य महिलाओं के लिए शिक्षा है और पांचवा लक्ष्य शिक्षा के क्षेत्र में जेंडर

समानता प्राप्त करने का लक्ष्य है जो मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स के भी दो प्रमुख लक्ष्य हैं। शेष मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स निम्न हैं–

1. तमाम सदस्य राष्ट्र गरीबी और भूखमरी दूर करेंगे।
2. शिशु मृत्यु दर को 2/3 घटा देंगे (2015 तक)।
3. मातृ मृत्यु दर को 2/3 घटा देंगे (2015 तक)।
4. शिक्षा में जेंडर समानता को बढ़ावा।
5. महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा।
6. सुरक्षित पर्यावरण को बढ़ावा (HIV, AIDS)।
7. पर्यावरण विशयक मामले यथा सुरक्षित जल, सुरक्षित स्लम आदि।
8. P–त्रयी (पब्लिक, प्राइवेट, पार्टनरशिप) को बढ़ावा।

भारतीय सन्दर्भ में भी हमारे संविधान के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई। शिक्षा के अधिकार को धारा 21 के अन्तर्गत जीवन का अधिकार समझते हुए हमारे 86वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम 2002 के द्वारा 2–14 वर्ष आयु समूह के बच्चों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार की श्रेणी में रखा गया है। शिक्षा के प्रसार के लिए सर्वशिक्षा अभियान जैसे अभियान भी चलाए गए हैं, जो वास्तव में डाकर लक्ष्य व मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स के अन्तर्गत ही हैं, जिनमें शिक्षा के साथ–साथ जेंडर समानता को परिपक्वता देना है जो अंततः महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा है।

महिला सशक्तीकरण में हमने विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों को अंगीकार किया है। हमारे संविधान में विभिन्न प्रावधान हैं और समयानुसार विभिन्न अधिनियम भी आये हैं। महिला सशक्तीकरण के विभिन्न उपकरणों की क्रियान्विति के लिए सरकारी तंत्र के निम्न विभाग व मंत्रालय कार्यरत रहे हैं–

(1) महिला एवं बाल विकास विभाग

(2) प्रारम्भिक शिक्षा विभाग

(3) परिवार कल्याण विभाग

(4) श्रम मंत्रालय

(5) सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग

(6) सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय।

देश में लगभग 30,000 से अधिक स्वयंसेवी संगठन भी महिला सशक्तीकरण के कार्य से जुड़े हुए हैं। महिला सशक्तीकरण को दिशा देने के लिए विभिन्न राष्ट्रीय नीतियाँ, यथा–राष्ट्रीय बाल स्वास्थ्य नीति 1993, राष्ट्रीय पोषाहार नीति 1993 आदि बनी हैं। देश में 1992 में राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया। इसी प्रकार 1995 में महिला राष्ट्रीय नीति के प्रारम्भिक प्रारूप में महिलाओं की राजनैतिक निर्णय की प्रक्रिया में साझेदारी, महिलाओं–बालिकाओं के साथ होने वाले भेदभाव की समाप्ति, महिलाओं के उत्थान के लिए समुचित मशीनरी का विकास, महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, सम्पत्ति सूचना में बराबरी का अधिकार और लिंग आधारित जनगणना का विश्लेशण कर समाज में स्थापित कमियों को दूर करने के बिन्दु निर्धारित किये गए। वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया। वर्ष 2010 में अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च को राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण मिशन की स्थापना की गई। इस समय देश में महिला सशक्तीकरण हेतु केन्द्र सरकार द्वारा चलाई गई विशेष योजनाएँ निम्नानुसार हैं–

(1) ड्वाकरा योजना (1982)

(2) न्यू मॉडल चर्खा योजना (1987)

(3) नोराड प्रशिक्षण योजना (1989)

(4) महिला समाख्या योजना (1989)

(5) मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम (1992)

(6) किशोरी बालिका योजना

(7) महिला समृद्धि योजना (1993)

(8) राष्ट्रीय महिला कोष

(9) राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (1994)

(10) इन्दिरा महिला योजना

(11) मार्जिन मनी ऋण योजना (1995)

(12) ग्रामीण महिला विकास परियोजना (1996)

(13) राज राजेश्वरी बीमा योजना (1997)

(14) स्वास्थ्य सखी योजना (1997)

(15) बालिका समृद्धि योजना

(16) स्टैप योजना

(17) सबला योजना (राजीव गांधी किशोरी सशक्तीकरण योजना)

(18) पहल (इन्दिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना)

(19) स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना

(20) स्वयं सहायता समूह (एस एच जी) योजना।

सभी योजनाओं का विस्तृत विवरण न देकर केवल विश्व के सबसे विस्तृत और व्यापक माइक्रो फाइनेंस कार्यक्रम की एक झलक ही पर्याप्त है, जिसके तहत महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वयं सहायता समूह गठित कर आय उन्मुख उद्योग संचालित कर स्वावलम्बी बनाया जा रहा है। राष्ट्रीय महिला कोष के साथ मिलकर सरकार इन समूहों को सहयोग दे रही है। मार्च 2004 तक 1220 मिलियन रुपये की जारी राशि से लगभग 5,07,770 महिलाएँ लाभान्वित हो चुकी हैं।

महिला सशक्तीकरण के इन विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय समझौतों के अंगीकरण से, हमारे स्वयं के विभिन्न वैधानिक प्रावधानों से एवं विभिन्न योजनाओं की क्रियान्विति से होने वाले महिला सशक्तीकरण के सम्पूर्ण परिदृश्य को तो इन पृष्ठों में नहीं समेटा जा सकता पर एक–दो उदाहरणों के साथ विभिन्न प्रकार के सशक्तीकरण पर एक नजर जरूरी डाली जा सकती है। सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सशक्तीकरण की कुछ गतिविधियाँ निम्न प्रकार हैं–

सामाजिक सशक्तीकरण–सामाजिक सशक्तीकरण के अन्तर्गत उत्पीड़ित महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्वास करने के उद्देष्य से सरकार द्वारा जिला स्तर पर अल्पावास गृह की स्थापना की जा रही है। अनैतिक व्यापार रोकथाम अधिनियम, 1896 तथा हिंसा के विरुद्ध संरक्षण अधिनियम, 2005 के अनुसार महिलाओं एवं किशोरियों को खरीद–फरोख्त से बचाने तथा घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं को संरक्षण एवं सुरक्षा देना अल्पावास गृह का मुख्य उद्देश्य है। इसके अंतर्गत उदाहरणार्थ अभी हाल ही में बिहार सरकार ने विशेष रूप से कामकाजी महिलाएँ, जिन्हें अपने कार्य के दौरान 5 वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चों को कार्यस्थल पर रखने में सुविधा होती है, जिनके परिवार में बच्चों की देखरेख करने वाला उनके सिवाय कोई नहीं है, राज्य सरकार ने वैसे बच्चों के लिए राज्य में 100 पालनाघर खोले हैं, जिनमें स्वादिष्ट एवं पौष्टिक अल्पाहार, अन्य उपकरणों की व्यवस्था तथा खिलौने एवं खेलने के अन्य साधनों के साथ–साथ मनोरंजन का भी प्रावधान किया गया है। बाल उत्तरजीविता और सुरक्षित मातृत्व कार्यक्रम व समेकित बाल विकास जैसे विश्व के सबसे बड़े कार्यक्रम भी देश भर में चल रहे हैं। देश के विभिन्न राज्यों में संचालित महिला हेल्पलाइन में प्राप्त शिकायतों के द्वारा हिंसा की शिकार महिलाओं तक पहुंचने की कोशिश की जाती है। समाज में पीड़ित महिलाओं को मनोवैज्ञानिक परामर्श भी दिया जाता है। महिलाओं में कानून का व्यावहारिक ज्ञान बढाने के लिए सामाजिक जागरूकता अभियान चलाया जा रहा है। नुक्कड़ नाटकओं के जरिये उचित वातावरण के निर्माण के उद्देश्य से दहेज उत्पीड़न,

ट्रेफिकिंग, बाल–विवाह, भ्रूण हत्या, कानूनी साक्षरता, आर्थिक स्वावलम्बन के मुद्दे पर लोक कलाओं की प्रस्तुति करके महिलाओं को सामाजिक रूप से सशक्त किया जा रहा है।

शैक्षिक सशक्तीकरण : भारत के विकास में महिला साक्षरता का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि पिछले कुछ दशकों से ज्यों–ज्यों महिला साक्षरता में वृद्धि हुई है, भारत के विकास के पथ पर अग्रसर हुआ है। इसने न केवल मानव संसाधनों के अवसर में वृद्धि की है बल्कि इससे घर के आँगन से ऑफिस के कारीडोर तक के कामकाज और वातावरण में भी बदलाव आया है। महिलाओं के शिक्षित होने से न केवल बालिका–शिक्षा को बढावा मिला, बल्कि बच्चों के स्वास्थ्य और सर्वांगीण विकास में भी तेजी आई है। महिला साक्षरता से एक बात और भी सामने आई है कि इससे शिशु मृत्युदर में गिरावट आ रही है और जनसंख्या नियंत्रण को भी बढावा मिल रहा है हालांकि इसमें और प्रगति की गुंजाइश है। इस हेतु ऑपरेशन ब्लेक बोर्ड, जिला प्रारम्भिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, पौषणिक कार्यक्रम, डीपीईपी, एनएफई आदि कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं।

आर्थिक सशक्तीकरण : विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं के अन्तर्गत कई रोजगारपरक एवं आमदनीजनक कार्यक्रम, यथा–स्टैप, नोराड, द्वाकरा आदि प्रारम्भ किये गए हैं। स्वयं सहायता समूह योजना बहुत कारगर रही है। स्वयं सहायता समूह में कार्य करने के कारण महिलाओं के आत्मविश्वास, स्वाभिमान, आत्म–गौरव इत्यादि में वृद्धि होती है, क्योंकि घरेलु परिधि के बाहर एक समूह के रूप में छोटी–छोटी बचत इकट्ठी कर, ऋण लेकर, लघु उद्यम स्थापित कर समूह की बैठकों की कार्रवाई संचालित कर महिलाएँ आत्मनिर्भर हुई हैं। स्वयं सहायता समूह के सदस्य के रूप में काम करने के कारण महिलाओं की स्वयं निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है। महिलाओं द्वारा बैंकों के साथ लेन–देन, कागजी कार्रवाई इत्यादि करने से उनमें आत्मविश्वास पनपता है। समूह की गतिविधियों के संचालन, बैठकों में भाग लेने से महिलाओं की स्वनिर्णय की क्षमताओं का विकास होता है, जिससे धीरे–धीरे परिवार और समुदाय में उनकी कोशिश को आवाज मिलती है और समूह के सदस्य के रूप में महिलाओं की गतिशीलता बढ़ जाती है। घर की चार दीवारी में कैद रहने वाली महिलाएँ इन समूहों के माध्यम से पंचायत संस्थाओं, बैंक, सरकारी तंत्र, गैर–सरकारी संगठनों, सूक्ष्म वित्त संस्थानों इत्यादि के साथ सम्पर्क में आती हैं, जिससे उनके पास अधिक

सूचना एवं संसाधन उपलब्ध होते हैं। सूचना एवं संसाधनों की उपलब्धता महिलाओं को सषक्त करती है। स्वयं सहायता समूह के सदस्य के रूप में महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर बनती हैं, जिससे परिवार में उनकी स्थिति में सुधार होता है तथा इस प्रकार उपलब्ध धन का वे अपने निजी कार्य अथवा बच्चों की शिक्षा व स्वास्थ्य इत्यादि में उपयोग करती हैं। अध्ययनों से स्पष्ट है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर महिलाओं के साथ घरेलु हिंसा के मामले कम होते हैं। हमारे देश में प्रायः महिलाएँ सिलाई, कढाई, पापड़ बनाने, अचार बनाने जैसे कई कार्य करती हैं किन्तु इन्हीं कार्यों को स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक आधार पर किया जाता है। इन समूहों को सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों द्वारा कौशल प्रशिक्षण भी दिया जाता है, जिससे महिलाओं की स्वयं की व्यक्तिगत या सामूहिक शक्ति बेहतर करने की क्षमता का विकास होता है।

सांस्कृतिक सशक्तीकरण : महिला सशक्तीकरण के अन्तर्गत महिलाओं के सांस्कृतिक सशक्तीकरण के लिए मुख्य रूप से मेलों का आयोजन किया जाता है, जिसका उद्देश्य परम्परागत कौशल तथा लोक चित्रकला, लोक नाट्यकला, लोकगीत आदि को जीवित रखना है। स्वयं सहायता समूह के द्वारा उत्पादित वस्तुओं का प्रदर्शन करना भी मेलों का एक अहम उद्देश्य होता है। विलुप्त होती सांस्कृतिक परम्पराओं और इन कलाओं से जुड़े समुदायों के बीच कला की व्यावसायिक गुणवत्ता को बढाकर तथा आजीविका के साथ जोड़कर राष्ट्रीय पहचान स्थापित करना इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।

राजनैतिक सशक्तीकरण : महिलाओं के उत्थान के लिए सामाजिक व आर्थिक सशक्तीकरण पर्याप्त नहीं है बल्कि राजनीतिक सशक्तीकरण सबसे महत्त्वपूर्ण है। स्वयं सहायता समूहों को महिलाओं के राजनैतिक सशक्तीकरण के रूप में भी देखा जा सकता है। हालांकि पंचायतों में महिलाओं को एक तिहाई आरक्षण के फलस्वरूप गांव की सत्ता में महिलाओं को भागीदारी का अवसर मिला है। इस प्रकार से सत्ता में भागीदारी के फलस्वरूप महिला समूह एक ऐसे संगठन के रूप में उभर कर आए, जिनमें महिलाएँ गांव के विकास के बारे में सोचने लगीं। ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं जब महिला प्रतिनिधियों ने ग्रामीण समस्याओं पर प्रशासन का ध्यान आकर्षित किया और उन्हें हल करने की पहल की हालांकि अभी भी संसद और विधानसभाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना शेष है।

इतने अधिकार और अधिनियमों के उपरान्त भी देश की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने वाले श्रमिक वर्ग की ग्रामीण महिलाओं की स्थिति पर्याप्त ठीक नहीं है। कार्यक्षेत्र पर छेड़छाड़ से लेकर कम मजदूरी तक का उत्पीड़न सहने वाली महिलाओं में कृषि क्षेत्र की ग्रामीण महिलाएँ सबसे अधिक हैं। औरतों की भलाई के लिए जो भी कानून बने हैं, उसकी जानकारी इन्हें होती ही नहीं है। हालांकि पंचायतों में औरतों की पहुंच सम्भव हो सकी है, फिर भी बड़ी संख्या में वे शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पोषण से वंचित हैं। इस दृष्टिकोण से देखा जाये तो इन महिलाओं को विकास, पर्यावरण व स्वास्थ्य आदि के सवालों पर भी जागृत एवं संगठित किया जाना चाहिए।

कटु सत्य यह है कि स्त्रियों के प्रति किये गये अपराध चरम–सीमा पर हैं। तीन महीने की बच्ची से लेकर साठ वर्ष की वृद्धा तक बलात्कार की शिकार होती हैं। महिला से जुड़े अपराधों में बलात्कार तथा दहेज हत्या तो है ही, तमाम और भी मसले हैं, जिन्हें यह समाज नजरअन्दाज कर स्त्री के मानवाधिकारों के हनन में सहयोग देता है। काश, उसे पहले पूर्ण इन्सान होने का, पुरुषों के बराबर बचपन जीने या पढ़ने, अपनी मर्जी के कपड़े पहनने, वर चुनने, नौकरी करने या न करने, बच्चे पैदा करने या न करने का, घर के बाहर बिना किसी डर या भय के चलने का अधिकार दे दिया जाता तो आज स्त्री सशक्तीकरण जैसे मुद्दे उत्पन्न ही नहीं होते। ''ट्रेन में सफर करते वक्त सहयात्रियों के बीच स्वयं को अकेली स्त्री यात्री होना पाकर असुरक्षा बोध से सनसना उठना दरअसल पूरी सामाजिक व्यवस्था पर एक सवाल है।

परम्पराएँ समाज आधारित होती हैं जबकि भारत का समाज जाति और धर्म पर आधारित है, पितृसत्तात्मक भी है। यह समाज कानून भी ऐसा बनाता है, जिससे स्त्रियां ज्यादा लाभन्वित न हो सकें। 2005 में पारित घरेलू हिंसा से संरक्षण अधिनियम के तहत स्त्री पुलिस स्टेशन जाकर पति या घर के अन्य सदस्यों के खिलाफ रिपोर्ट कर सकती है, पर सोचने वाली बात यह है कि इस कदम के बाद स्त्री के सामने अन्य विकल्प क्या होगा? व्यभिचारी व्यक्ति की पत्नी को पति पर मुकदमा करने का अधिकार नहीं है, वह सिर्फ अलग होकर गुजारा भत्ता मांग सकती है, या तलाक ले सकती है। जबकि ऐसे सैकड़ों मुकदमे हैं, जिनमें पति ने पत्नी के अनैतिक सम्बन्ध के सन्देह के आधार पर या ठोस सबूतों के आधार पर पत्नी की हत्या कर दी। बहुत से मुकदमे ऐसे भी हैं, जिनमें पति खुद व्याभिचार में लिप्त है पर विरोध करने पर वह पत्नी की हत्या कर देता है। दहेज हत्याएं सामाजिक संरचना में अन्याय की द्योतक हैं जो प्रतिवर्ष अपनी संख्या में

वृद्धि कर रही हैं। हमारे समाज का बड़ा हिस्सा इस संकट से आँखें मूंदे हुए है। हमारे मोहल्ले–पड़ोस और घर–कुटुम्ब में स्त्रियां जलती रहती हैं और हम इसे 'व्यक्तिगत मामला' समझते हैं। समाज को यह समझना चाहिए कि स्त्रियां मानव जाति का लगभग आधा हिस्सा हैं और पूरे वर्ग, पूरी जाति के मसले व्यक्तिगत नहीं होते। ये हत्याएं परिवार में मानवीय संबंधों के चिंताजनक विघटन और मानवता में भारी गिरावट के चिह्न हैं। मानवीयता में गिरावट का लज्जास्पद नहीं, घृणास्पद पहलू यह है कि लिंग का पता करके बेटियों को कोख में मार देने की वैज्ञानिक प्रथा हमारे सांस्कृतिक देश हिन्दुस्तान में इन दिनों जोरों पर है। हालांकि इसे रोकने के लिए कानून बने हैं, मगर चिकित्सकों और पालकों की सांठ–गांठ से सब सम्भव है। जाहिर है कि धर्म, परम्पराओं के नाम पर हम कानून और स्त्री के मानवाधिकारों का हनन कर रहे हैं जबकि स्त्री सशक्तीकरण हेतु एक जरूरी तत्त्व है–लैंगिक सन्तुलन। भ्रूण हत्या से हमारे समाज में लैंगिक विषमता पनप रही है। यदि कन्या भ्रूण हत्या, निर्वस्त्रीकरण और डायन उत्पीड़न की घटनाओं को एक साथ जोड़कर देखें तो लगता है कि हम मानव मादा के केवल 17–35 आयु वर्ग को पनपने देना चाहते हैं।

विवाह संस्था को लें तो और ही सच्चाई सामने आयेगी। आठ साल के लड़के की शादी 18 वर्ष की लड़की से किये जाने की आदिवासी परम्परा वास्तव में परम्परा के नाम पर परिवार के बड़ी उम्र के पुरुषों द्वारा महिला शोषण ही है। विवाह के संबंध में हम जानते हैं कि यह प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला होता है। अपने विवाह का निर्णय स्वयं लेना यह तो अन्तरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त मानवाधिकार है। ज्ञातव्य है कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा–1948 मानवाधिकारों के संबंध में प्रथम अन्तरराष्ट्रीय दस्तावेज है, जिसका घोषणा–पत्र सभी वयस्क स्त्री–पुरुषों को बिना किसी जाति, धर्म या राष्ट्रीयता की रुकावटों में आपस में सवतंत्र सहमति से विवाह करने तथा परिवार स्थापित करने का अधिकार प्रदत्त करता है। उत्तरप्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली आदि राज्यों में बढ़ रही 'ऑनर किलिंग या सम्मान हेतु हत्या' स्त्री के इस मानवाधिकार का हनन नहीं तो और क्या है? सम्मान के लिए हत्याओं एवं प्रताड़नाओं के वास्तविक आंकड़े प्राप्त नहीं होते हैं, क्योंकि अधिकतर मामले सामान्य दुर्घटना अथवा आत्महत्या के रूप में वर्गीकृत कर दिये जाते हैं। हरियाणा, पंजाब, उत्तरप्रदेश के गांवों में लड़कियों के प्रेम–विवाह करने पर की जाने वाली 'ऑनर किलिंग' के पीछे 'जाति' ही प्रमुख है। दूसरी जाति के लड़के से प्रेम हो गया तो पंचायत फैसला देती है–दोनों को मार दो।

भ्रूण हत्या हो या सम्मान की रक्षा के नाम पर हत्या हो या फिर दहेज हत्या या तेजाब फैंकने की घटना सभी पितृ सत्तात्मक व सामंतवादी मानसिकता की उपज हैं। ऐसी मानसिकता लिंग–भेद व सामाजिक विशमता को बढावा देती है जो स्पष्टतः महिलाओं के मानवाधिकारों का उल्लंघन है। इस प्रकार की नकारात्मक स्थिति तोड़ने के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, बाल अधिकार आयोग, राज्यों के महिला आयोगों द्वारा प्रयत्न किए जा रहे हैं। अन्तरराष्ट्रीय समझौता 'सीडा' भी 1993 से हमारे देश में लागू किया जा चुका है। यह भी देखा गया है कि स्त्री संगठनों और स्वयंसेवी संगठनों के बीच तालमेल भी बढ़ा है। स्त्रियों में जागरूकता भी बढ़ी परन्तु उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज व क्रियान्विति अभी आन्दोलन का रूप नहीं ले पाई है।

* * * * *

मीडिया में दलित, वंचित और आदिवासी

* राकेशरेणु

मीडिया में दलितों, वंचितों और आदिवासियों की स्थिति पर चर्चा से पूर्व, आइये इसी–वर्ष सितंबर–अक्तूबर में घटी कुछ घटनाओं पर नजर डालें। आठ अक्तूबर को बिहार में भोजपुर जिले के सिकरहटा थाना क्षेत्र में कबाड़ बीनने वाली पांच महादलित बच्चियों व किशोरियों के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना घटी। पुलिस ने काफी ना–नुकुर के बाद गुस्साई भीड़ के दवाब में घटना के चौबीस घंटे बाद एफआईआर दर्ज की। अंग्रेजी दैनिक 'द हिंदू' ने इसकी छोटी–सी खबर 11 अक्तूबर को जबकि हिंदी के सबसे संजीदा माने जाने वाले अखबार 'जनसत्ता' ने 16 अक्तूबर को प्रकाशित की। राष्ट्रीय कहे जाने वाले दिल्ली से प्रकाशित किसी भी अन्य समाचार पत्र ने इस कुत्सित घटना को प्रकाशन योग्य समझा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'हिंदू' और 'जनसत्ता' दोनों ने खबर के बासीपन को छुपाने के लिए इसके आरंभ में डेटलाइन नहीं दी। इसके प्रायः दस दिन पहले सितंबर के अंतिम सप्ताह के दौरान एक अन्य घटना ओडिशा के गंजम जिले की है। यहां सनखीमुंडी ब्लॉक के सुमंतापुर गांव में उच्च जाति के लोगों ने दलितों के नलके से पानी भरने पर रोक लगा दी। बेरहामपुर शहर से यह गांव लगभग 40 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। लेकिन इस खबर को मीडिया, खासकर हिंदी मीडिया ने कोई तवज्जो नहीं दी। इसे विस्तार से प्रकाशित किया अंग्रेजी अखबार 'द हिंदू' ने जिसका ओडिशा में कोई संस्करण नहीं है।

आजादी के 67 सालों बाद जब सरकारें देश को विश्व की आर्थिक शक्ति बनाने के सपने देख और दिखा रही हैं, न केवल गांवों और भीतरी इलाकों में, बल्कि शहरों और राजधानियों में भी अमानवीय जातिवादी हिंसा और छूआछूत विद्यमान है और एक बड़ी जनसंख्या के साथ दोयम दर्जे के नागरिक सरीखा व्यवहार जारी है। यह भेदभाव उनके रंग, नाक–नक्श, कपड़े–लत्ते, जीवन शैली, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार भी है

---

* *वरिष्ठ पत्रकार एवं मीडिया विश्लेषक, दिल्ली*

लेकिन उनके मूल में जातिवादी सोच और अपने को बौद्धिक और सामाजिक स्तर पर श्रेष्ठ मानने की प्रवृति ही है। जब तक कोई हो–हल्ला न हो, व्यवस्था इसे चुपचाप देखती रहती है और घटनाएं मीडिया की निगाह से ओझल होती रहती हैं। सुमंतापुर की घटना वाले दिन ही बिहार के मधुबनी जिले में घटी एक अन्य घटना को मीडिया ने पर्याप्त कवरेज दी। यह घटना राज्य के दलित–आदिवासी मुख्यमंत्री जीतनराम मांझी से जुड़ी थी। श्री मांझी के अनुसार जिले के तरही गांव में एक मंदिर में उनके दर्शन कर लौटने के बाद मंदिर के फर्श और प्रतिमाओं को धोया गया। इस दूसरी घटना को अखबारों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में क्यों जगह मिली? इसलिए नहीं कि यह किसी दलित/आदिवासी के अधिकारों के हनन का मामला था, बल्कि इसलिए कि घटना राज्य के मुख्यमंत्री के साथ घटित हुई थी। अन्यथा इसकी भी वैसी ही अनदेखी की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। इस तरह की अनेकानेक घटनाओं की जानकारी दलित–आदिवासियों द्वारा निकाले जाने वाली भंगुर पत्र–पत्रिकाओं में मिल सकती है।

बहानो का सच

मीडिया प्रबंधकों द्वारा प्रायः इन घटनाओं के दूरदराज के क्षेत्र में घटित होने के कारण छूट जाने की संभावना की ओट ली जाती है। लेकिन अखबारों और चौनलों से उम्मीद की जाती है कि वे केवल प्रमुख और शासकों की ही नहीं 'गौण' और ''सितों'' की खबर भी दें जिसके लिए जरूरी है कि गांव–देहात में नहीं तो कम–से–कम हर जिले में उनके संवाददाता अथवा अंशकालिक संवाददाता हों। लेकिन ज्यादातर मामलों में ऐसा नहीं है। समाचारों के लिए अखबार समाचार एजेंसियों पर निर्भर होते हैं जबकि निजी इलेक्ट्रोनिक मीडिया टेलीविजन का चरित्र मुख्यतया शहरी है। बहरहाल, यह चर्चा का अलग विषय है।

'दूरदराज की खबर छूटने की संभावना' के खोखलेपन का आकलन राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में घटी एक अन्य घटना के उदाहरण से किया जा सकता है। यहां पढ़ाई और रोजगार के साथ–साथ अन्य वजहों से आने वाले पूर्वोत्तर के छात्र–छात्राओं, युवक–युवतियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की घटनाएं आए दिन पढ़ने–सुनने को मिलती हैं। राजधानी और आसपास घटित होने के कारण मीडिया उन्हें कवरेज तो देता है तो उनको 'फॉलो' करने के मामले में वह प्रायः शिथिल हो जाता है। ऐसे एक मामले का बयान दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक अपूर्वानंद करते हैं। कुछ समय पूर्व उनकी

एक छात्रा और उसके भाई की मुखर्जी नगर में उनके मकान मालिक ने बुरी तरह पिटाई की। क्योंकि बगैर यह बताए कि वे दलित (चमार) हैं, उनके मकान में सवा साल से रह रहे थे। जातीयता के लिए भले बिहार–उत्तर प्रदेश बदनाम हों, भौतिक प्रगतिशीलता का रंग चढ़ाए दिल्ली जैसे इलाके कहीं दो कदम आगे ही ठहरते हैं। पिटाई के बाद दोनों को मुखर्जी नगर थाने ले जाया गया जहां महिला किंतु 'शर्मा' थानाधिकारी ने उन्हें रातभर बिठाए रखा। दलित होने की वजह से उन्हें प्रताड़ित किया गया। पीने के लिए पानी मांगने पर उन्हें गिलास में मुंह न लगाने और 'ऊपर' से पीने को कहा गया। लेकिन अखबारों और मीडिया ने इस घटना पर क्या किया? अपूर्वानंद बताते हैं कि पहले दिन अखबारों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने दिलचस्पी दिखाई, पर आगे किसी में इसे लेकर उत्सुकता न रही कि न्याय की संरचना ने कनक (दलित छात्रा) की शिकायत का क्या किया। मीडिया 'जरूरी' और 'ताजा' घटनाओं की कवरेज में मशरूफ हो गई और जनतांत्रिक समाज की चेतना पर लोटपोट होते करैत की मौजूदगी एक बार फिर उसकी निगाह से ओझल हो गई। ऐसा क्यों है कि आदिवासियों, दलितों और अन्य वंचित तबकों की खबरें या तो मीडिया की निगाह से ओझल रहती हैं या सूचना देने मात्र के बाद आगे की खबर (फॉलोअप) उसकी पहुंच से बार–बार फिसलती जाती है जबकि, राजनीति, आर्थिक भ्रष्टाचार, हत्या, बलात्कार आदि की खबरों की वह महीनों परत दर परत उघारता रहता है? क्या इनमें निहित चटखारापन और सनसनी उन्हें ऐसा करने को प्रेरित करते हैं, जिनका आदिवासियों और दलितों की खबरों मे अभाव होता है अथवा इसके कुछ अन्य कारण भी हैं?

मिशनरी दलित पत्रकारिता

मीडिया को हासिल स्वतंत्रता अगर समाज की स्वतंत्रता को मापने का पैमाना हो, तो निस्संदेह भारतीय समाज बहुत ही स्वतंत्र है किंतु क्या वाकई यह सभी वर्गों–समाजों के लिए एक–सा ही है? यह सही है कि आज की पत्रकारिता में कैरियर और कमाई की प्रवृति हावी है। अन्य कारणों के साथ–साथ इनकी वजह से भी पत्रकारिता का स्वरूप बदला है। उसकी पूंजी और बाजार पर निर्भरता बढ़ी है, इन दोनों का आज की मीडिया पर, पत्रकारिता पर प्रायः वर्चस्व है। इसके बावजूद, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि स्वातंत्र्योत्तर काल में जनतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने में, समाज में आए सकारात्मक बदलावों में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन ये बदलाव हमेशा सकारात्मक ही रहे, ऐसा दावा भी नहीं किया जा सकता। इसने अनेक मर्तबा यथास्थितिवाद और नकारात्मक प्रवृतियों को शह दी है। भारतीय समाज में कमजोर,

उपेक्षित और प्रताड़ित तबकों की कमी नहीं है। लेकिन स्वतंत्र, जनतांत्रिक और आध ुनिक भारत में भी उनकी स्थिति में वर्चस्व वाले वर्गों की दृष्टि में कोई बड़ा परिवर्तन नजर नहीं आता। उदाहरणस्वरूप आरंभिक चार वाकयों को लिया जा सकता है। हमसब जानते हैं कि ये अपवाद स्वरूप घटी घटनाएं नहीं है। देश के विभिन्न अंचलों में इस तरह की अथवा इनसे कहीं ज्यादा तकलीफदेह घटनाएं रोज घट रही हैं, पर वे मीडिया–विमर्श का हिस्सा नहीं बनती। महाराष्ट्र के चर्चित खैरलांजी बलात्कार हत्याकांड पर मीडिया की नजर घटना के दो हफ्ते बाद गयी। अखबारों–पत्रकारों और समग्र मीडिया की नजर से आदिवासियो–दलितो की खबरे या तो ओझल रहती हैं अथवा उन्हें खबर के बतौर छुआभर जाता है। मुख्यधारा की तत्कालीन मीडिया के इस एकांगी स्वरूप और आदिवासियों व दलितों के प्रति उसके उपेक्षाभाव को दलित विचारक शिद्दत से महसूस करते रहे। स्वंय डॉ बी आर आंबेडकर ने इस कमी को महसूस किया और इसकी भरपाई के लिए उन्होंने अलग–अलग समय में चार अलग–अलग अखबार, क्रमशरू–'मूकनाथ' (1920), 'बहिष्कृत भारत' (1927), 'जनता' (1930) और 'प्रबुद्ध भारत' (1956) का संपादन–प्रकाशन किया। ये सभी मराठी भाषा में प्रकाशित होते थे। आंबेडकर से भी पहले स्वामी अछूतानंद ने 1917 में 'अछूत' नामक पत्रिका का हिंदी में प्रकाशन किया। 'हिंदी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार आंबेडकर का प्रभाव' शीर्षक अपने शोधप्रबंध में श्योराज सिंह बेचौन स्वामी अछूतानंद से लेकर अबतक के दलित पत्रकार–संपादकों और उनके पत्र–पत्रिकाओं विस्तृत सूची प्रस्तुत करते हैं। ये सभी विचारक और अखबार–पत्रिकाएं दलितों की पीड़ा को सार्वजनिक करना चाहते थे, उनके मनुष्यगत अधिकारों को स्वीकृति दिलाना चाहते थे उस समाज से जिसने शताब्दियों से उनके सम्मानजनक और गरिमापूर्ण जीवन का उनका हक छीन लिया था और निरंतर उनके शोषण में सहभागी थी। लेकिन इनमें से कोई भी प्रयास मुख्यधारा की पत्रकारिता का अंग न बन पाया। ये सब स्वैच्छिक प्रयास थे, मूक दलित–वंचितों को आवाज देने और उनकी पीड़ा को वृहत्तर समाज व व्यवस्था तक पहुंचाने के मिशनरी एकलव्य प्रयास। मुख्यधारा की पत्रकारिता की व्यावसायिकता वहां न थी, न ही वह प्रबंधनतंत्र उनके पास था जिसकी बदौलत वे अपने उत्पाद (अखबार) की मार्केटिंग कर पाते और उसे अधिक से अधिक लोगों को बेच–पढ़ा पाते। इसी लिए अछूतानंद और आंबेडकर से लेकर अब तक दलितों और आदिवासी संगठनों एवं व्यक्तियों द्वारा निकाले गए अखबारों–पत्रिकाओं का जीवन निजी प्रयासों से निकलने वाले अन्य पत्र–पत्रिकाओं की भांति बड़ा भंगुर और अल्पजीवी रहा है। प्रसार के लिहाज से अपने लघु आकार के कारण इस मिशनरी पत्रकारिता की एक बड़ी सीमा यह रही कि उनकी पीड़ा और इच्छाएं भले दलितों के एक सीमित वर्ग तक (जहां तक वे प्रसारित हो पाती हैं) पहुंच

जाएं, समाज के अन्य वर्गों मे मौजूद दलितों और आदिवासियों की समता और अधिकारों के समर्थक प्रबुद्ध और प्रगतिशील चेतना संपन्न लोगों तक नहीं पहुंच पातीं।

तकनीक और पूंजी आधारित जनतांत्रीकरण का हश्र

तकनीक ने मीडिया का अनजाने और नये क्षेत्रों में भारी प्रसार किया है। इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों को विगत दो दशकों में भारी प्रसार हुआ है और आज देश के दूरदराज के अंचलों में भी इनकी मजबूत उपस्थिति महसूस की जा सकती है। लेकिन टेलीविजन चौनल शुरू करने के लिए जिस परिमाण में पूंजी की जरूरत पड़ती है, उसने इसे बड़े व्यापारियों और कॉरपोरेटों की झोली में ला पटका है जिनके लिए किसी भी अन्य व्यापारिक उद्यम की तरह टेलीविजन चौनल भी एक व्यापारिक उद्यम है जिसका अंतिम लक्ष्य मुनाफा कमाना और पूंजी बाजार में शेयरों पर प्रीमियम को निरंतर बढ़ता देखना है। इसने मुख्यधारा के सेठाश्रयी पत्र–पत्रिकाओं के सम्मुख चुनौती पेश करने का खम भरने वाले लघुपत्रिका आंदोलन जैसी संभावना की गुंजाइश भी खत्म कर दी है। इसके परिणामस्वरूप देखा जा सकता है कि टेलीविजन प्रसारण के क्षेत्र में एक चैनल भी वैकल्पिक माध्यम की चुनौती पेश करने की स्थिति में नहीं है न तो विचारधारात्मक अंतर्वस्तु के स्तर पर, न सामाजिक बदलाव के स्तर पर। इसलिए इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में आकाशवाणी, दूरदर्शन और लोकसभा, राज्यसभा जैसे लोकप्रसारणकर्ता चैनलों को छोड़कर निरूस्वार्थ भाव से आदिवासियों–दलितों की आवाज बनने वाला कोई चैनल नहीं है।

हाल के वर्षों में सूचना के जनतांत्रीकरण के एक महत्वपूर्ण औजार के रूप में सोशल मीडिया सामने आया है। यहां कंप्यूटर साक्षर और इंटरनेट का उपयोग करने की सामर्थ्य रखने वाला कोई भी व्यक्ति पत्रकार हो सकता है और अपनी बात इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाले बृहत्तर जनसमुदाय तक पहुंचा सकता है। लेकिन जिस देश में कंप्यूटर साक्षरता अभी भी कुल जनसंख्या के दो प्रतिशत के इर्द–गिर्द सिमटी हो, जहां बीस या बाइस रूपये प्रतिव्यक्ति दैनिक आय को गरीबी रेखा माना जाता है और जहां इस पैमाने पर भी देश की एक तिहाई से अधिक आबादी (जो प्रायः शतशः आदिवासियों और दलितों की आबादी है) गरीबी रेखा से नीचे ठहरती हो, कल्पना कर सकते हैं कि वहां कितने दलित, आदिवासी और वंचितों को कंप्यूटर का ज्ञान होगा और उनमें से कितने कंप्यूटर या सुगमतापूर्वक इंटरनेट सेवा उपलब्ध कराने वाले उन्नत मोबाइल हैंडसेट रखते होंगे। इसलिए 'दलित वायस' जैसे एकाध वेबसाइट की उपस्थिति के बावजूद अभी तक सोशल मीडिया की पैठ आदिवासी–दलित समुदाय में नहीं हो पाई

है। दलितों–आदिवासियों का सामाजिक जीवन, उनमें शिक्षा का अभाव अथवा अल्पशिक्षा, गांव से शहर तक उनकी यात्रा, विस्थापन, उनका रहन–सहन, खाते–पीते शहरी का उनके प्रति बर्ताव उन्हें फेसबुक, ट्वीटर या दूसरे सोशल साइट्स पर खुलने और दोस्त बनाने से रोकता है। पारंपरिक मीडिया के उलट यहां उन्हें अपने विचार, अपनी बातें रखने की पूरी आजादी है, लेकिन उनका समुचित प्रसार नहीं हो पाता। अगर उनके दोस्त ही नहीं होंगे तो उनके पोस्ट्स को पढ़ेगा–सुनेगा कौन।

मुख्यधारा की पत्रकारिता का सच

इन सब वजहो से मुख्यधारा की पत्रकारिता मे सामाजिक समावेशन की, दलित–आदिवासियो के समुचित प्रतिनिधित्व की जरूरत महसूस होती है। लेकिन स्वतंत्र भारत मे आये अनेक आधुनिक और प्रगतिशील बदलावों के बावजूद, न तो भारतीय समाज, न ही उसे चलाने वाला शासन–प्रशासन तंत्र और न ही इन सबकी निगहबानी करने का दम भरने वाला मुख्यधारा का परंपरागत मीडिया– प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों – पूरी तरह समावेशी बन पाये है। आदर्श जनतंत्र तो वह है जहां समाज का कोई भी तबका उपेक्षित नहीं रहता, सबकी राय को एकसमान जगह और महत्व दिया जाता है और समाज की इंद्रधनुषी विविधता का बराबर सम्मान होता है। अनेक विविधताओं से भरे भारतीय समाज के लिए तो यह और भी जरूरी है। लेकिन भारत की मीडिया में अबतक ऐसा हो नहीं पाया है। समानता के सांवैधानिक प्रावधान के कारण राजनीति और प्रशासकीय निकायों में जहां आदिवासियों–जनजातियों और दलितों को प्रतिनिधित्व मिला है, वहीं मीडिया में उनकी उपस्थिति शून्य अथवा नगण्य है। यही वजह है कि जनजातियों–आदिवासियों और दलितों में मीडिया के खिलाफ असंतोश बढ़ रहा है। उन्हें शासन–प्रशासन, कानून व्यवस्था से जितनी शिकायतें हैं उससे कहीं अधिक शिकायत मीडिया से है। इस वजह से भी भारतीय मीडिया मे दलितो–आदिवासियो की उपस्थिति की पड़ताल जरूरी है।

नक्कारखाने मे तूती–सी पहल

दो सौ साल से अधिक की भारतीय पत्रकारिता (प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों) के इतिहास में पहली बार मीडिया में दलितों, आदिवासियों और वंचित तबकों की स्थिति पर सबसे पहले द्वितीय प्रेस आयोग में विचार किया गया। न्यायमूर्ति के.के. मैथ्यू की अध्यक्षता में भारतीय प्रेस की प्रगति और स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए गठित इस आयोग ने 3 अप्रैल 1982 को सरकार को अपनी रिपोर्ट सौंपी। इसके 'ए नोट ऑन कास्ट सिस्टम एमांग जर्नलिस्टस' शीर्षक अध्याय में भारत में संभवतः पहली बार

मुख्यधारा की पेशेवर पत्रकारिता में पत्रकारों और उनके जाति संबंधों पर सिलसिलेवार अध्ययन किया गया था। लेकिन इस अध्ययन का भी कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ा। जैसाकि आमतौर पर सरकार प्रायोजित रिपोर्टों के साथ मीडिया, खासकर भाषायी मीडिया करती है, सीमित और सतही चर्चा के बाद उसे किनारे रख भुला दिया गया। लेकिन आयोग की रिपोर्ट में शामिल इस अध्ययन से आंबेडकरवादी और दलित अधिकारों के लिए सचेत कुछ संजीदा पत्रकारों को एक रास्ता सूझा। मीडिया स्टडीज ग्रुप से जुड़े पत्रकार अनिल चमड़िया ने 1980 के दशक के उत्तरार्ध में पत्रकारों की सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक विचारधारात्मक पृष्ठभूमि की जानकारी लेने के लिए बिहार के पत्रकारों के बीच एक सर्वेक्षण किया जिसमें उन्हें अनुसूचित जाति का केवल एक पत्रकार मिला जो राज्य से बाहर का था और जिसकी जातिगत स्थिति नियोक्ताओं और स्थानीय पत्रकार बिरादरी के बीच स्पष्ट नहीं थी। चमड़िया के इस शुरूआती सर्वेक्षण की खबर एक स्थानीय अखबार में छपी लेकिन उसका कोई नोटिस नहीं लिया गया। स्वयं अनिल चमड़िया के अनुसार इस सर्वेक्षण का अभिप्रेत पत्रकारिता में दलितों और जनजातियों के सवाल पर विमर्श करना नहीं बल्कि पत्रकारों की वर्गीय और विचारधारात्मक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना था।

कूपर–उनियाल के सवाल

1996 में अंग्रेजी पत्रकार बी. एन. उनियाल का ध्यान इस ओर गया कि जिस पेशे में उन्होंने जीवन का बड़ा हिस्सा गुजार दिया उसमें एक भी दलित पत्रकार नहीं है और कभी उनका ध्यान इस स्याह खालीपन की ओर गया भी नहीं। लेकिन उनियाल की नजर स्वतह इस ओर नही गई। उनसे जब अमरीकी समाचारपत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' के दिल्ली ब्यूरो प्रमुख अफ्रीकी–अमरीकी मूल के अश्वेत पत्रकार कैनेथ कूपर ने अपने एक शोध के सिलसिले में इस बारे में जानकारी चाही थी तब उनका ध्यान इस ओर गया। उनियाल ने अनेक संपादकों से बातचीत और पत्र सूचना कार्यालय–पीआईबी के मान्यताप्राप्त पत्रकारों संवाददाताओं की सूची सहित सभी उपलब्ध सूचियां खंगाल डाली लेकिन किसी भी सूची में उन्हें एक भी दलित पत्रकार नजर न आया। लेकिन उनियाल के इस लेख के बाद मीडिया के इस एकांगी स्वरूप ने सबका ध्यान खींचा और निष्ठापूर्वक जाति–निरपेक्ष प्रगतिशीलता का अनुपालन करने वाले इन पंक्तियों के लेखक जैसे अनेक पत्रकारों, मीडिया पर अध्ययन–अनुशीलन करने वाले लोगों का ध्यान इस खालीपन की ओर गया। उनियाल अंग्रेजी दैनिक– 'पायोनियर' में प्रकाशित अपने उक्त लेख में कहते है कि 'अचानक मुझे लगा कि मैं तीस वर्षों से पत्रकारिता कर रहा हूं और

मुझे एक भी दलित पत्रकार नहीं मिला, एक भी नहीं' सबसे तकलीफ की बात तो यह है कि कभी मुझे इसका अहसास तक नहीं हुआ कि हमारे पेशे में इतना बड़ा अभाव है।'

उनियाल की स्वीकारोक्ति के लिए उनके प्रति सम्मान की भावना के साथ–साथ सवाल यह पैदा होता है कि मुख्यधारा की पत्रकारिता में अपना प्रायः समस्त कार्यशील जीवन व्यतीत कर देने के बाद भी आखिर किसी पत्रकार को (जो यदि आदिवासी या दलित नहीं तो सवर्ण ही है) को यह अहसास नहीं होता कि जिस समाज में वह रह रहा है और जिस समाज की बेहतरी के लिए काम कर रहा है, उसका एक महत्वपूर्ण अंग भौतिक और वैचारिक दोनों स्तरों पर सिरे से परिदृश्य से नदारद क्यों है?

एक दशक बाद का हाल

सन् 2000 में पश्चिमी दुनिया की नकल में जब भारतीय मीडिया नयी सहस्राब्दि के आगमन की खुशियां मना रहा था और इसके स्वाभगत के समूहगान गा रहा था, अफसोसनाक रूप से तब भी इस मीडिया समूह में एक भी दलित–आदिवासी चेहरा न था। देश की कुल आबादी के प्रायरू एक तिहाई हिस्सेर का प्रतिनिधित्वा वहां सर्वथा नदारद था। निजी क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया–टेलीविजन और एफएम रेडियो को तेजी से विस्तािर हो रहा था लेकिन वहां न केवल समाचारों, बल्कि मनोरंजन सहित किसी भी कार्यक्रम की एंकरिंग करने वाला दलित–आदिवासी चेहरा न था। लगभग दस साल तक भारत के विभिन्नक नगरों में स्थित समाचारपत्र समूहों के अध्यायन के बाद शिक्षाविद् रॉबिन जेफ्री की 'इंडियाज न्यूजपेपर रिवोल्यूशिन' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस किताब में जेफ्री रेखांकित करते हैं कि विकास गाथाएं लिखने के बावजूद किसी भी समाचारपत्र समूह में उन्हें एक भी दलित पत्राकार नहीं मिला, दलित आदिवासी संपादक या मालिक तो दूर की बात है।

कूपर–उनियाल अध्ययन के एक दशक बाद 2006 में दिल्ली स्थित मीडिया स्टमडीज ग्रुप के अनिल चमडिया और सीएसडीएस के योगेन्द्रं यादव ने 37 मीडिया संस्थापनों के 315 प्रमुख पदों का सर्वेक्षण कर पता लगाया कि फैसले लेने वाले शीर्ष पदों पर एक प्रतिशत अन्यय पिछड़ा वर्ग के लोग हैं, लेकिन मीडिया के प्रमुख पदों पर उनकी हिस्सेनदारी केवल चार प्रतशित पाई गई जबकि आठ प्रतिशत जनसंख्यो वाले सवर्णों का मीडिया के फैसले लेने वाले 71 प्रतिशत पदों पर र्क्चसस्वय था। आरंभ में इस सर्वेक्षण का मुखर विरोध हुआ और मीडिया में जाति अथवा सामाजिक संरचना के अनुरूप वर्गीय प्रतिनिधित्व के बजाय ज्ञान और दक्षता की जरूरत बताई गई। एचटी

मीडिया लिमिटेड की उपाध्यक्ष शोभना भरतिया ने सीएनबीसी 18 टेलीविजन चौनल के एक टॉक–शो में और इसी समूह द्वारा प्रकाशित हिंदी दैनिक 'हिंदुस्तान' की तत्कारलीन मुख्य संपादक मृणाल पांडे ने अपने अखबार में संपादकीय लेख लिखकर विरोध की अगुवाई की। अंग्रेजी दैनिक 'द पायोनियर' के मालिक और संपादक चंदन मित्रा ने इसे 'विभाजनकारी' बताया। सीएनबीसी 18 के इसी कार्यक्रम में 'द हिंदू' के तत्कालीन मुख्य संपादक एन. राम ने सर्वेक्षण की प्रशंसा करते हुए इसे इसकी सीमाओं के बावजूद समाज की बेहतरी के लिए जरूरी बताया। एन. राम ने अमरीकन सोयायटी ऑफ न्यूेजपेपर एडिटर्स के प्रयासों का उल्लेनख करते हुए कहा कि इस सोयायटी के कार्यक्रम से अमरीकी मीडिया में अश्वेसत, अफ्रीकी–अमरीकी सहित अल्पेसंख्ययकों की स्थिति मजबूत हुई है। उन्हों ने सर्वेक्षण के आलोक में अमरीकी मीडिया संगठनों की तरह काम करने की जरूरत बताई।

2006 के इस सर्वेक्षण में लोकसभा टीवी, आकाशवाणी और दूरदर्शन सरीखे लोक प्रसारकों की बाबत जानकारी शामिल नहीं थी। राज्यसभा टीवी का तब तक उदय नहीं हुआ था। लेकिन ये सभी चैनल सरकार की आरक्षण नीति का अनुपालन करते हैं, इसलिए यहां दलित–आदिवासी पत्रकारों और कर्मियों की उपस्थिति उत्साहवर्धक है। हालांकि अनिल चमड़िया दलितों और आदिवासियों के संदर्भ में सरकारी (लोक प्रसारणकर्ता) और निजी क्षेत्र की मीडिया में कोई फर्क नहीं पाते लेकिन वह स्वयं उल्लेरख करते हैं कि दूरदर्शन के जिन 17,019 पदों पर नियुक्तियां की गई हैं उनमें से 4,714 यानी 27.7 प्रतिशत दलित और आदिवासी हैं। आकाशवाणी में भी कमोबेश यही स्थिति है। इन दोनों संगठनों में निचले पायदान से लेकर फैसले लेने वाले शीर्ष पदों तक दलित–आदिवासियों का प्रतिनिधित्व देखा जा सकता है, कार्यक्रमों का संचालन करते हुए, समाचार पढ़ते हुए, साक्षात्कार और रिपोर्टिंग करते हुए उन्हें देखा–सुना जा सकता है।

इंटरनेट पत्रिका 'द हूट' के लिए एजाज अशरफ ने पिछले वर्ष, 2013 में भारतीय जनसंचार संस्थाान से पत्रकारिता की पढ़ाई कर निकले दलित छात्रों के सर्वेक्षण के क्रम में पाया कि उनमें से प्रायः सभी प्रसार भारती (यह आकाशवाणी और दूरर्शन का नियंत्रण और संचालन करती है) द्वारा आयोजित परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। अशरफ कहते हैं कि इस जानकारी ने उन्हें चकित कर दिया। उनकी मान्यता थी कि 'विगत वर्षों के दौरान मूल्यों में क्षरण के बावजूद वास्तविक, स्वतंत्र, अनियंत्रित पत्रकारिता सरकारी क्षेत्र

से बाहर ही की जाती है।' अशरफ की यह मान्ययता धराशायी हो रही थी। क्या वजह थी कि लगभग सभी युवा दलित पत्रकार आकाशवाणी और दूरर्शन में नौकरी के लिए बेताब थे? अशरफ की खोजबीन ने निजी क्षेत्र की मीडिया को लेकर बनी उन्हीं स्थापनाओं–मान्यकताओं को पुष्ट किया जिनकी चर्चा हम ऊपर कर आए हैं। इन युवा पत्रकारों से बातचीत में अशरफ ने पाया कि पत्रकारिता के क्षेत्र में वे इस भरोसे के साथ आए थे कि इससे उनके समुदाय को ताकत मिलेगी। लेकिन हिंदी और भाषायी मीडिया में, जहां उन्होंने नगण्य–सी उपस्थिति दर्ज कराना शुरू किया है, उन्हें भेदभाव, अपमान और विरोध का सामना करना पड़ता हे। अंग्रेजी मीडिया में उनकी उपस्थिति प्रायः नहीं है। नियमों से बंधी सरकारी मीडिया में भेदभाव भीतर–भीतर भले एक कुढ़न के रूप में हो, प्रकट रूप में नहीं है। सरकारी नौकरियों में आरक्षण की संवैधानिक व्यवस्था के चलते नई नियुक्तियों में अधिक नहीं तो कम से कम एक निश्चित प्रतिशत तक दलित–आदिवासियों का स्थान सुनिश्चित है। कामकाज की बेहतर स्थितियों के साथ–साथ नियुक्ति की भांति पदोन्नति में यहां भेदभाव की गुंजाइश कम ही है। बीच में नौकरी छूटने से उत्पन्न अनिश्चितता यहां प्रायः नहीं होती जो कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमि वाले दलित–आदिवासी पत्रकारों को सुरक्षा का बोध देती है।

इसके विपरीत, निजी क्षेत्र के अन्य सभी उद्यमों की तरह मीडिया में किसी किस्म के जाति–आधारित आरक्षण के प्रति नकार का भाव है। 'ज्ञान' और 'दक्षता' आधारित पेशे के दावे के बावजूद निजी क्षेत्र की मीडिया में नियुक्तियों में पारदर्शिता नहीं बरती जाती। प्रायः नियुक्तियों जान–पहचान, पारिवारिक रसूख, व्यक्तिगत सिफारिश आदि के आधार पर कर ली जाती हैं। भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष जब इन स्थितियों के आलोक में पत्रकारों के लिए न्यूनतम योग्यता की वकालत करते हैं तो ज्ञान और दक्षता की अर्हता देने वाले वही लोग तिलमिला उठते हैं और उनका अपने–अपने मंचों पर विरोध करते हैं।

इसके बावजूद, अशरफ दावा करते हैं कि उनियाल के अध्ययन के बाद के बीते 17 वर्षों में निजी क्षेत्र की मीडिया में दलितों की तादाद बढ़ी है। उनियाल को जहां 1996 में एक भी दलित पत्रकार नहीं मिला, अशरफ को अकेले दिल्ली में इस तबके के दर्जनभर से ऊपर पत्रकार मिले। लेकिन उनकी मौजूदगी का कोई प्रभाव या अर्थपूर्ण परिवर्तन रॉबिन जेफ्री अथवा तमिल पत्रकार जे. बालासुब्रह्ण्यम को नहीं दिखाई देता। 2012 में नई दिल्ली में राजेंद्र माथुर स्मृति व्याख्यान में जेफ्री कहते हैं कि 'भारतीय

समाचार संगठनों के समाचार कक्षों में 1992 में दलित (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) का एक भी पत्रकार नहीं था, कमोबेश आज भी वही स्थिति है। जब तक (दलितों के खिलाफ, हिंसा या नफरत की घटनाओं को छोड़ दें तो) लगभग एक चौथाई भारतवासियों की उपस्थिति मीडिया मे नही होगीं, उनकी खबरों को, उनके जीवन में घट रही घटनाओ को जाना नहीं जा सकता।' बालासुब्रह्ण्यम भी 'इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' में दलित–आदिवासियों के संदर्भ में समाचार संगठनों में आए किसी उल्लेखनीय बदलाव से इन्कार करते हैं।

बाजार का असर

बाजार अपने उत्पाद बेचना चाहता है, उसे जीवन के लिए अति अनिवार्य साबित कर मुनाफा कमाना उसका अभिप्रेत है, इसलिए 'कॉरपोरेट सोशल रेस्पॉन्सिबिलिटी' के लुभावन जुमले के बावजूद किसी वंचित–दलित वर्ग का वास्तविक हित उसका लक्ष्य् नहीं।

जेफ्री से कुछ वर्ष पहले, 2007 में वही राजेंद्र प्रसाद स्मृति व्याख्यान देते हुए वरिष्ठ पत्रकार पी.साईनाथ ने बताया कि 'जिन दिनों मुंबई में लैक्मे् फैशन वीक में सूती कपड़ों की नुमाइश चल रही थी, लगभग उन्हीं दिनों कपास की फसल खराब होने की वजह से विदर्भ में बड़ी संख्याब में किसान आत्महत्या कर रहे थे। लेकिन विडंबना यह है कि मुंबई में 600 से ऊपर पत्रकार फैशन वीक को कवर कर रहे थे जबकि विदर्भ में किसानों की आत्महत्या की कवरेज के लिए देशभर से बमुश्किल छह पत्रकार पहुंच पाए।' मीडिया की इस उपेक्षा के पीछे कृषि और कृषि कर्म में लगी दो तिहाई आबादी के प्रति मीडिया की संवेदनहीनता ही मुद्दा नहीं है, बल्कि बाजार और उसे संचालित करने वाली बड़ी पूंजी की मुनाफाखोर प्रवृत्ति कहीं बड़ा मुद्दा है। इसी प्रवृत्ति की वजह से निजी क्षेत्र के उद्योग आरक्षण के खिलाफ खड़े होते हैं और यही प्रवृत्ति मीडिया में दलित–आदिवासियों के प्रवेश के खिलाफ खड़ी होती है। कुछ भी हो, यह स्थिति विध्वंसकारी है – भारतीय गणतंत्र के लिए, पहले से ही विखंडित समाज के लिए और सामाजिक विकास की मूल अवधारणा के लिए। यह विध्वंसकारी है क्योंकि यह संविधान की प्रस्तावना में शामिल समता और बंधुत्व के वायदे के खिलाफ है। यह मीडिया के जनतांत्रिक और समावेशी स्वरूप के खिलाफ है और यह जनतांत्रिक व्यवस्थाक में मीडिया के 'चौथा स्तंभ' होने के दावे को खोखला बनाता है। इसलिए यह स्थिति बदलनी चाहिए – जितनी जल्दी बदले उतना बेहतर। लेकिन स्थिति बदलेगी कैसे?

बदलाव के लिए पहल

इस दिशा में पहल कोई भी कर सकता है। शुरूआत भारतीय प्रेस परिषद और दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) कर सकते हैं। भारतीय प्रेस परिषद अधिनियम, 1978 परिषद को इसके लिए पर्याप्त अधिकार देता है। इस अधिनियम के तीसरे अध्याय की धारा 14 और 15 में समाचार संगठनों को 'जिम्मेदार और जनतांत्रिक' बनाने के लिए पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। क्या दलितों, आदिवासियों और वंचितों को मीडिया घरानों में शामिल कराना उन्हें जिम्मेमदार और जनतांत्रिक बनाना नहीं है?

एन. राम ने जिस अमरीकन सोसाइटी ऑफ न्यूज एडीटर्स के प्रयासों से अमरीकी मीडिया में आए बदलावों की चर्चा की थी, उस सोसाइटी की तर्ज पर भारत में एक पहल एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया कर सकता है। गिल्डस समाचार संगठनों की जाति, क्षेत्र और वर्ग आधारित विविधता की एक निश्चित अंतराल पर सर्वेक्षण कर उसे प्रकाशित–प्रसारित कर सकता है। वह मीडिया संगठनों के लिए विविधता को बढ़ावा देने के लक्ष्य निर्धारित कर सकता है और समय–समय उनकी जानकारी जुटा प्रगति का मूल्यांकन कर सकता है। इस पूर्वनिर्धारित लक्ष्य से मीडिया संगठनों पर समावेशी बनने का एक नैतिक दबाव बनेगा। इस दबाव के हिंदी और भाषायी मीडिया में कारगर होने की संभावना ज्यादा है। क्योकि इनके प्रमुख पाठक–श्रोता–दर्शक उपभोक्ता् मुख्यतः नवसाक्षर और अपने हकों को लेकर अब जागरूक हो रहे दलित–आदिवासी तबके ही हैं।

पहल राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति आयोग और अल्पसंख्यक आयोग जैसे संगठन भी कर सकते हैं। वे विविधिता, बहुलता और समता बढ़ाने के लिए सम्मान–पुरस्कार, सहायता और अन्यः प्रोत्साहन कार्यक्रमों की घोषणा कर सकते हैं।

एक जरूरी पहल पत्रकारिता का प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों के स्तर पर अपेक्षित है। सरकार द्वारा चलाए जाने वाले संस्थानों में नामांकन में आरक्षण व्यवस्था लागू है, इसे निजी क्षेत्र के प्रशिक्षण केंद्रों में लागू करने और उन्हें जरूरी छात्रवृत्तियां देने की जरूरत है, ताकि अधिकाधिक दलित–आदिवासी युवा पत्रकार प्रशिक्षित होकर निकलें और मीडिया संस्थानों के अंदरूनी जनतंत्र को मजबूत करें।

वस्तुतः आवश्यतकता इन सभी प्रयासों पर एकसाथ अमल करने की है। तभी चौथे खंभे की इमारत को मजबूती मिलेगी और उस पर जमी कालिख साफ की जा सकेगी, तभी समाज के एक बड़े हिस्से का असंतोष कम हो पाएगा और उनकी अकथ कथाओं को वाणी मिल पाएगी और तभी मीडिया खुद को समताधर्मी, समावेशी और जनतांत्रिक मूल्यों का पोषक कह पाएगा।

* * * * *

रेत ज्यों तन रह गया है

* डा. अनिता सिंह

आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है –'' अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ––
जीवन दह गया है।''
'' दिये है मैंने जगत को फूल–फल,
किया है अपनी प्रतिभा से चकित–चल,
ठाठ जीवन का वही
जो ढह गया है।''

सुप्रसिद्ध कवि 'निराला' की कविता 'स्नेह निर्झर बह गया है' की उक्त पंक्तियों में वृद्धावस्था की शारीरिक,मानसिक,सामाजिक समस्याओं को इंगित किया जा सकता है। व्यक्ति मानव जीवन के अलग–अलग पड़ावों से गुजरकर जब वृद्धावस्था के इस अन्तिम पड़ाव पर आता है तब तक उसके पास अनुभवों का असीमित भंडार जमा हो जाता है। अच्छे–बुरे अनुभवों के साथ अच्छी–बुरी स्मृतियाँ तो होती ही है, उनकी अपनी मान्यतायें विचार और दृष्टि भी होती है। देखते ही देखते जैसे एक युग गुजर जाता है और घर–परिवार में एक नयी पीढी अपने मान्यताओं और नये दृष्टिकोण के साथ तैयार हो जाती है। दो पीढ़ियों का अन्तसंघर्ष कोई नया नहीं है। प्रत्येक दौर में यह रहा है। हर नयी पीढ़ी पुरानी हो जाती है। हर दौर में नयी पीढ़ी पर आरोप–प्रत्यारोप लगते ही रहे

---

* युवा लेखिका एवं पांडिचेरी विश्वविद्यालय से संबद्ध

हैं। परन्तु वर्तमान समय में ये सब बातें बेहद तीखे और कभी–कभी बहुत शर्मनाक ढंग से सामने आ रही हैं, जो निश्चय ही गलत है। पितृपक्ष में गया आदि तीर्थस्थानों में जाकर पूजा और पिण्ड दान आदि करने वाले समाज में निरन्तर वृद्धाश्रमों की संख्या बढ रही है। 'फॉदर्स डे','मदर्स डे' तथा 'ग्रैंडपैरेन्टस डे' मनाने का चलन भी जोर पकड़ता जा रहा है। कुछ वर्ष पूर्व रिलीज हुई 'बागवां' फिल्म ने भी काफी धूम मचाई।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' की अम्मा को कौन भूल सकता है? शिवानी की 'पूतोंवाली' माँ, प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी' हो या उषा प्रियम्वदा की 'वापसी' के गजाधर बाबू। उक्त सभी कहानियों के इन चरित्रों की दशा एक ही है। अपने ही परिवार व बच्चों से मिलने वाली उपेक्षा, अनादर, अकेलापन। इन चरित्रों को हम अपने आस–पास के जीवन में आसानी से देख सकते हैं। बुर्जुगों की जिम्मेदारी, उनकी देखभाल का दायित्व निश्चय ही परिवार का है, परन्तु विचारों का संघर्ष, दृष्टि की असंगतता इतनी बढ़ जाती है कि बूढ़े हो चले माता–पिता अपने ही बच्चों के लिये बोझ बन जाते है। ऐसे माहौल में बच्चे जहाँ माता–पिता को 'अनावश्यक जिम्मेदारी' या 'गले का काँटा' समझने लगते हैं। वहीं माता–पिता बच्चों को गैर जिम्मेदार तथा स्वार्थी मान लेते हैं। यह स्थिति धीरे–धीरे बढती ही जाती है। नतीजतन बच्चे या तो माता– पिता को किसी वृद्धाश्रम में रखने की सोचते हैं या रख आते है वहीं माता–पिता अपनी देखभाल के लिये कोर्ट के दरवाजे पर खड़े नजर आते है। वृद्धों की देखभाल,उनकी सुरक्षा के लिये कानून का निर्माण निश्चय ही आवश्यक है परन्तु बात–बात पर आदर्श संस्कृति की दुहाई देने वाले इस समाज की स्वयं की नैतिक जिम्मेदारी का क्या? ऐसी स्थिति पनपी ही क्यों?

इस बदलते परिवेश ने निश्चय ही हमारे जीवन मूल्यों को बदल कर रख दिया है। सूचना क्रान्ति के इस दौर में क्षणभर में हम दूर–देश के किसी कोने में बैठे अपने मित्रों से सम्पर्क कर लेते हैं पर साथ रह रहे परिवार के सदस्यों के साथ बात करने की फुर्सत नहीं निकाल पाते। फेसबुक पर 'लाइक' करने में देर नहीं लगाते। सैकड़ों अजनबियों से 'मित्रताधर्म' निभाने में कोताही नहीं बरतते पर बगल के कमरें में माँ–पिता कितना अकेलापन महसूस कर रहे हैं, वे क्या सोच रहे हैं, क्या चाहते हैं, ये पूछने में , महसूस करने में हम पीछे रह जाते हैं। यह बदलाव का दौर है पर इतना भी क्या बदलना कि हमारी छोटी–छोटी जरुरतों के लिये अपने बड़े–बड़े सुखों की तिलांजलि देने वाले माता–पिता की परवाह ही न करे।

कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारी संस्कृति, हमारी जीवनशैली, परम्पराओं में ही इस समस्या का बीज दबा हो। हमारा समाज पितृसत्तात्मक समाज है। जिसमें सारे नीति–नियमों का निर्धारण पुरुषों के ही हाथ में होता है। घर का मुखिया पिता होता है जिसकी विरासत पुत्र को मिलती है। इस तरह के व्यवस्था वाले समाज में स्वतः पुत्र की अनिर्वायता तथा उसका महत्व बना रहता है। माता–पिता की भरण–पोषण की जिम्मेदारी भी पुत्र की होती है। पुत्रियों को सदा से ही कार्य से मुक्त रखा गया। परायी अमानत का अपने घर में क्या काम? 'कन्यादान' कर चुके माता–पिता बेटी से मदद कैसे ले सकते है? 'पाँव पखारने' के बाद दामाद से सहायता कैसे माँगी जाय? भाई के रहते बहन बार–बार मायके आकर माता–पिता से कैसे मिले? माता–पिता भी पुत्र के रहते बेटी के घर कैसे जाय? इतने सारे अर्थहीन सवालों से हमारा समाज अभी भी जूझ रहा है। हमें सामाजिक व्यवस्था को इस तरह से ढालना होगा कि विवाहित बेटियां भी वृद्ध माता–पिता की देखभाल में सहजता से भाग ले सकें। इसके लिये सरकारी नीतियों, कानूनों की तरफ मुँह ताकने से अच्छा है कि इसकी शुरुआत अपने परिवार से ही करें। प्रारम्भ से ही पुत्र और पुत्री में भेद न करें। बच्चों को दादा–दादी, नाना–नानी का मान– सम्मान करना सिखाये। हम अपने माता–पिता के साथ जैसा व्यवहार करेंगे, वैसा ही व्यवहार हमें अपने बच्चों से मिलेगा। वृद्धों की जिम्मेदारी, उनकी देखभाल यह बोझ या थकाऊ, नीरस काम नहीं है, यह सर्वथा अपने लिये किया गया काम है।

इस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जीवनशैली में बहुत बदलाव आया है। तकनीकी प्रगति ने हमारे रहन–सहन को उलट–पुलट कर रख दिया है। वृद्धजन पारिवारिक रिश्तों, सामाजिक रीति–रिवाजों को महत्व देते हैं जबकि नयी पीढी जो उपयोगी है,उस पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखती है। दूसरी बात, इस उम्र तक आते–आते व्यक्ति अपने विचारों और आदर्शों से तनिक भी नहीं हटता। समय के साथ नये मूल्यों, नयी दृष्टि का जन्म होता है, इसे समय रहते समझ लेना चाहिये। मूल्यों का अन्तर, विचारों का अन्तर इतना गहरा हो जाता है कि एक साथ रहना असम्भव हो जाता है। वृद्धजन को भी नये बदलते परिवेश को समझकर उसके अनुसार आचरण करना चाहिये। रोजमर्रा की जिन्दगी में अनावश्यक टिप्पणी से बचना चाहिये। यह भी सच है कि वृद्धलोग अतीत में रहना पसन्द करते हैं 'हमारे जमाने में तो ऐसा होता थाक. .... से हर बात शुरु करके नवीनता को नजरअन्दाज नही करना चाहिये। वृद्धजन आबादी का एक बड़ा हिस्सा हैं। संयुक्तराष्ट्र संघ द्वारा किये गये आकलन से पता

चलता है कि भारत में सन् 2030 तक 60 वर्श से अधिक उम्र के व्यक्ति 19.8 करोड़ होंगे और सन् 2050 में 32.6 करोड़ होंगे। सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 2016 के बाद के लिये दिये गये आकड़ों के अनुसार सन् 2050 तक भारत की आबादी का 21 प्रतिशत 60 वर्ष से अधिक आयु के लोगों का होगा। भारत में 60 वर्ष से अधिक की उम्र वाले वर्ग में पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है। सन् 1991 में 60 वर्ष से अधिक उम्र के पुरुषों की संख्या 2.9 करोड़ थी जबकि महिलाओं की 2.7 करोड़ थी। सरकार की 'राष्ट्रीय वृद्धजन नीति' के अनुसार सन् 2016 तक यही स्थिति बनी रहेगी। उस समय 60 वर्ष से अधिक उम्रवाले पुरुषों की संख्या अनुमानतः 5.7 करोड़ तथा जबकि ऐसी वृद्ध महिलाओं की संख्या 5.6 करोड़ रहेगी। साथ ही 60 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा वैधव्य की घटना कहीं अधिक है। इसका कारण है कि महिलाओं का अपने से कई वर्ष बड़े पुरुषों के साथ विवाह और फिर पति की मृत्यु के बाद उनका फिर से विवाह नहीं करना। इस स्थिति में वृद्ध महिलाओं की स्थिति ज्यादा खराब हो जाती है क्योंकि उनका अपनी आय का कोई व्यक्तिगत स्रोत नहीं होता। भारतीय समाज में जहाँ अभी भी पारिवारिक बन्धन ज्यादा मजबूत हैं, अगर ऐसे समाज में वृद्धजनों की दशा चिन्ताजनक है तो आगामी वर्षों में होने वाली समस्याओं का क्या रुप होगा, यह सोचा जा सकता है। समस्याओं का सामना केवल वृद्धजन ही तो नहीं कर रहे, वर्तमान युवा पीढी की भी अपनी समस्यायें हैं, अपनी जिम्मेदारियां हैं, उनकी अपनी प्राथमिकतायें हैं। आज बच्चों के लालन–पालन, उनकी शिक्षा एवं उनकी अन्य आवश्यकताओं पर अत्यधिक खर्च होता है। आज छोटे–छोटे फ्लैट में जगह की कमी के कारण, महंगे किरायों के कारण माता–पिता को अपने साथ नही रख पाने की विवशता है। वहीं माता–पिता भी लम्बे समय से रह रहे अपना घर , पास–पड़ोस छोड़कर अन्यत्र रहना भी नहीं चाहते। फिर भौतिक सुविधाओं का आकर्षण, बच्चों की पढाई सम्बन्धित खर्च, अपने कार्यक्षेत्र में तरक्की आदि प्राथमिकता सूची में पहले आते है। इसमें वृद्धजन की आवश्यकतायें स्थान ही नही पाती, यदि रहती भी है तो सबसे आखिर में। वर्तमान में, कामकाजी दंपतियों के लिये तो वृद्ध माता–पिता की उपस्थिति न केवल भावनात्मक बंधन है बल्कि आवश्यकता भी है। इनसे घर सम्भालने से लेकर बच्चों की देखभाल में बहुत सहायता मिलती है। छोटे बच्चों या किशोर हो रहे बच्चों के लिये दादा–दादी या नाना–नानी का सान्ध्यि, उनका मार्गदर्शन कितना जरुरी है , यह भी क्या कोई बताने की आवश्यकता है, यह तो सभी जानते है। सभी इसकी आवश्यकता महसूस भी करते हैं परन्तु आखिर क्या बात है कि साथ रहने में हजार मुश्किलें।

निश्चित तौर पर वृद्ध व्यक्तियों की बढती जनसंख्या का प्रभाव वैश्विक एवं घरेलू दोनों स्तरों पर पड़ रहा है। और इससे दो बातें सामने आ रही है–पहला, मानवशक्ति की बढत और दूसरा, इसे सामाजिक सुरक्षा देने की आवश्यकता। 'राष्ट्रीय वृद्ध नीति' के अनुसार इस बात की आशा की जा सकती है कि आने वाले दशकों में 60 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों की संख्या में बढोत्तरी होगी। उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर होगी। वे अपने 60 के दशक में ही नहीं अपितु 70 के दशक में भी स्वस्थ और सक्रिय रह सकेगें। सरकार आबादी के इतने बड़े हिस्से को अनदेखा नहीं कर सकती। भारत के संविधान में अनेक नियम–कानून है। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मं़त्रालय एक पृथक ''वृद्धजन ब्यूरो'' बनाने की योजना बना रहा हैं। साथ ही ''राष्ट्रीय वृद्धजन परिषद'' नामक एक स्वायत्त संस्था भी बनाई जायेगी। इस परिषद में सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रालयों के प्रतिनिधि रहेंगे। इसके अतिरिक्त पंचायती राज व्यवस्थाओं को भी प्रेरित किया जायेगा कि वे वृद्धजन से सम्बन्धित स्थानीय समस्याओं का समाधान करे। राज्य के नीति–निर्देशक तत्व (अनुच्छेद 41) के अनुसार राज्य अपनी आर्थिक क्षमता एवं विकास को ध्यान में रखते हुये वृद्धजनों हेतु सरकारी सहायता का अधिकार सुनिश्चित करेंगे। सयुंक्तराष्ट्र संघ विभिन्न देशों को समय–समय पर वृद्धजनों के लिये नीति बनाकर कार्यक्रम चलाने के लिये मार्गदर्शन करता रहता है। सन् 2000 को 'राष्ट्रीय वृद्धजन वर्ष' घोषित किया गया। परन्तु 'दिवस मनाकर' या 'वर्ष घोषित' करके तो न जाने कितनी समस्याओं को हल किया जा चुका होता। सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की 'राष्ट्रीय वृद्ध नीति' को देखकर तो लगता है कि सरकार इन्हें लेकर प्रयत्नशील है। सन् 2012 में लागू माता–पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण–पोषण तथा कल्याण अधिनियम इसी का परिणाम है। इस कानून के अनुसार 60 वर्ष से अधिक आयु के माता–पिता तथा अन्य वृद्ध जैसे दादी–दादा, नानी–नाना जो अपनी देखभाल करने में , भरण–पोषण करने में असमर्थ है, अपने बच्चों पर भरण–पोषण का दावा कर सकते हैं। सन्तानहीन वृद्ध अपने ऐसे सम्बन्धी पर यह दावा कर सकते है,जो उनकी सम्पति का वारिस हो। कोर्ट में आवेदन करने से प्रतिमाह 10 हजार रुपये देने का आदेश बच्चों को या वारिस को दिया जा सकेगा। अपने माता–पिता का परित्याग नैतिक दृष्टिकोण से ही नही अब कानूनन दण्डनीय अपराध है, जिसके लिये तीन माह की जेल और पाँच हजार रुपये जुर्माना या दोनों दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन समस्याओं का एक व्यावहारिक समाधान यह हो सकता है कि वृद्धावस्था के लिये धनराशि एकत्र करके रखें जिससे भविष्य में किसी पर बोझ न बना जायें। इस अवस्था

में, स्थिति तब और भी खराब हो जाती है जब दंपति में से किसी एक की मृत्यु हो जाती है, तब उनकी देखभाल करने वाला साथी भी नहीं होता। दूसरी और नजर दौड़ाये तो पायेंगे कि करोड़ों युवा अकेले छोटे–छोटे कमरों में पढाई या नौकरी के लिये रहने को विवश है। कुछेक दोस्तों के अलावा नये शहर में उनका कोई भी नहीं होता। अकेलेपन से वे भी परेशान है, उन्हें भी सहयोग, सहायता और स्नेह की जरुरत होती है। क्या ऐसी कोई योजना या कोई कार्यक्रम नहीं तैयार किया जा सकता जिससे अकेले रहते युवाओं को अकेले रहते वृद्धजन के सम्पर्क में लाया जा सके? यदि युवाओं को उनके कार्ययोजनाओं में वृद्धपरिजन अपना मार्गदर्शन, सहयोग दें तो बदले में उन्हें भी मान–सम्मान मिलेगा। सरकार तथा देश में काम कर रही तमाम एन.जी.ओ. को इस नजरिये से भी अपने कार्यक्रम तैयार करने चाहिये। समाज और परिवार का महत्व इसी में है कि सभी एक–दूसरे के काम आयें। इसके साथ ही पत्र–पत्रिकाओं की इस ओर दृष्टि होनी चाहिये कि वे इन विषयों पर भी सामग्री दें। टी.वी. पर भी इनका घोर अभाव है। पिछले दिनों एक टी.वी. चैनल पर प्रसारित दिल्ली के एक वृद्धाश्रम की रिपोर्ट देखकर दर्शकों की आँखें नम हो गयी। उस आश्रम के संचालक जी.पी. भगत तथा उनके सहयोगियों की बातें सुनकर लगा कि कहीं कुछ बहुत गलत हो रहा है। हम अपने दायित्व से पीछा छुड़ाकर भाग रहे हैं। ऐसे आश्रमों को सहयोग की आवश्यकता है। इस प्रकार की संस्थाओं के लिये सरकारी सहायता, सार्वजनिक दान और सहयोग दिये जाने का प्रावधान सरकारी योजनाओं में है। उसके संचालक जी.पी. भगत को दिल्ली के बाहर आखिर कितने लोग जानते थे पर उस कार्यक्रम के प्रसारित होते ही उनका नाम अब लोगों के लिये अन्जान नहीं रहा। इससे कम से कम इस बात को समझा जा सकता है कि अगर इलेक्ट्रानिक मीडिया वृद्धजन से जुड़ी खबरों या कार्यक्रम प्रसारित करे तो ज्यादा से ज्यादा लोगों तक सन्देश और जानकारी पहुंच सकेगा। भारत सरकार की नीतियों और योजनाओं को उन तक पहुंचाने का कार्य भी उतना ही आवश्यक है। जितना कि उन्हें बनाना। परन्तु अपनी मानसिकता में परिवर्तन किये बगैर हम कुछ नहीं कर सकते। यह तो हमारे देखने समझने की बात है कि अपने माता–पिता की तरफ से गैर जिम्मेदार होकर, उन्हें वृद्धाश्रमों में डालकर हम अपने बुढापे में अपने बच्चों की तरफ से कैसे निश्चिंत हो सकते हैं? कोई उम्मीद कैसे कर सकते है? बुढ़ापा जीवन

का अन्तिम पड़ाव जरुर है, पर अन्त तो नहीं। समाज की ऐसी सोच क्यों है कि इस अवस्था में ईश्वर, अध्यात्म, भजन,पूजा–पाठ के अतिरिक्त इन्सान कुछ भी नहीं कर सकता या उसे नहीं करना चाहिये। क्यों इन्सान उम्र के इस पड़ाव तक आकर अपने–आपको मात्र भजनमंडलियों में शामिल कर ले या टी.वी. पर केवल 'प्रवचन चैनल' देखे? वह अपनी इच्छाओं को क्यों मिटा दे, क्यों बदल दे? क्यों परिवार, समाज उनकी निजी जिंदगी में दखल दें? क्यों नहीं वे पहले की तरह परिवार के महत्वपूर्ण सदस्य की तरह रहे, उनका मान–सम्मान, उनकी गरिमा बनी रहे। क्या सिर्फ इसलिये ये सब खत्म हो जाती है कि वे अब 'कमाऊ' नहीं रहे। पर इस वृद्धावस्था के पहले का उनका समय तो संघर्षमय ही रहा होगा जिसमें उन्होंने अपने परिवार को मजबूती से खड़ा किया होगा। बच्चों की पढाई–लिखाई , उनकी नौकरी, उनका परिवार सब सम्हाला तो होगा। फिर अब ऐसा क्या और क्यों? इन सब चीजों को महसूस करने के लिये क्या किसी योजना या कानून की आवश्यकता है? जरुरत है बस इन्सान बने रहने की।

* * * * *

खण्ड – चार

काव्य – कथा

पगडंडियां पाखंड की

* डॉ. संगीता सक्सेना

सृष्टि का आरंभ था
आदि थे तुम, आदि थे हम
जंगल को हथेली पर उगाए
मौसमों के कनटोप लगाए –
कल हम साथ थे।
बावजूद जाहिलता के
मनुष्य थे हम।
समय का चक्र घूमा
बनती गईं विकास की अट्टालिकाएं
बढ़ने लगीं ऐशणाएं,
आज तुम सभ्य हो,
हम रह गए असभ्य।
तुम्हारे मस्तिष्क उर्वर थे।
तुम्हें आती थी चालबाजियां।
हम खाते ही रहे कलामुंडियां,
तुम उड़ाने लगे यान,
बरसाने लगे आग
हम उगाते रहे धान

---

* सहायक निदेशक, बीएसएनएल, जयपुर

बांटते रहे शहद, साग
अपनी संततियों के लिए
तुम खुलवाते गए कान्वेंट
लदफद बढ़ने के लिए
बनाते गए मानव रक्त से गंधाते
सुगंधित सेंट।
धुपीली चट्टानों की पीठ से पीठ लगाए
कलुआए बड़े होते
हमारे नंगे बुच्चे बच्चे
बजाते रहे नगाड़े, पीटते रहे ढोल,
हंसाते रहे तुम्हें, पहन तरह–तरह के खोल।
हद हो गई
जब तुमने ही तिलिस्म रचा
निर्ममता से खांप दिया
स्रष्टारचित मनुज वृंद को
अपनी अतार्किक तलवार से।
एक को नाम दिया 'सभ्य'
दूसरे पर चस्पा दिया 'असभ्य'
तुम सभ्यताओं के 'आदि निवासी'?
हम 'आदिवासी' ?
तुम भेड़िया झुंड के सरताज
फिर भी काबिल ?
हम मेमने से सीधे
फिर भी जाहिल ?
धन्य हो सभ्यता के आभामंडल !
विकास के ढोंगी कमंडल !!

इससे भी अधिक हद तो तब हुई
जब तुमने ही स्वांग भरा–
हमारे इलाके में घुसने का टिकट ले
जालीबंद गाड़ियों में अपने कुनबे के साथ
हमें ही देखने आने लगे
जैसे हम हों कोई जिनावर
तुम हो मान्यवर ?
हमारी नग्नावस्था के
चित्र खींचने लगे
हमारी औरतों को भरमाने लगे।
उनके नंगे जिस्मों को भुनाने लगे
भूल गए तुम –
तुम्हारे और तुम्हारी मेमों के
कपड़ों के भीतर भी
ऐसे ही जिस्म हैं।

सावधान !! विकास के पहरुए सावधान !!
हमारे भाले अभी पैने हैं,
हमारे अयाल पहले जैसे ही घने हैं,
और क्षमताएं आदिम अवस्था में ही हैं।
फिर भी हम तुम्हें बख्शते हैं –
अभय देते हैं,
तुम कैद किए हुए
सूरज वाले मकान की झिर्रियां तक
हमारे लिए खोलो न खोलो,
विकास का मुँह तकती

हमारी पगडंडियों पर
कितने भी कांटे डालो,
हमारी हथेलियों की लकीरें तक
हमसे छीन लो
पर –
हमारी झुपड़ियों की किवड़ियां
खुली हैं तुम्हारे लिए,
हरियाए जंगलों की बाँहें
पसरी हैं तुम्हारे लिए
क्योंकि हम जानते हैं
कुछ ही काल में
जब थक चुकोगे तुम
अपने ही छल, द्वेश, दंभ,
पाखंड और व्यभिचार से,
असत्य, प्रमत्त लिप्सा अखंड से।
तब लौटोगे तुम
अपनी जड़ों की ओर,
अपने 'आदि' की खोज में
आदमीयत की तलाश में,
और हमारे पास
पूरी शिद्दत से सुरक्षित है आदमीयत।
तुम्हारे लिए भी हृदयभर
सहेजकर रखी है हमने
'कोरी मानवीयता'।

* * * * *

दहेज बनाम आत्मबल

* ज्ञानवती धाकड़

गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार से चली जा रही थी और उससे भी तेज रफ्तार से सविता के दिमाग में विचारों की श्रृंखला दौड़े चली जा रही थी, वह भयंकर ऊहापोह की स्थिति में थी कि आखिर वह कर क्या रही है, कहां जा रही है, और इसका अन्जाम क्या होगा, कहीं जिन्दगी पहले से भी बद्‌तर तो नहीं हो जायेगी आदि आदि। वह जितना ज्यादा सोचती उतना ही ज्यादा उसे अपना भविष्य अन्धकारमय लग रहा था, लेकिन अब कर भी क्या सकती थी बस गाड़ी के डिब्बे की एक सीट पर कोने में खिड़की से सटी हुई बिना किसी क्रिया के सुन्न सी बैठी हुई थी और सिर्फ बिना सिर पैर के विचारों के जाल में उलझती चली जा रही थी साथ ही देखती जा रही थी पीछे छूटते पेड़ पौधे, पहाड़, मिट्‌टी, पत्थर आदि को, लेकिन सब कुछ बिना किसी उद्देश्य के, क्योंकि मन में उठ रहा तुफान उसके विचारों को कहीं स्थिर होने ही नहीं दे रहा था बस अव्यवस्थित सी चुपचाप बैठी थी कभी कभी घबराहट के मारे आँखों से आसूँ भी छलक पड़ते। इन बिना कड़ी के विचारों का ताँता तब टूटा जब आसपास के मुसाफिरों में हलचल होने लगी, कुछ अपने बिस्तर आदि बाँधने लगे तो कोई अपने कपड़ों को ठीक करने लगे, तो कोई अपने बाल सँवारने लगे और साथ ही अपने बच्चों को उठा रहे थे कि 'उठो भई बम्बई आ गया, मुँह हाथ धो लो, बाल ठीक कर लो आदि आदि, मतलब साफ था कि सविता की भी मंजिल आ गई थी।

सविता भी तुरन्त सचेत हुई और अपने बिस्तर कपड़े आदि ठीक करने लगी, तभी चाय वाला, पान वाला, कुली, टैक्सी, खिलौने वाला आदि आदि अनेक आवाजें उसके कानों में पड़ने लगी, यानि कि बम्बई स्टेशन आ गया था और सविता को अपनी जिन्दगी का नया मोड़ देखने का समय भी आ गया था, जिसके बारे में उसे कुछ भी पता नहीं था, सब कुछ भविष्य की गहराइयों में छुपा हुआ था, और यही अस्पष्टता उसे अन्दर ही

---

* वरिष्ठ अधिवक्ता, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर

अन्दर झकझोरे जा रही थी लेकिन अब उसके पास कोई विकल्प था ही नहीं, कि कुछ ओर बात भी सोच सके। अतः उसने भी अपना बिस्तरबन्द उठाया और गाड़ी के बाहर आकर अजनबी सी इधर उधर देखने लगी, क्योंकि उसके लिए तो समूचा माहौल ही एकदम अन्जाना था, इस कारण से एक बार तो वह बहुत अधीर हो गई लेकिन अब करे तो क्या? बस अपने चारों तरफ देखा और जिस तरफ मुसाफिरों की भीड़ चली जा रही थी वह भी उसी तरफ चल पड़ी। क्योंकि उसने जिन्दगी में रेल का सफर सिर्फ एक बार जब बहुत छोटी थी तब किया था जब वह अपने पिताजी के साथ ननिहाल गई थी, लेकिन वह तो एक गॉव था जिसका छोटा सा स्टेशन था जहॉ पर गाड़ी से उतरते ही सामने के दरवाजे से निकलना हर किसी को समझ में आ सकता था लेकिन बम्बई स्टेशन पर तो उसे यह ही समझ नहीं आ रहा था कि आखिर वह स्टेशन से बाहर कैसे निकले, अतः बिना अपने दिमाग पर जोर डाले, बस चल पड़ी मुसाफिरों के पीछे पीछे। कुछ दूर चलने के बाद सविता ने देखा कि भीड़ ज्यादा गहरी होती जा रही थी और जबरदस्त धक्का मुक्की होने लगी तो उसने पंजे के बल ऊँचा होकर देखा तो पाया कि वहॉ से सभी बाहर जा रहे थे तो वह भी उसी ओर आगे बढ़ गई और बाहर आ गई, अब वह फिर असमंजस में पड़ गई कि वह किधर जाये, उसे तो यह भी पता नहीं था कि उसका गन्तव्य स्थान कहां पर था, वहां से कितनी दूर था, हाँ उसे जो वीणा के पिताजी ने बताया था वह जरूर मालूम था कि स्टेशन के बाहर जाकर टैक्सी ले लेना और एक कागज पर उन्होंने जो पता लिख कर दिया था वह टैक्सी वाले को बता देना, उसने वैसा ही किया और अपने गन्तव्य स्थान का कागज पर लिखे पते को बताकर टैक्सी में बैठ गई।

सविता इस नये माहौल में बड़ी घबराहट और डर महसूस कर रही थी, एक तो उसकी समस्या ही मुॅह फाड़कर खड़ी थी कि अब उसका क्या होगा, किस तरह से जीयेगी और दूसरी ओर वह अन्जान–अजनबी माहौल। उसे तो उस टैक्सी वाले से भी डर लग रहा था कि न जाने वो कैसा आदमी है उसे कहॉ ले जायगा, वो वीणा के पास पहुॅच भी पायगी या नहीं, अगर टैक्सी वाला बदमाश आदमी हुआ तो उसका क्या होगा, यह विचार आते ही वह सहम जाती और सोचने लगती कि यहॉ आकर तो उसने और भी बड़ी गल्ती कर ली, लेकिन अब क्या करे, अब जिस पथ पर वह चल चुकी थी वहॉ से पीछे मुड़कर देखा भी नहीं जा सकता था, अतः ईश्वर के भरोसे अपने आप को छोड़कर दिल थामकर चुपचाप बैठी रही और विचारों के भयंकर जाल में उलझती सुलझती रही। करीब एक घन्टे बाद जैसे ही टैक्सी ड्राईवर ने ब्रेक लगाया तो सविता

के विचारों को भी एकदम से ब्रेक लगा और चौंक कर टैक्सी वाले की तरफ देखने लगी, टैक्सी वाले ने भी उसे नया जानकर कहा 'बहिन आपके बताये हुए पते वाला बंगला यही है', सविता टैक्सी से नीचे उतरी और टैक्सी वाले को पैसे देकर सड़क के किनारे बने उस आलीशान बंगले को डरी डरी सी सहमी सहमी सी देखने लगी, लेकिन उसके अन्दर जाने की हिम्मत नहीं कर पा रही थी, फिर भी मरता क्या नहीं करता, वाली स्थिति में वह हिम्मत करके आगे बढ़ी और वीणा के पिताजी के द्वारा बताये अनुसार दरवाजे के दाऐं हाथ की तरफ लगे एक बिजली के बटन को दबा दिया जिससे बंगले के अन्दर घंटी बजने की आवाज हुई और तुरन्त ही एक अधेड़ उम्र की महिला ने दरवाजा खोला, तो सविता ने घबराई हुई आवाज में पूछा–'मॉजी वीणा यहीं रहती है क्या'? अधेड़ महिला बोली–कौन! मालकिन! अभी बुलाती हूॅ! आप यहॉ बैठिए। सविता सौफे के एक कोने में दुबक कर बैठ गई और अपने धड़कते दिल को सम्भालने की कोशिश करने लगी कि अब क्या होगा? अब क्या होगा? कहीं ऐसा तो नहीं हो जायगा कि वीणा जो इतने पैसे वाली है उसे पहचानने से ही इन्कार कर दे। और अगर वीणा ने ऐसा कर दिया तो वह कहॉ जायगी? यही सब सोच सोचकर सविता का दिमाग चिन्ताओं से बोझिल हुआ जा रहा था और उसे ऐसा लग रहा था कि वह अभी बेहोश होकर वहीं गिर जायगी, लेकिन वह करे भी तो क्या, बस सिर्फ अपने आपको संयमित रखकर वीणा की इन्तजार कर रही थी और अपने अनसुल्झे भविष्य के अनेकानेक चित्र मस्तिष्क पटल पर लाती मिटाती जा रही थी कि वीणा ने ड्राईन्गरूम में प्रवेश किया और सविता को देखते ही चिल्ला पड़ीकृकृकृकृसविकृकृसवि तुम यहॉ कैसे आ गई? आज इधर का रास्ता कैसे भूल गई? आज हम कितने सालों बाद मिल रहे हैं......आदि अनेक प्रश्नों की झड़ी लगा दी और दोनों सखियॉ यूॅ ही लिपटकर कुछ पलों तक खड़ी की खड़ी रह गई, जब हृदय के उफनते प्यार में कुछ संयम आया तब वीणा ने शान्ति से बैठकर पूछा–'कहो सवि क्या हाल है? यह मेरे बापू का बिस्तरबन्द कैसे उठा लाई? और तेरे कपड़े सामान आदि कहॉ है? क्या अभी तक सब बाहर ही पड़े है?

इन सब प्रश्नों के उत्तर में सविता फफक–फफक कर रोने लगी और रोती ही जा रही थी मुॅह से कोई शब्द निकल ही नहीं रहा था, बच्चों की तरह काफी देर तक वीणा की गोद में आँसू बहा लेने के बाद जब दिल में कुछ संयम आया तब उसने अपनी गाथा सुनानी आरम्भ की–

वीणा तेरे बापू ने ही मुझे उस जिन्दगी के तूफान से निकालकर तेरे पास भेजा है, उन्होंने ही मुझे यहॉ तक पहुॅचने का साहस दिया है–

वीणा जो सविता की स्थिति को देखकर बहुत बेकरार हुई जा रही थी, बोली तू भूमिका मत बना और सीधे सीधे तुरन्त मुझे सारी बात बता, मुझसे अब और सन्तोश नहीं किया जा रहा है, तो सविता बोली—वीणा यह तो तू शुरू से ही जानती है कि मेरे माता पिता की आर्थिक स्थिति कितनी खराब थी दिन रात मेहनत करने के बाद भी पिताजी हम सबके लिए बस खाने पहनने जितना ही जुटा पाते थे, और तुझे याद होगा कि जब तू और मैं छोटे थे तब मेरी मॉ कहा करती थी कि सवि तो हमारी इकलौती बेटी है तीन भाइयों की एक बहन, इसकी शादी में तो चाहे कितना भी कर्ज क्यों ना लेना पड़े, फिर भी हम शादी धूमधाम से करेंगे, समधी की हर इच्छा पूरी करेंगे ताकि हमारी बेटी जिस घर जायगी, वहॉ राज करेगी।

धीरे धीरे हमारा बचपन बीता और तेरे बापू ने तो, जो शुरू से ही प्रगतिशील विचारों के थे, तुझे अच्छा पढ़ाया लिखाया और योग्य बनाया तथा एक अन्तर्जातीय सुशील, पढ़ेलिखे एवॅ समझदार लड़के से तेरी शादी कर दी जहाँ जीजाजी ने एक पैसा भी दहेज के रूप में लेने से इन्कार कर दिया। लेकिन मेरे माता पिता तो ठहरे पूरे दकियानूसी विचारों के, वो तो बस यह ठानकर ही बैठ गये, कि चाहे कुछ भी हो जाये, शादी करेंगे तो पैसे वाले ब्राह्मण लड़के से ही। इसीमें तेरी शादी के बाद ये चार साल बीत गये और वो जगह जगह ठोकरे खाते फिरे, लड़के वालों के सामने अपने आत्मस्वाभिमान की बलि देकर गिड़गिड़ाते रहे और आखिर में जहाँ मेरी सगाई तय की उनकी बलिवेदी पर मेरे पिता ने जो, थोड़ी बहुत पूंजी बचाई थी वह तो उनके भेंट चढ़ी सो चढ़ी, लेकिन शादी तक इतनी और चढ़ जाती कि वो इस जिन्दगी में तो सिर्फ उसका ब्याज ही चुकाते रह जाते, मूल चुकाने की तो शायद स्थिति आती ही नहीं। मेरी मॉ ने अपने अंग के सब गहने जो भी थोड़े बहुत उसके पास थे मेरे लिए खोल दिए और बाकी पैसा इकट्ठा करने के लिए जगह जगह कर्ज लेने के लिए हाथ फैलाने लगे। मैं उनकी यह दशा देखकर दिनरात व्याकुल रहने लगी, कि मैं लड़की के रूप में पैदा ही क्यों हुई, जिस समाज का नियम ही ऐसा है कि **लड़की के माँ बाप उसे पैदा करके जितना ज्यादा खिलापिलाकर उसके भारीर पर माँस मज्जा चढ़ाते हैं उतने ही ज्यादा वजन का धनदौलत उसकी डोली उठवाने के लिए देना पड़ता है।** ऐसे समाज में मैंने लड़की के रूप में जन्म लेकर भयंकर पाप किया है, अब इस पाप से मेरी मुक्ति कैसे होगी। अगर मैंने इस स्थिति में कुछ नहीं किया तो मैं अकेली ही मेरे माँ बाप पर इतना बोझ डाल दूंगी कि वो तो जिन्दगी भर कभी सीधे खड़े हो ही नहीं सकेंगे, लेकिन इसका दुष्परिणाम मेरे तीनों भाइयों को भी भुगतना पड़ेगा। मैं इतनी पढ़ी लिखी भी नहीं थी कि

परिस्थितियों का खुले आम मुकाबला करके स्वयं के पाँवों पर खड़ी होकर इज्जत की जिन्दगी जीने का हौंसला कर सकती। इस तरह मैं मेरी असमर्थता और समाज के इन कलुषित रीति–रिवाजों के बीच तड़पने लगी, दिन रात इसी असमंजसता की स्थिति में घुटते घुटते एक दिन मैं बिल्कुल अस्थिर हो गई और एक रात खुदकुशी करने के लिए घर से निकलकर दरिया की तरफ बढ़ रही थी कि तेरे बापू ने जो शहर से गॉव लौट रहे थे, ने मुझे देख लिया और मेरा पीछा करने लगे तो मैं और भी तेजी से भागने लगी लेकिन तेरे बापू ने मुझे पकड़ ही लिया और पूछने लगे कि तू इतनी रात गये इधर कहाँ जा रही है, लेकिन उस वक्त मेरा दिलोदिमाग मेरे वश में नहीं था और मैं बिना कुछ जवाब दिए और भी तेजी से दौड़ने लगी, इस पर तेरे बापू ने पकड़कर एक तमाचा मेरे गाल पर मारा तो मैं एकदम सकते में आ गई और होश में आने के बाद मेरे पास तेरे बापू के पैरों में गिरकर रोने के अलावा और था ही क्या।

बापू ने मेरी सारी बात सुनी और उसी वक्त अपना बिस्तरबन्द मुझे दिया, स्टेशन पर ले गये और टिकट लेकर कुछ रुपये भी मुझे दिए तथा कहा कि तू तुरन्त मेरी बेटी और तेरी बचपन की सहेली वीणा के पास चली जा और वहाँ जाकर जिन्दगी जीना सीख, कि किस तरह मेरी बेटी अपने आत्मबल के सहारे अपनी जिन्दगी को जी रही है। तुझे पता है कि वीणा की शादी के तीन साल बाद ही वह विधवा हो गई थी फिर भी आज वह हिम्मत से अपना सारा कारोबार सम्भाल रही है और समाज में एक सम्मानजनक जीवनयापन कर रही है, सिर्फ अपना ही नहीं बल्कि वह अपने बेटे को भी पढ़ा लिखाकर एक संस्कारी जीवन प्रदान कर रही है। उनकी इन बातों से मुझमें कुछ हिम्मत का संचार हुआ और मैं उनके साथ साथ स्टेशन पर चली आई और अब तुम्हारे पास। मैंने बापू से यह सब बात गुप्त रखने के लिए कह दिया था अन्यथा मेरे माता पिता मेरे इस कदम को कदापि बर्दाश्त नहीं कर पाते और मेरे पीछे पीछे यहाँ तक आ जाते और आगे तुम जानती ही हो कि क्या होता।

वीणा ने सारी बात सुनी और प्यार से सवि को गले से लगाकर बोली–

बहन परेशानी और चिन्ताएं तो हर इन्सान के साथ जुड़ी ही रहती हैं, उनसे हारना या उनसे भागना तो कायरता है उनका मुकाबला करना ही सच्ची जिन्दगी का नाम है। मुझे ही देखो मैं भी तो शादी के वक्त तुम्हारे जितनी ही पढ़ी लिखी थी, क्योंकि अपने गाँव में आगे पढ़ने की व्यवस्था ही नहीं थी, फिर भी मेरे बापू मुझे घर में ही कुछ न कुछ पढ़ाते ही रहते थे और फिर यहाँ पर तुम्हारे जीजाजी शुरू से ही मेरे प्रेरणा के स्त्रोत

रहे, वो हमेशा बहुत सी दुनियॉदारी की बातें बताते रहते थे और व्यवसाय से भी मुझे किसी न किसी रूप से जोड़े रखते थे और हर कार्य करने में आत्मबल समाहित रखने पर जोर देते थे। विधि की विडम्बना थी कि इतने कम समय में ही ईश्वर ने मुझसे उन्हें छीन लिया, लेकिन मैं फिर भी उनके दिए हुए आत्मबल के सहारे से ही चल रही हूॅ और सोचती हॅू कि इस तरह हिम्मत से चलती रही तो दीपू को, उनकी निशानी को एक महान पुरूष बनाऊंगी।

इन सब बातों को सुनकर सविता में भी कुछ साहस का संचार हुआ और दोनों सखिऐं नाश्ते आदि में लग गई तथा हॅंसी खुशी में अपने आपको रमाने की कोशिश करने लगी।

इस तरह से कुछ दिन निकले होंगे कि सविता को इस तरह वीणा के यहाँ दिन भर बैठे बैठे खाना अखरने लगा और उसके दिमाग में यह प्रश्न बार बार आने लगा कि आखिर वह कब तक वीणा पर बोझ बनी रहेगी?......और एक दिन उसने हिम्मत करके वीणा को कह ही दिया कि 'बहन मुझे कहीं नौकरी लगवा दो तो अच्छा है, यूँ बैठी रहकर मैं थक चुकी हूँ इसलिए कोई भी छोटी नौकरी ही लगवा दो।' यह सुनकर वीणा पहले तो उस पर बहुत नाराज हुई लेकिन फिर यह सोचकर कि किसी काम में लग जाने से सवि के मन में एक आत्मविश्वास पैदा होगा जो किसी के भी जीवन की प्रथम आवश्यकता है अतः उसने कहा कि तुम मेरे ही आफिस में काम पर लग जाओ, जिस पर सवि राजी नहीं हुई तो वीणा ने कोशिश करके उसे पास के ही एक स्कूल में चपरासिन की नौकरी पर लगवा दिया और साथ ही उसे आगे पढ़ाई करने के लिए भी प्रेरित भी करने लगी।

धीरे धीरे समय आगे बढ़ रहा था और सबकुछ सामान्यरूप से चलने लगा, सविता ने भी चपरासिन की नौकरी करते करते बी. ए. पास कर लिया और अब उसे एक फर्म में अच्छी नौकरी भी मिल गई थी, इस तरह दोनों सखियों खूब खुश रहने लगी, जिनका केन्द्र दीपू था जिसकी प्रगति में दोनों जी जान से जुटी हुई थी।

एक दिन शाम, जब सविता अपने आफिस से घर लौट रही थी तो उसने देखा कि उसके बंगले के पास वाले मकान पर एक टैक्सी आकर रूकी और उसमें से जो पुरुष बाहर आया वह उसे देखती ही रह गई और एकदम से सुन्न होकर वहीं खड़ी की खड़ी रह गई, उसे लगा कि वह गहरे अन्तराल में डूबती चली जा रही है और वह चकराकर

वहीं गिरने लगी, तभी उस टैक्सी में बैठे युवक ने उसे सम्भाला, तुरन्त सविता पूरे होश में आ गई और झटके से उस युवक से अलग होकर खड़ी हो गई। उसके दिमाग को झटका तब लगा जब रविदत्त ने उसे उसका नाम लेकर पुकारा और कहा कि 'सविता देवी तुम यहाँ कैसे? तुम तो आत्महत्या कर चुकी थी?

तब तक सविता के दिमाग में उठ रहा ज्वार भी कुछ शान्त हो चुका था अतः अपने आपको सम्भालते हुए बोली...... हॉ .....मैं, आपके एवं आपके पिताजी के कारनामों के कारण आत्महत्या तो कर ही चुकी होती लेकिन वीणा के बापू ने मुझे बचा लिया और यह नई जिन्दगी प्रदान की। अब मैं अपनी जिन्दगी से बहुत खुश हूॅ कृपया आप मुझे उन घिनौने दिनों की याद नहीं दिला..........

सविता अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाई थी कि वीणा भी अपने आफिस से लौटकर आ गई और वह दरवाजे पर ही इन दोनों के हावभाव देखकर सारी स्थिति को समझ गई और अपने ही गॉव के रविदत्त को खड़ा देखकर पूछा–कहिए रविदत्तजी क्या हाल है? रविदत्त जो सकपकाया सा खड़ा था एकदम चौंककर हड़बड़ाकर बोला मैं... मैं तो बिल्कुल ठीक हूॅ लेकिन मेरी पत्नि बहुत बीमार है उसीके इलाज के लिए मैं यहॉ आया हुआ हूॅ और इत्तेफाक देखिए कि मुझे आपके ही पड़ोस में मकान किराये पर मिला है जिससे आप लोगों से भी मिलना हो गया। वीणा ने पूछा कि क्यॅू क्या हो गया आपकी पत्नी को, जिसपर रविदत्त शर्माया हुआ सा बोला कि क्या बताऊॅ एक बार बस यॅू ही मेरी पत्नी को पड़ौस की एक औरत के गहने देखकर उसी प्रकार के गहने खरीदने की इच्छा हो गई, मैंने उसे समझाया कि इस प्रकार के गहने खरीदने में अभी काफी पैसा लग जायगा अतः थोड़ा रूककर खरीदेंगे, बस इतनी सी बात पर वह नाराज हो गई और ऐसा जहर खा गई कि उसका असर कई ईलाज करवा लेने के बावजूद भी नहीं गया और उसके कारण उसे कभी कभी मिर्गी के जैसे दौरे पड़ने लग गये। गॉव के डाक्टरों का कहना था कि यहाँ बम्बई के अस्पताल में ऐसा इलाज है कि साल छः महिने इलाज करवाने के बाद शायद यह ठीक हो जायगी, इस कारण से मैं यहॉ आया हुआ हूॅ।

वीणा यह सब सुनकर बड़ी शान्त स्वर में लेकिन तीखे कटाक्ष में बोली........

'तो क्या हुआ, इतना तो आपकी पत्नी के पिताजी ने दहेज में ही दे दिया होगा, उसमें से थोड़ा अगर इसके इलाज में खर्च भी हो जाय तो क्या फर्क पड़ता है।

रविदत्त जो शर्म से गड़ा जा रहा था बोला वीणाजी मुझे माफ कर दीजिए, उस समय मेरे दिलोदिमाग पर सिर्फ पैसा ही सवार था और पैसे की चमक ने मुझे इतना अन्धा कर दिया था कि मुझमें अच्छा बुरा सोचने की शक्ति ही समाप्त हो गई थी और यही कारण था कि मैं इतनी बड़ी गलती कर बैठा कि सविता जैसी सुशील, समझदार तथा होशियार लड़की को पैसे की बलिवेदी पर चढ़ा बैठा, खैर मेरे किए की सजा तो मैं भुगत ही रहा हूँ लेकिन आज मैं यह प्रण करता हूँ कि मैं मेरे पुत्र अनिल की शादी के लिए दहेज तो क्या जातपात को भी नहीं देखूंगा।

'प्लीज.............. वीणाजी अब तो मुझे माफ कर दीजिए, जो गल्ती मैं कर चुका हूँ उसके लिए प्रायश्चित के अलावा अब मेरे पास कुछ नहीं बचा है'

वीणा बोली – खैर जो हुआ सो बीत गया, अब तो उससे शिक्षा ग्रहण करने में ही फायदा है। अच्छा अब हम चलते हैं, अभी हमें घर का कामकाज भी तो देखना है।

रविदत्त ने सकुचाते हुए कहा–'क्या ही अच्छा होता आज शाम का खाना आप दोनों हमारे यहॉ ही लेती क्योंकि हम सब एक गांव के साथी तो आज भी हैं, वीणा कुछ सोचने लगी, लेकिन सविता जो इतनी देर से मौन धारण किए हुए उनके वार्तालाप सुन रही थी एकदम बोली,... नहीं नहीं आज तो दीपू के स्कूल में प्रोग्राम है हमें वहॉ जाना है। लेकिन रविदत्त तो अपनी बात पर अड़ ही गया और बोला कि आज नहीं आ सकती हो तो आप लोग कल दोपहर के खाने पर आए, इस तरह मेरी पत्नी को भी आप लोगों का साथ मिल जायगा, वैसे तो वह बिल्कुल सामान्य ही रहती है बस जब दौरा पड़ता है तब कभी बेहोश हो जाती है या कभी असामान्य सी हरकतें करने लग जाती है। बहुत आनाकानी करने पर भी जब रविदत्त नहीं माना तो दोनों को अनमने ही उसके यहॉ जाने के लिए हॉ करनी पड़ी।

दूसरे दिन दोपहर को जब दोनों सखिऐं रविदत्त के घर पहुँची, तो रवि दरवाजे पर ही खड़ा उनका इन्तजार करता हुआ मिला, और उन्हें आया हुआ देख खुशी से अपनी पत्नी को आवाज दी .... आरती, बाहर आओ, मैहमान आ गये हैं। रविदत्त की पत्नी आरती जो पलंग पर बैठी बैठी अपना श्रृंगार कर रही थी, अपने पति की आवाज सुनकर भी नजरअन्दाज कर अपने काम में ही व्यस्त रही, उसे सभ्यता एवं तौर तरीकों का पता ही कहाँ था, वह तो सिर्फ सोने की चमक और माया के भ्रमजाल को ही अपना सबकुछ मान अहँ के ताने बाने में बुनी हुई बैठी रहती थी, वह सिर्फ इतना ही बोल पाई कि

'ठहरो जरा नया वाला नेकलेस और पहन लूँ और .... वह आगे कुछ नहीं बोल सकी, कि उसे दौरा पड़ गया, रविदत्त अपने दहेज में मिले ग्रहस्थ जीवन का यूँ पर्दाफाश होते देख शर्म से गड़ा जा रहा था–लेकिन दोनों सखियाँ परिस्थिति को भाँपकर तुरन्त रविदत्त की पत्नी को सम्भालने के लिए दौड़ पड़ी।.....

* * * * *

आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों का कहानी रूपांतरण

प्रस्तुति : इंदिरा दांगी

मासूमों के हक़ में

इंदिरा दांगी

हरी चुनरी में सँवरी दुल्हन–सी धरती, जहाँ के आसमान से कभी हरि का यान गुज़रा था; ऐसी धरा का मालिक राज्य हरियाणा आज देश की तरक़्क़ी में अपना परिश्रम, अपना पसीना यों बहाता है मानो अशर्फ़ियाँ लुटाता कोई राजा! परिश्रमी राज्य के भोले–सरल लोग ये नहीं जान पाये कि तरक़्क़ी आधुनिकता के परिधान में जब सज–सँवर कर आती है तो अपने साथ कुछ काले साये भी लाती है!

ज़िला फ़रीदाबाद का एक पुरसकून गाँव सेहतपुर .....अपने नाम को सार्थक करता पगडंडियों, पनिहारिनों, लहलहाते खेतों और धूल में नाचते बच्चों का गाँव! आधुनिकता के संग आये काले सायों की नज़र इस सरल सुंदरता को लग गई। यहाँ की धरती ने जिन्हें पनाह दी वे ही यहाँ के जल–वायु, आकाश–पाताल में ज़हर घोलने लगे! गाँव सेहतपुर के भोले निवासियों ने छले जाने का एहसास होने पर शिकायत दर्ज़ करवायी कि यहाँ स्थापित बहुत सारे कारखाने वातावरण को और उनके गाँव में बहने वाले पानी को ज़हरीला कर रही हैं। उन्होंने फ़रीदाबाद प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड हरियाणा में भी शिकायत दर्ज़ करायी। मगर अफ़सोस, जैसा कि होता है अमूमन, काले सायों की ताक़त के सामने व्यवस्था का हारा हुआ उदासीन रुख! कहीं से कोई कार्रवाई नहीं हुई।

अब ??

इस मुल्क में मासूमों के हक़ और हिफ़ाज़त के लिये तय ज़िम्मेदारान जब कुछ नहीं कर पाते, तब हमारा मानव अधिकार आयोग विष्णु के छत्र की तरह, लोगों की रक्षा के लिये आगे आता है। सब तरफ़ से निराश वे लोग आयोग की ओर आशा भरी आँखों से देखने

प्रतिष्ठित युवा कहानीकार, भोपाल

लगे। सेहतपुर गाँव के लोगों ने अपनी अंतिम उम्मीद के तौर पर मानव अधिकार आयोग में अपनी शिकायत दर्ज़ करवायी और इस मामले में हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की।

सदैव की तरह, आयोग के सजग–समर्पित सदस्यों ने इस मामले को भी पूरी गंभीरता से लिया। तुरंत कार्यवाही की गई और आयोग के दिशानिर्देश पर वातावरणीय इंजीनियरिंग मुख्यालय से जानकारी दी गई कि संभागीय कार्यालय फ़रीदाबाद के अनुसार लगभग 93 औधोगिक इकाईयाँ फ़रीदाबाद ज़िले के गाँवों में अवैधानिक रूप से क्रियान्वित हो रही हैं।

हरियाणा के राज्य प्रदूषण नियमन बोर्ड ने इनमें से 55 इकाइयों के लिये वर्ष 2009 में एक आदेश पारित किया। इस आदेश का पालन किया गया जिसके परिणामस्वरूप इन इकाइयों को सील (बन्द) कराकर उनकी बिजली आपूर्ति बंद कर दी गई। लेकिन काले सायों की वही शैतानी ताक़त... कुछ समय बाद बोर्ड के द्वारा लगाई गई सील को इन इकाइयों द्वारा तोड़ दिया गया। उत्पादन प्रक्रिया फिर से शुरू हो गई। सेहतपुर और आसपास के गाँवों की निर्दोष हवा में फिर प्रदूषण के अदृश्य नाग बसने लगे! ज़िला प्रशासनिक अधिकारी ने भी इस आदेश का पालन कराने में कोई रुचि नहीं ली। उन्होंने आयोग को बताया कि इन 55 औद्योगिक इकाइयों के अलावा 38 अन्य औद्योगिक इकाइयाँ इस क्षेत्र में चल रही हैं। फ़रीदाबाद के संभागीय अधिकारी ने यह भी बताया कि वे इन 38 इकाइयों को बंद करने के आदेश पहले ही दे चुके हैं। इन इकाइयों को बंद कराने की कार्यवाही इस आदेश के नोटिस पीरियड के ख़त्म होने पर की गई थी।

यह रिपोर्ट सिद्ध करती है कि ये अवैध औद्योगिक इकाइयाँ इस क्षेत्र को प्रदूषित कर रही हैं जबकि संबंधित अधिकारी इस बात की जानकारी रखते हुये भी आँखें मूँदे हैं। परिणामस्वरूप स्थानीय निवासियों और आसपास के गाँवों के निवासियों की ज़िन्दगियाँ और उनका जल–जंगल–ज़मीन ख़तरे में है। यह तो उनके मानव अधिकारों का सरासर हनन है ....लेकिन आयोग के रहते, लोगों को उनके मूल मानव अधिकारों से कोई कैसे वंचित कर पाता ?

अब हरियाणा राज्य प्रदूषण नियामक बोर्ड के अध्यक्ष से जवाब तलब किया गया और उन्हें आदेश दिया गया कि वे इस मामले की पूछताछ कर एक रिपोर्ट भेजें कि वे कौन–कौन व्यक्ति हैं जो इन अवैध औद्योगिक इकाइयों को संचालित करवाने के ज़िम्मेदार हैं। बोर्ड को आयोग ने आदेश दिया कि प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों को बंद

करवायें और तत्पश्चात् आयोग को सूचित करें। आयोग ने बोर्ड को प्रतिक्रिया और जवाब देने के लिये 6 सप्ताह की मोहलत दी।

आयोग के आदेश का असर हुआ। हरियाणा राज्य प्रदूषण नियामक बोर्ड/मंडल के अध्यक्ष ने पत्र दिनांक 30/11/12 के द्वारा माननीय आयोग को बताया कि कार्यालय ने 94 इकाइयों की पहचान की है जो कि निहारपार क्षेत्र में सन् 2009 से चल रही हैं; और अवैध हैं। मंडल ने इन सभी इकाइयों को ज़िला प्रशासन के द्वारा नियुक्त मजिस्ट्रेट और संभागीय मंडल अधिकारी के सम्मुख न सिर्फ़ बंद कराया बल्कि इनकी बिजली भी काटी गई। इतना ही नहीं, कई पत्र संबंधित वरिष्ठ कार्यकीय (कार्य निर्वाह) अभियंता डीएचबीवीएन को भेजे गये हैं। माननीय आयोग को यह भी जानकारी दी गई कि अधीक्षक अभियंता, डीएचबीवीएन एवं उप आयुक्त फ़रीदाबाद ने बिजली विभाग के संबंधित अधिकारियों को बिजली काटने के निर्देश दिये हैं।

लेकिन नतीज़ा वही –ढाक के तीन पात ! विभागीय अधिकारियों की जानकारी में पूरा मामला होते हुए भी ये औद्योगिक इकाइयाँ फिर काम करने लगीं। संभागीय कार्यालय ने अवैध औद्योगिक इकाइयों के ख़िलाफ़ पुलिस में रिपोर्ट लिखवायी। पुलिस के रोज़नामचा में कहने को तो एफआईआर दर्ज़ हो गई लेकिन 'देशभक्ति–जनसेवा' वालों ने इन प्रदूषण–जननी इकाइयों के मालिकों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की।

लब्बोलुआब ये कि पुलिस विभाग और बिजली विभाग के ज़िम्मेदारान ने कोई ज़मीनी कार्रवाई नहीं की और सेहतपुर ज़िला फ़रीदाबाद में हवा, पानी, धरती, रहवासियों के स्वास्थ्य और साँसें तक प्रदूषित होती रहीं ....होती रहीं !

लेकिन माननीय आयोग मानव अधिकारों का हनन कभी क्षमा नहीं करता! उपरोक्त कार्यवाही के पश्चात् सीधे ही मुख्य सचिव, हरियाणा सरकार से जवाब तलब किया गया और संबंधित मामले को स्वयं देखकर उन व्यक्तियों पर कार्रवाई करने के विषय में निर्देशित किया गया, जो इस अवैध कार्य में संलग्न हैं। मुख्य सचिव को आयोग ने निर्देशित किया कि इन अवैध इकाइयों को 6 सप्ताह के भीतर बंद करायें और आयोग को रिपोर्ट करें।

25/5/13 को मानव अधिकार आयोग के सदस्य माननीय श्री सत्यव्रत पाल द्वारा मुख्य सचिव, हरियाणा सरकार को पुनः एक स्मरण पत्र लिखा गया कि वे संबंधित अवैध इकाइयों पर कार्रवाई कर उन्हें बंद करायें और आयोग को रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

वे मुतमईन हैं कि पत्थर पिघल नहीं सकते।

मैं बेकरार हूँ आवाज़ में असर के लिये।।

अगर काले सायों के पास अवैध शक्तियाँ थीं तो माननीय आयोग के पास वैधानिक ताक़त!

आयोग के उपरोक्त पत्राचार और लगातार के दवाब का असर ये हुआ कि अध्यक्ष, हरियाणा राज्य प्रदूषण नियंत्रण मंडल ने बताया कि सभी 94 अवैध इकाइयों की बिजली पुलिस बल के माध्यम से मजिस्ट्रेट के समक्ष काट दी गई है। लेकिन आयोग के समक्ष प्रस्तुत की गई इस रिपोर्ट में यह नहीं दर्शाया गया कि अवैध इकाइयों के संचालकों या उत्तरदायी व्यक्तियों पर क्या कार्रवाई की गई है।

पुनः मुख्य सचिव, हरियाणा सरकार से आग्रह किया गया कि किसी वरिष्ठ सरकारी अधिकारी के सानिध्य में एक जांच समिति गठित कर यह बताया जाये कि हरियाणा राज्य प्रदूषण नियंत्रण मंडल, बिजली विभाग, पुलिस विभाग और ज़िला प्रशासन के कौन–कौन अधिकारी हैं जो इन अवैध इकाइयों के संचालन में सहयोग कर रहे थे जिसकी वजह से ग्राम सेहतपुर और आसपास की नहरें प्रदूषित हुईं। 12 सप्ताह में आयोग के समक्ष रिर्पोट प्रस्तुत करने को कहा गया।

इस पत्र की एक प्रति शिकायतकर्ता को उसकी टिप्पणी हेतु भेजी गई, 8 सप्ताह में उसे अपनी टिप्पणी आयोग को भेजनी होगी।

(प्रकरण नं. 208/7/3/12)

* * * * *

अब नहीं

इंदिरा दांगी

हरिशंकर परसाई ने 'भोलाराम का जीव' में एक ग़रीब सेवानिवृत्त कर्मचारी की पेंशन के लिये भटकती आत्मा की दारुण कथा लिखी है जिसे उसका हक़ दिलवाने के लिये देवर्शि नारद आसमान से उतरकर आते हैं और ख़ुद भी सरकारी तंत्र की अव्यवस्था का शिकार हो जाते हैं। हमारी ये कहानी भी ऐसे ही एक परेशान मानव की कथा है; फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि उसे न्याय दिलवाने के लिये किसी देवर्षि को आसमान से उतरकर नहीं आना पड़ा। मानव अधिकार आयोग ने उसके अधिकारों की रक्षा की।

एक रिटायर्ड चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी कबूल सिंह ने माननीय आयोग के समक्ष गुहार लगाई कि वह पुनर्वास सेवा समाजसेवा विभाग, (एनसीटी, दिल्ली सरकार) से रिटायर्ड है और उसने अपने रिटायरमेंट से पहले चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की आवश्यक ट्रेनिंग पूर्ण की थी। इसके बावजूद, उसकी वेतनवृद्धि ग्रेड पे 1800 रुपये से बढ़ाकर 2400 रुपये नहीं की गई थी। और उसकी पेंशन का निर्धारण 1800 रुपये के आधार पर किया गया। विभाग ने उसके बार–बार के निवेदन के बावजूद उसकी पेंशन 2400 रुपये के आधार पर नहीं तय की। इसका परिणाम ये कि वह अपना गुज़ारा बमुश्किल कर पा रहा है। उसने आयोग से निवेदन किया कि उसकी पेंशन का पुनर्निर्धारण कराया जाये और उसकी वेतनवृद्धि के अंतर का ब्याज़ सहित भुगतान कराने का आदेश दिया जाये ताकि उसे अपना बुढ़ापा आर्थिक संकटों से जूझते न बिताना पड़े।

माननीय आयोग ने उस परेशानहाल रिटायर्ड चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के हित में तुरंत संज्ञान लिया और मुख्य सचिव, दिल्ली को नोटिस भेजकर संबंधित मामले पर रिपोर्ट चार माह में प्रस्तुत करने को कहा। इसी संदर्भ में वरिष्ठ अधीक्षक (प्रशासकीय)

प्रतिष्ठित युवा कहानीकार, भोपाल

समाजसेवा विभाग, एनसीटी, नई दिल्ली के पत्र (दिनांक 16/3/12) द्वारा बताया गया कि कबूल सिंह के प्रकरण का निराकरण जल्द ही हो जायेगा। उन्होंने पत्राचार में दिनांक 14/3/12 का पत्र संलग्न किया जो पुनर्वास सेवा अधिकारी के द्वारा जारी किया गया था। पत्र में लिखा था,

''यह सूचित किया जाता है कि सरकारी वेतन का पुनः निर्धारण किया जा रहा है। आदेश जारी किये जा चुके हैं। जिनका आदेश क्रमांक एफआरएस/एडीएमबीएन/पेंशन/2009–10/1027–1031 दिनाँक 14/3/12 है, उनको ग्रेड पे 2,000 दिया जायेगा। अभी शासकीय तृतीय एमएसीपी प्रकरण लंबित है। उन्हें इसका लाभ यथाशीघ्र मिलेगा।''

ये जवाब मामले को कुछ टालने वाले अंदाज़ में दिया गया जान पड़ता था; माननीय आयोग ने इस रिपोर्ट पर विचार कर देखा तो वे कतई संतुष्ट नहीं हुये। इस त्वरित प्रकरण में कर्मचारी 30/06/2010 को सेवानिवृत्त हुआ था और डेढ़ साल बाद भी विभाग अपने उस कर्मचारी के साथ न्याय करने में पूर्णतः असफल साबित हुआ था; जिसने अपनी पूरी युवा उम्र विभाग को दे दी थी। यहाँ तक कि उस ज़रूरतमंद बुजुर्ग कर्मचारी की विभाग पर बकाया राशि को चुकाने के लिये भी न तो कोई प्रयास किया गया था और न ही कोई गंभीरता दिखाई गई थी! माननीय आयोग के नोटिस भेजने पर भी विभाग द्वारा अपने पूर्व कर्मचारी की पुनर्निधारित पेंशन, ग्रेच्युटी पुनर्योजन एवं छुट्टियों का पैसा 2400 रुपये के ग्रेड पे के अनुसार नहीं दिया गया, जैसा कि उस पूर्व कर्मचारी ने बताया और विभाग ने भी उसे ग़लत नहीं बताया।

माननीय आयोग ने विभाग की इस ग़ैरज़िम्मेदाराना कार्यवाही को गंभीरता से लिया जिसमें कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के लाभ को समय पर नहीं दिया गया। दिनांक 06/03/2012 का एक अन्य पत्र शिकायतकर्ता को पुनर्वास सेवा विभाग के मुख्यालय द्वारा भेजा गया था कि ग्रुप डी कर्मचारियों के ऐसे सात प्रकरणों का विभागीय निर्णय होना बाक़ी है।

आयोग ने पीड़ितों के हित में इस मामले को तुरंत संज्ञान में लेकर, मुख्य सचिव (एनसीटी, नई दिल्ली) एवं उपसचिव, गृह (एनसीटी, दिल्ली) और गृह विभाग (पुलिस), नई दिल्ली को इस प्रकरण को बिना किसी देरी के जल्द से जल्द चार सप्ताह के भीतर सुनश्चित करने का निर्देश दिया। मुख्य सचिव, एनसीटी, दिल्ली सरकार को दिशा

निर्देशित किया गया कि वे एक जाँच समिति गठित कर ऐसे अधिकारियों का पता लगायें जो सेवानिवृत्ति के दावा प्रकरणों को निपटाने में देरी कर रहे हैं और जिनकी लापरवाही या उदासीनता के कारण ये चतुर्थश्रेणी के कर्मचारी अपने बचे सेवानिवृत्ति लाभ के लिये ऑफिस–दर–ऑफिस भटकने को विवश हो गये हैं।

अब राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के सख़्त रवैये का असर उस विभाग पर तो होना ही था। इस प्रकरण के प्रतिउत्तर में, मुख्य अधिकारी, पुनर्वास सेवायें, एनसीटी, दिल्ली सरकार के पत्र क्रमांक 4/4/12 द्वारा लिखे पत्र के साथ, वेतन और वित्त अधिकारी, दिल्ली सचिवालय, एनसीटी, दिल्ली सरकार को लिखा पत्र संलग्न कर भेजा यानी मय सबूत अपना ये पक्ष माननीय आयोग के समक्ष रखा कि कबूल सिंह की वेतन का पुनर्निर्धारण हो चुका है। इतना ही नहीं, उसके साथ–ही–साथ अन्य छह कर्मचारियों जिनका खोजबीन समिति ने वेतन पुनर्निर्धारण किया है, उनकी वेतन का भी पुनर्निर्धारण हो गया है। वेतन एवं वित्त अधिकारी को इस संबंध में त्वरित कार्यवाही के लिये आदेश (दिनांक 03/04/2012) दे दिया गया है।

आयोग ने इस रिपोर्ट पर आँख मूँदकर भरोसा नहीं किया। बात जब मजलूमों के हक़ की हो तो आयोग कभी कोई कसर नहीं छोड़ता ! आयोग ने इस रिपोर्ट पर जब संज्ञान लिया तो पाया कि यह प्रकरण (आदेश दिनांक 04/04/2012) अभी तक वेतन एवं वित्त अधिकारी के पास निराकरण के लिये नहीं भेजा गया है। यह रिपोर्ट वेतन की बची राशि एवं अन्य सेवानिवृत्ति लाभ पर मौन थी, जिनका उल्लेख पत्र दिनांक 03/04/2012 और दिनांक 04/04/2012 के पत्र में किया गया था।

अपनी तत्परता, निष्ठा और न्याय के लिये विख्यात भारत के राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने एक विभाग के रिटायर्ड चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी को न्याय दिलाने की मुहिम में पुनः अपनी कार्यवाही आगे बढ़ायी। आयोग ने पुनः प्रमुख सचिव, पुनर्वास सेवायें, एनसीटी, दिल्ली सरकार को यह मामला भली भाँति वेतन एवं वित्त अधिकारी के पास पहुँचाने को सुनिशिचत करने को कहा और सेवानिवृत्ति लाभ के अंतर का भुगतान जो कि ग्रेच्युटी, ऐरियर्स, पेंशन का अंतर सभी सेवानिवृत्त कर्मचारियों को चार सप्ताह में पूर्ण कराने को कहा। सभी 48 चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों –जिनके वेतन के पुनर्निर्धारण में काफ़ी देर हो गई है– उनकी सेवाराशि के तुरंत भुगतान के लिये क़दम उठाने को कहा।

सचिव, समाजसेवा विभाग, एनसीटी, दिल्ली सरकार ने भी आयोग के दवाब में यही निर्देश दिये कि इस प्रकरण में देरी के कारणों एवं उत्तरदायित्वों की जाँच स्थिति पता कर रिपोर्ट को चार सप्ताह में प्रस्तुत की जाये।

उपरोक्त निर्देशों के प्रतिक्रियास्वरूप एक आंतरिक उत्तर दिनांक 23/05/2012 को, प्रमुख पुनर्वास सेवायें, एनसीटी, दिल्ली सरकार द्वारा आयोग को बताया गया कि इस मामले को पीएओ–एक्स दिल्ली सचिव, नई दिल्ली के पास सेवानिवृत्त कर्मचारियों के मामले का निबटारा एक सप्ताह के भीतर करने का निर्णय हुआ है। .....लेकिन ये आश्वासन भी एक भरम निकला। आयोग को उनका निर्णय नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि उनके पास कोई निर्णय अब तक था ही नहीं!

माननीय आयोग ने अपना रवैया कुछ और सख़्त करते हुये लिखा कि इस प्रकरण में जहाँ चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी वर्ष 2010 में सेवानिवृत हुए थे, उनको पहले से ही लगभग दो साल होने के बाद भी सेवानिवृति के लाभ नहीं मिल पाये हैं। अतः पुनर्वास विभाग स्वयं ज़िम्मेदारी लेते हुए यह सुनिश्चित करे कि सेवानिवृत्ति लाभ में भुगतान की शेष राशि मिलाकर बिना किसी देरी के दिये जायें। तथा कार्रवाई रिपोर्ट सबूत के साथ 15 दिनों में पेश की जाये। असफल होने पर आयोग को मजबूरन धारा 13, मानव अधिकार के रक्षा नियम 1993 के तहत कार्रवाई करने पर बाध्य होना पड़ेगा।

ऐसा एक पुनः स्मरण पत्र सचिव, समाजसेवा विभाग, एनसीटी, दिल्ली सरकार को भेजा गया और उनसे पूछा गया कि कौन सरकारी अधिकारी इस जाँच प्रक्रिया में ढील बरतते हैं, उनकी रिपोर्ट 15 दिन के भीतर आयोग के समक्ष पेश की जाये। वरिष्ठ अधीक्षक, प्रशासन –समाजसेवा विभाग, एनसीटी, दिल्ली सरकार के अलावा मुख्य सचिव, एनसीटी, दिल्ली सरकार और उपसचिव, गृह (पुलिस) विभाग को पत्र भेजे गये कि मामले में जल्द–से–जल्द कार्रवाई की जाये।

आयोग की ईमानदार, सतत् और सजग कोशिशें अंततः रंग लायीं ! माननीय आयोग को विभाग ने पत्र द्वारा बताया कि शिकायतकर्ता के साथ सातों सेवानिवृत्त कर्मचारियों की शेष राशि का भुगतान कर दिया गया है। पत्र में यह भी बताया गया कि उनकी पुनर्निर्धारित शेष राशि भी दे दी गई है। ग्रुप डी कर्मचारियों का भुगतान भी जल्द–से–जल्द कर दिया जायेगा। विभाग ने माननीय आयोग से निवेदन किया कि अगली कोई कार्रवाई आयोग द्वारा न की जाये।

आयोग ने मामले पर विचार कर पाया कि जो भी आवश्यक कार्रवाई चाही गई थी, उसका क्रियान्वयन हो चुका है। अतः माननीय आयोग ने अगली कोई भी कार्रवाई न करने का निर्णय करते हुए इस केस पर पूर्ण विराम लगाया।

नोबेल पुरस्कार विजेता मार्केज़ की कहानी 'कर्नल को कोई ख़त नहीं लिखता' में एक जर्ज़र, रिटायर्ड बुज़ुर्ग को अपनी पेंशन के लिये तिल–तिल लड़ते–मरते दिखाया है। ये कम–से–कम हमारे हिन्दुस्तान में तो अब आगे नहीं होगा क्योंकि हमारे पास देश के अंतिम नागरिक के अधिकारों तक की रक्षा करने को एक शक्तिशाली संगठन है; हमारा माननीय –मानव अधिकार आयोग !!

(प्रकरण नं. 762/30/0/2012)

* * * * *

मेहनतकशों का हिस्सा

इंदिरा दांगी

हम मेहनतकश इस दुनिया से जब अपना हिस्सा मांगेंगे, इक गाँव नहीं, इक देश नहीं, हम सारी दुनिया मांगेगे ! –ये गीत सुनने में कितना सुखद लगता है ! और इतना ही सुखद लगता है, मज़दूर दिवस के दिन सुंदर कतारों में नारे लगाते मज़दूरों को देखना ....लेकिन सच हमेशा वैसा नहीं होता जैसा वो दूर से दिखाई देता है! दूर के सुहावने ढोल नज़दीक से जानने पर असहनीय जान पड़ते हैं

आयोग को ईमेल द्वारा 17/06/2011 को शिकायत का विषय मिला, ''बिना सुरक्षा साधनों/इंतज़ाम के कार्यों में वीआईपी क्षेत्र में दो लोगों की मौत।''

दो युवा मज़दूरों की मौत का मतलब होता है दो घरों के कमाऊ सदस्यों का छिन जाना ....अन्याय और भूख़ से पीड़ित दो परिवारों के आँसुओं से नम तस्वीर ख़ुद–ब–ख़ुद बन जाती है ज़ेहन में !

एक समाचार विज्ञप्ति में बताया गया कि लखनऊ में दो युवा मज़दूरों की मौत ज़हरीली गैस के सूँघने से तब हो गई; तब जब उनको ज़मीन के नीचे की सीवेज लाइन, नाले को साफ़ करने भेजा गया था, बिना किन्हीं सुरक्षा साधनों एवं फेस मास्क के। यह घटना दिनांक 16/06/2011 को तत्कालीन पीडब्ल्यूडी मंत्री नसीमुद्दीन सिद्दिकी के निवास, विक्रमादित्य मार्ग में घटी थी जो कि एक वीआईपी क्षेत्र है।

यह जगह उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री निवास से एक किलोमीटर की दूरी पर भी नहीं है। रसूखदारों का असर देखिये कि दो इंसानी जानें चली गयीं और इस घटना की कहीं कोई एफआईआर भी दर्ज़ नहीं हुई ! इसका नतीज़ा ये कि लखनऊ नगर निगम ने इन कामगारों की मृत्यु के उत्तरदायित्व से अपना दामन साफ़ बचा लिया। निगम के कनिष्ठ

प्रतिष्ठित युवा कहानीकार, भोपाल

अभियंता ने बताया कि मज़दूरों से इस तरह की सफ़ाई बिना मास्क के कराई जाती रही है।

माननीय आयोग ने इस संबंध में मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार एवं आयुक्त, लखनऊ नगर निगम को सूचित कर चार सप्ताह में विस्तृत विज्ञप्ति चाही। ......लेकिन वही हुआ जो ऐसे मामलों में शुरुआत में होता है यानी सरकारी अधिकारियों का ग़ैर ज़िम्मेदाराना और बेहद असंवेदनशील रवैया!

जब कोई विज्ञप्ति नहीं आई तो 25 जुलाई 2011 को आयोग द्वारा पुनः स्मरण पत्र भेजा गया। आयोग के निर्देशानुसार, लखनऊ नगर निगम के आयुक्त ने 05/08/2011 को लिखे पत्र मे जानकारी दी कि सफ़ाई करने वाले मज़दूर नगर निगम के नहीं थे। ये मज़दूर ठेकेदार ने नियुक्त किये थे जो उस समय वहाँ उपस्थित था। ये सफ़ाई घटना के पाँच दिन पहले से चल रही थी। वहाँ उपस्थित अन्य मज़दूरों ने बताया कि वे मज़दूर मेन होल के अंदर दो बार गये थे। फिर जब वे तीसरी बार मेन होल में गये तो अचानक बेहोश हो गये। नगर निगम एवं फ़ायर बिग्रेड के कर्मचारियों ने उन्हें निकालकर तुरंत ट्रामा सेंटर पहुँचाया, जहाँ उन दोनों मज़दूरों का परीक्षण करने पर डॉक्टरों ने उन्हें मृत पाया।

निगम आयुक्त ने आयोग को यह भी जानकारी दी कि दोनों मज़दूरों के परिवारों को मुआवज़े के तौर पर 25,000 रुपये स्थानीय प्रशासन स्तर दिये गये। इसके अतिरिक्त ठेकेदार ने प्रत्येक मृतक के परिवार को एक–एक लाख रुपये दिये। इस घटना के पश्चात् निगम ने ठेकेदार को ब्लैकलिस्टेड कर दिया है।

निगम आयुक्त से प्राप्त इस पत्र के बाद माननीय आयोग के समक्ष यह स्पष्ट हो गया कि सीवेज लाइन की सफ़ाई बिना सुरक्षा इंतज़ामों के की जाती रही है और यह भी साबित होता है कि यह दुर्घटना निगम के अधिकारियों की लापरवाही से हुई। और सवा लाख रुपये की अनुकंपा राशि नितांत अपर्याप्त है उन पीड़ित परिवारों के लिये।

यह प्रकरण मानव अधिकार के हनन का प्रकरण था अतः एक निर्देश सूचना अंडर सेक्शन 18(ए)(आई), मानव अधिकार संरक्षण नियम 1993 के अनुसार मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार को भेजा गया। जिसमें पूछा गया कि पीड़ित परिवारों को पर्याप्त अनुकंपा राशि न दिये जाने का कारण क्या है? जवाब की मोहलत छह हफ़्ते थी।

इस निर्देश के उत्तर में आयोग को निगम आयुक्त ने सफ़ाई पेश की कि मृत मज़दूरों के परिवारों को सवा –सवा लाख रुपये दिये जा चुके हैं जिसमें प्रत्येक परिवार को एक–एक लाख ठेकेदार एवं पच्चीस–पच्चीस हज़ार सरकार की तरफ़ से नैतिकता के आधार पर दी गई अनुकंपा राशि है। इसके बाद मृतक मज़दूरों के घरवालों ने निगम को एफ़ीडेविट देकर कहा कि इस सहायता के उपरांत उनको और कोई अनुकम्पा नहीं चाहिये।

आयोग इस उत्तर से भला क्यों संतुष्ट होने लगा! माननीय आयोग ने विशेष सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार को निर्देश दिया कि दो लाख रुपये की राशि प्रति मृत व्यक्ति के परिवार को दी जाये और यह राशि पहले दी जा चुकी राशि के अतिरिक्त हो। और मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार पूरक विज्ञप्ति के साथ भुगतान राशि का प्रमाण छह सप्ताह के भीतर माननीय आयोग के समक्ष प्रस्तुत करें।

मृत्यु की क्षति अर्थ से कभी पूरी न होती है, न की जा सकती है लेकिन आयोग ने पीड़ित परिवारों की तकलीफ़ को न सिर्फ़ कम किया बल्कि मृतकों को न्याय भी दिलवाया !

(प्रकरण नंबर 22682/24/48/2011)

* * * * *

हत्यारी व्यवस्था

इंदिरा दांगी

सरकार किसलिये होती है ? सरकारी संस्थायें किसलिये होती हैं ? कानूनों का पालन क्यों करते हैं हम ? –सबकुछ एक व्यवस्था ही है ना जो हमें सुरक्षा और सुविधा देती है ......लेकिन अगर यही व्यवस्था हमारी हंता हो जाये तो ?? ये कहानी कुछ ऐसी ही है जिसमें एक अबोध बच्ची को एक व्यवस्था ने मार डाला !

मानव अधिकार जन निगरानी समिति के मंगला प्रसाद द्वारा आयोग का ध्यान आकर्षित किया गया एक समाचार पत्र के मुख्य टाइटल (दिनाँक 06/05/2011) की ओर; जिसका विषय था कि अस्पताल द्वारा एण्डोसल्फान से बीमार बच्ची का इलाज करने से मना कर दिया था। समाचारपत्र के अनुसार एक तीन वर्षीया लड़की प्राजिता की सिर्फ़ इसलिए मौत हो गई कि वह पेस्टीसाइड ज़हर से ग्रसित हो गई थी और एक सरकारी अस्पताल ने उसका इलाज करने से मना कर दिया था। अस्पताल का शिशु रोग विशेषज्ञ डॉक्टर बच्ची के परीक्षण के लिये रिश्वत माँग रहा था जो कि एण्डोसल्फान ज़हर के कारण स्वास्थ्य संबंधी दुश्परिणामों से जूझ रही थी। जब वह सरकारी जनरल अस्पताल में लाई गई तो अस्पताल प्रबंधन ने उसकी चिकित्सा से मना कर दिया जबकि बच्ची की बायोमेट्रिक कार्ड उन्हें दिखाया गया था जिसमें एण्डोसल्फान मरीज की चिकित्सा निःशुल्क करने का प्रावधान था। जब बच्ची अस्पताल लाई गई, उसके मुँह और नाक से लगातार ख़ून बह रहा था। अस्पताल की लापरवाही के चलते बच्ची की मौत हो गई।

समाचारपत्र की कतरन से पता लगा कि प्राजिता 100 में से एक बच्ची थी जिसका जन्म कसारगोड में एण्डोसल्फान ग्रसित स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के साथ हुआ था यानी उसकी बीमारी जन्मजात थी। यहाँ की कई औरतें एण्डोसल्फान ग्रसित हैं एवं कई बार वे अपने गर्भ को इसी डर से गिरवा देती हैं कि उनका बच्चा कहीं एण्डोसल्फान के ज़हरीलेपन के कारण जन्मजात बीमारियों से ग्रसित होकर पैदा न हुआ हो।

प्रतिष्ठित युवा कहानीकार, भोपाल

शिकायतकर्ता ने माननीय आयोग से प्रार्थना की कि इस समाचारपत्र विज्ञप्ति पर तुरंत संज्ञान लिया जाये। आयोग ने 25/04/2012 को संज्ञान लेते हुए एक सूचना जारी करते हुए निर्देश दिया जिसमें संबंधित ज़िम्मेदार अधिकारियों से इस मामले में चार सप्ताह के अंदर जानकारी देने को कहा गया।

आयोग के निर्देशों का पालन करते हुए, प्रमुख सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग, केरल सरकार ने 28/08/2012 को एक सूचना भेजी। उनकी सूचना का सार ये था कि तीन साल की प्राजिता एण्डोसल्फान के ज़हरीलेपन से ग्रसित थी जिसे चिकित्सा सुविधा वाला स्मार्ट कार्ड दिखाकर कसारगोड के सामान्य अस्पताल के केजुएलिटी विभाग में 04/05/2011 को षाम चार, अनवरत् मिर्गी के लक्षणों के साथ लाया गया था। यह पाया गया कि अस्पताल के स्टाफ की ओर से घोर लापरवाही बरती गई। आगे सूचित किया गया कि कुमारी प्राजिता के परिवार को दस हज़ार रुपये राहत राशि ज़िला कलेक्टर की ओर से एवं दस हज़ार रुपये मुख्यमंत्री राहत कोश से दिये गये।

आयोग ने रिपोर्ट की तहकीकात करके पाया कि स्टाफ़ एवं डॉक्टरों की लापरवाही से सरकारी अस्पताल में तीन वर्षीया बच्ची की मौत हो गई। अतः बच्ची एवं उसके परिवार के प्रति मानव अधिकार का घोर हनन हुआ है और सिर्फ़ दस हज़ार रुपये मृतक के परिवार को प्रदान किया जाना कोई न्याय नहीं है।

इस पर पूर्व में आयोग ने समान प्रकरण पर विवेचना कर 31/12/2010 प्रकरण नंबर 477/11/06/10 पर निर्णय सुनाया था कि राज्य कम–से–कम पाँच लाख रुपये ऐसे व्यक्तियों को दे जो चल फिर न सकें या मानसिक रोगी हों और तीन लाख रुपये ऐसे मृतक परिवार को दे जो अन्य लाचारी से ग्रसित हों। डॉक्टरों का एक पैनल, ग्रसित मरीज़ों की भौतिक लाचारी का वर्गीकरण करे एवं भारत संघ, ऐसे राज्यों की सरकारों को यथोचित वित्तीय मदद करे।

इस आधार पर आयोग ने चार लाख रुपये की अतिरिक्त राशि मृतका के परिवार को देने को कहा। प्रमुख सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, केरल सरकार को निर्देश दिये गये कि विभागीय जाँच की प्रगति रिपोर्ट संबंधित सरकारी नौकरों से जवाब छह सप्ताह में देने को कहा।

(प्रकरण नंबर 116/11/6/12)

* * * * *

कठघरे में रक्षक

इंदिरा दांगी

वे हमारी हिफ़ाजत के लिये तय हैं। वे सीमाओं पर ख़ून बहाते हैं तभी अपने कूलर, पंखों में पसीने से भी बच जाते हैं हम। वे ख़तरनाक दर्रों–पहाड़ों–रेगिस्तानों में साँपों और हिंसक जानवरों के बीच रात–रात भर गृत करते हैं तभी हम अपने आरामदायक, नर्म बिस्तरों में सपनों भरी सुरक्षित नींद का सुख पाते हैं। हमारी सेना, हमारे सुख, सपनों और सम्मान की रक्षक है हमेशा ....लेकिन अगर कभी रक्षकों पर ही उँगली उठे कि उन्होंने दुश्मनों पर गोली चलाते–चलाते किसी निर्दोश को मार डाला, तो ??

आयोग को दिनांक 24/11/07 को एक एनजीओ द्वारा शिकायत मिलती है जो शफीकुल इस्लाम पुत्र तकिमुद्दीन मंडल (निवासी दाखिन मजहर दियार, मुर्शिदाबाद, पश्चिम बंगाल) के निधन से संबंधित थी। शिकायत में मौत का कारण बीएसएफ़ के जवान की बंदूक से चली गोली को बताया गया। शिकायतकर्ता के अनुसार, बीएसएफ़ ने एक ग़रीब ग्रामीण को स्मगलर बताया। इस मामले में शिकायतकर्ता ने माननीय आयोग से हस्तक्षेप करने की गुहार लगाई।

आयोग ने मामले को संज्ञान में लेकर 04/09/07 को एक विज्ञप्ति सचिव, मंत्रालय, गृह विभाग एवं डीजीपी, पश्चिम बंगाल के नाम जारी की और चार सप्ताह में रिपोर्ट प्रस्तुत करने को कहा। आयोग के निर्देशानुसार डीजीपी, पश्चिम बंगाल ने अपने पत्राचार (दिनांक 02/01/08) में एसपी, मुर्शिदाबाद की एक जाँच रिपोर्ट (दिनांक 28/08/07 की) पेश की।

इस रिपोर्ट से ज़ाहिर हो रहा था कि इस मामले की शिकायत एफआईआर नं. 94/07 दिनांक 22/05/07 अंडर सेक्शन 147/148/186/353/307 भारतीय

प्रतिष्ठित युवा कहानीकार, भोपाल

दंड संहिता के अंतर्गत पुलिस स्टेशन, रानीनगर में दर्ज़ की गई है। प्रकरण अनुसंधान में है।

इस तारतम्य में, आयोग ने (कार्यवाही 20/11/09 दिनांक को) निर्देशों के साथ डीजीपी, पश्चिम बंगाल को पुनः स्मरण पत्र भेजा कि इस मामले की प्रगति रिपोर्ट से आयोग को अवगत कराया जाये। एक पुनः स्मरणपत्र सचिव, एमएचए, नई दिल्ली को भेजा गया क्योंकि उन्होंने आयोग के (दिनांक 23/07/07 के) नोटिस का जवाब नहीं दिया था।

आयोग के निर्देश आधार पर डीजी और आईजीपी, पश्चिम बंगाल के पत्र दिनांक 29/01/10 को एसपी, मुर्शिदाबाद को एक और सूचना प्रभारी अधिकारी पुलिस स्टेशन, रानीनगर, मुर्शिदाबाद को दिनांक 07/01/10 को पत्र के माध्यम से भेजी गई। पुलिस रिपोर्ट के अनुसार अपराध के अनुसंधान के पूर्ण होने पर एक चार्जशीट सात आरोपियों जिनमें शफीकुल इस्लाम भी शामिल था, न्यायालय में दाख़िल की गई। रिपोर्ट में यही बताया गया कि 18/08/09 को पुलिस के पास शफीकुल की पत्नी की शिकायत बीएसएफ़ के एक जवान के ख़िलाफ़ मिली थी। इसके बाद उस पर पुलिस स्टेशन, रानी नगर में प्रकरण नंबर 771/07 दिनांक 19/08/09 को अंडर सेक्शन 302/201/211 दर्ज़ किया गया जो बीएसएफ जवान, बटालियन 105, बीएसएफ कहरपारा के विरुद्ध था। इसकी जाँच एसआई विभाश चंद मंडल को दी गई थी, जो चल रही है।

एक अन्य सूचना मंत्रालय, गृह विभाग, भारत सरकार से दिनांक 26/03/10 को प्राप्त हुई जिसमें बताया गया कि स्टाफ़ न्यायालय ने जाँच में पाया था कि घटना में बीएसएफ के जवान सिपाही उमानाथ ने आत्मरक्षा के लिए आक्रमणकर्ता स्मगलर के ऊपर गोली चलाई थी। जो कि न्यायोचित था और स्मगलर की मौत के लिए किसी को दोषी नहीं पाया गया। बीएसएफ़ के जवान पर लगाये गये आरोप ग़लत हैं। इस प्रकार के आरोपों से सेना की छवि धूमिल करने एवं जवान को उसकी नैतिक सेवा करने में क्षति पहुँचाने की कोशिश की गई है।

आयोग पूरी जाँच के बिना कभी किसी निर्णय पर नहीं पहुँचता। इस मामले में कोई भी मजिस्ट्रेट जाँच डीएम, मुर्शिदाबाद से प्राप्त नहीं हुई। आयोग द्वारा शफीकुल इस्लाम की मौत की जाँच रिर्पोट भेजने को कहा गया। साथ में पोस्टमार्टम रिपोर्ट को चार सप्ताह के भीतर भेजने के निर्देश दिये।

एसपी, मुर्शिदाबाद से इस प्रकरण का अंतिम परिणाम चार सप्ताह के भीतर अपने जवाब सहित भेजने को कहा।

इस परिप्रेक्ष्य में, एसडीपीओ, डोमकल मुर्शिदाबाद के पत्राचार दिनांक 27/12/10 के द्वारा बताया गया कि रानी नगर पुलिस स्टेशन के प्रकरण क्रमांक 471/09 दिनांक 19/08/09 अंडर सेक्शन 302/201/34 भारतीय दंड संहिता की जाँच के पर्यवेक्षक ने अंतिम प्रतिवेदन लाल बाग कोर्ट के जज को दिया। यह रिपोर्ट रानी नगर पीएस एफआरएमएफ क्रमांक 963/10 दिनांक को दी गई है।

इसका चिकित्सा परीक्षण विवरण/प्रतिवेदन प्रतीक्षित है। आयोग ने ज़िला जज को पुनर्स्मरण करा, शफीकुल इस्लाम की मौत का चिकित्सा परीक्षण विवरण चार सप्ताह में भेजने को कहा।

इस क्रम में आयोग द्वारा भेजे गये पत्र का डीएम, मुर्शिदाबाद से कोई जवाब न आने पर अंतिम पुनर्स्मरण पत्र छह सप्ताह में देने को कहा गया। साथ ही, मुख्य सचिव, पश्चिम बंगाल को एक प्रति भेजी कि वह आयोग के दिशा निर्देश के पालन को सुनिश्चित कराये।

अब, न्यायिक जाँच प्रतिवेदन आयोग को प्राप्त हुआ जो कि ज़िला न्यायाधीश को छह सप्ताह का समय देने वाला पुर्नस्मरण पत्र भेजने के बाद प्रस्तुत किया गया था। इस प्रतिवेदन का अध्ययन करने पर आयोग ने पाया कि पोस्टमार्टम की रिपोर्ट तो अपठनीय है!

अब आयोग ने एसपी, मुर्शिदाबाद को पोस्टमार्टम की पठनीय रिपोर्ट या उसकी प्रतिकृति छह सप्ताह में भेजने का निर्देश दिया। साथ ही आगाह भी कर दिया गया कि इस बार जवाब समय पर न आने पर आयोग को मजबूरन धारा 13, मानव अधिकार संरक्षण अधिकार 1993 के अंतर्गत कार्रवाई करने को बाध्य होना पड़ेगा।

आख़िर में वो पोस्टमार्टम रिपोर्ट माननीय आयोग के समक्ष प्रस्तुत की गई जो पठनीय थी। क्योंकि यह प्रकरण किसी ऐसे व्यक्ति की मौत का था जिसको बीएसएफ के जवान ने गोली मार दी थी; इसलिये प्रकरण को डी बी के सामने विचार करने हेतु प्रेषित कर दिया गया। (दिनांक 30/08/12)

माननीय आयोग का संवेदनशील रवैया हर केस में यही साबित करता है कि न्याय से ऊपर इस देश में कोई नहीं और मानव अधिकारों के संरक्षण की बात हो तो क्या सेना, क्या पुलिस और क्या सरकार, आयोग किसी भी दोषी या संदिग्ध के प्रति रियायत नहीं बरतता कभी भी नहीं !

(प्रकरण क्रमांक 272/25/13/7–08–पीएफ़)

* * * * *

पुस्तक समीक्षा

सामाजिक न्याय की गहन पड़ताल

* अंजली सिन्हा्

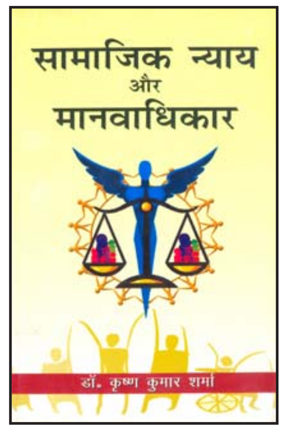

मानवाधिकारों की संकल्पना की बुनियाद में मनुष्य है। वह मानवता की बुनियाद में है, वह समाज की जड़ में है और इसलिए वही अधिकारों के मूल में भी है। इस संकल्पना में यह अभिमान शामिल है कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं इसलिए कायनात में जो भी है, केवल उसके लिए है, उन सब पर मात्र उसी का अधिकार है। भारतीय संस्कृति में हालांकि जीवों, पेड़ों, नदियों, पर्वतों यानी की समस्त प्रकृति को महत्व दिया गया है, लेकिन वहां भी एक तो उन्हें मुनष्य रूप देकर उनसे संवाद स्थापित किया गया है, दूसरे उनसे विनयपूर्वक हो अथवा धमकी देकर येन–केन–प्रकारेण कुछ लेने का भाव ज्यादा है। उनके अधिकारों को स्वीकार करने और उन्हें कुछ देने का भाव कम। इस दृष्टिकोण से कदमताल मिलाता हुआ विज्ञान मनुष्य को जीवों में सर्वश्रेष्ठ मानता है। दर्शन भी इसी नजरिये का समर्थन करता है और चेतना की परम अभिव्यक्ति उसी में ढूंढता है। इसलिए किसी भी समाज और सामाजिक व्यवस्था् का लक्ष्य अपनी इस मूल इकाई का मानसिक, आध्यात्मिक और आर्थिक–सामाजिक उत्कर्ष सुनिश्चित करना होता है। हम पाते हैं कि मनुष्य चाहे कैसा भी हो, समाज चाहे कैसा भी हो, और उसकी व्यवस्था चाहे कैसी भी हो व्यक्ति सदैव अपनी यानी मनुष्य की स्वतंत्रता और उसके जन्मना अधिकारों की ही बात करता है, जीवजगत के अन्यय जीवों के अधिकारों की नहीं। मौजूदा समय में जब अंधाधुंध भौतिक विकास प्राकृतिक संसाधनों, पर्यावरण, स्वयं प्रकृति और मानव से इतर जीवजगत के विनाश का कारण बन रहा है, ऐसे समय में भौतिक के बजाय सामाजिक विकास की, मनुष्य् मात्र के बजाय

---

* स्वतंत्र पत्रकार एवं समीक्षक

चराचर के समस्त जीवजगत और उन्हें संभव तथा सुपुष्ट बनाने वाले विकास की, उनके लिए अनिवार्य अधिकारों की बात करना कहीं ज्यादा उपयुक्त होगा।

इस नजरिये से देखें तो डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा की पुस्तक 'सामाजिक न्याय और मानवाधिकार' निराश करती है। पुस्तक में शामिल 16 अध्यायों में से एक भी सृष्टि के जीवों के अधिकारों के बात नहीं करता सांकेतिक रूप से भी नहीं। उसका अभीष्ट केवल मनुष्य और उसके अधिकार हैं। लेखक परिचय से स्पष्ट होता है कि लेखक ने पर्यावरण प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन आदि के क्षेत्र में भी काम किया है। इसलिए इस एकांगीपन पर ध्यान जाना स्वाभाविक है। लेकिन यह निराशा उतनी बड़ी नहीं है, क्योंकि 'मानवाधिकार' का अभिप्राय मानव का अधिकार है। इसलिए उसका क्षेत्र विस्तार नहीं किया जाए तो संकीर्ण होते भी स्वीकार्य है। बड़ी निराशाएं अन्यत्र हैं। पुस्तक के नामकरण के लिए प्रयुक्त चार शब्दों में से पहले दो के लिए 16 में से एक भी अध्यय नहीं है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के महत्वपूर्ण राजनीतिक–सामाजिक–आर्थिक विमर्शों में से एक सामाजिक न्याय, पुस्तक के नाम में 'सिरमौर' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किंतु यह शब्द युग्म विचार के रूप में अन्दर के प्रायः तीन सौ पृष्ठों से सर्वथा नदारद है। फिर पुस्तक के नाम में यह क्यों है? क्या लेखक अपने संभावित पाठकों को भरमाना चाहता है अथवा स्वयं दिग्भ्रमित हैं?

पुस्तक के दो अध्यायों के शीर्षक क्रमशः कमजोर वर्गों के अधिकार और 'शोषण के विरूद्ध अधिकार' है। जिन्हें देखकर कहा जा सकता है कि उपरोक्त आलोचना उचित नहीं, लेकिन अध्यायों के नाम भी एक भ्रम ही फैलाते नजर आते हैं, क्योंकि 'कमजोर वर्गों के अधिकार, शीर्षक अध्याय में केवल धार्मिक अल्पसंख्याकों की चर्चा है। जबकि 'शोषण के विरूद्ध अधिकार' में बालश्रम की चर्चा की गई है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से कमजोर, दलित और वंचित तबकों की अधिकारिता की नहीं, और न ही स्त्रियों की, जिनके अधिकार हनन के मामलों की वास्तविक संख्या रोज सामने आने वाले नये–नये मामलों से वस्तुतः कई गुना ज्यादा है।

यह भाषिक भ्रम समूची पुस्तक में चतुर्दिश व्याप्त है। पुस्तक की शुरूआत जिस संक्षिप्त भूमिका से होती है उसकी आरंभिक पंक्ति है – 'मानव अधिकार मानवीय व्यक्ति से निकलते हैं और यह भी कि 'लोकतंत्र में मानवीय व्यक्तित्व सभी वस्तुओं का अंतिम

मापदंड है यह 'मानवीय व्यक्ति अथवा व्यिक्त' क्या है? अधिकार मनुष्य मात्र के होते हैं अथवा उसकी मानवीयता– अमानवीयता देखकर निर्धारित किए जाते हैं? यदि कोई 'मानवीय व्यक्तित्व' है तो निश्चय ही 'अमानवीय व्यक्तित्व' भी होगा। उसकी अमानवीयता लेखक किस प्रकार निर्धारित करता है? क्यो उसके जन्म, कर्म, भाषा, जाति, धर्म अथवा लिंग के आधार पर? क्यों किसी अपराधी अथवा आरोपी के समस्त अधिकारों का एकबारगी इस प्रकार हरण हो जाता है कि अधिकारिता की चर्चा से उसे सर्वथा बाहर कर केवल 'मानवीय व्यक्तित्व' के अधिकारों पर ग्रंथ रचे जाएं? पुस्तक पढ़ने के बाद सहजतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है कि लेखक की दृष्टि शायद इतनी दूर तक न गई हो और उपरोक्त गलतियों का मूल भाषा की उसकी सीमित, संकुचित अथवा अशुद्ध समझ और कुछ खास प्रकार के शब्दों, शब्द युग्मो, वाक्यों के प्रति मोह और लगाव में निहित है। इसीलिए वह विशेष किस्म के अप्रचलित, गरिष्ठ और भ्रामक तत्सम शब्दों का भरपूर प्रयोग करता है जो मानक शब्दों से सर्वथा भिन्न है और इसलिए प्रायः कथन दुरूह और अबोधगम्य हो जाता है तथा संप्रेषण में बाधा उत्पन्न होती है।

भूमिका छोटी है लेकिन इसका विस्तार 'समता और मानवाधिकार' शीर्षक पहले अध्याय तक है जिसके अंत में डॉ. शर्मा पुस्तक का अभीष्ट घोषित करते हैं। लेखक कहता है – 'किसी भी मानव अधिकार का विस्तार वहीं तक संभव है जहां तक वह संविधान के उपबंधों के अनुरूप है क्योंकि संविधान सर्वोपरि विधि है। संविधानातीत मानव अधिकारों की संकल्पना करना व्यर्थ है। इसलिए इस अध्याय में और आगे अन्य अध्यायों में मानव अधिकारों की संविधानपरक विवेचना की गई है। उन्हीं मानव अधिकारों का विवेचन किया जाएगा जिन्हें संविधान में सम्मिलित किया गया है। इस उद्धरण के आखिरी वाक्यों से जहां लेखक कृष्ण कुमार शर्मा पुस्तक का विचार क्षेत्र निर्धारित करते हैं वहीं यह उदाहरण एक गंभीर प्रश्न खड़ा करता है। स्वयं संविधान निर्माताओं ने संविधान में शामिल अनुच्छे दो–उपबंधों को अंतिम सत्य नहीं माना है और समय–काल की जरूरतों के अनुरूप उसमें संशोधन की संभावना बरकरार रखी है। लेकिन कृष्ण कुमार संविधान से इतर मानवाधिकारों की परिकल्पना को नकार देते हैं। इस तरह वह समय सापेक्ष नवीन विचारों, दृष्टियों और अधिकारों की संभावना को भी अस्वीकार कर देते हैं।

यह अध्याय सोदाहरण विधि के समक्ष समता की बात करता है और कहता है कि यह एक सक्रिय संकल्पना है, लेकिन यह संकल्पना व्याहवारिक स्तर पर किस प्रकार सक्रिय की जा सकेगी, अध्याय यह नहीं बताता। फलतः इस टिप्पणीकार जैसे अल्पबुद्धि व्यक्ति के लिए यह समझना कठिन जान पड़ता है कि 'भोपाल गैस विभिषिका,' 'विशेष न्याायालयों की स्थापना' और 'कर विधियों के अधीन वर्गीकरण' जैसे उपबंधों के अधीन किस समता की व्याख्या की गई है।

'अनुकूलता का अधिकार' शीर्षक एक अन्य अध्याय में विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत कर्मचारियों के संघ बनाने के अधिकार और उसके लिए राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रावधानों का उल्ल्ेख है। लेकिन पूर्व की भांति यहां भी यह समझना कठिन है कि मिलने–जुलने, सम्मेनलन और विचार–विमर्श करने तथा परस्पर समान हित के लिए संघ बनाने को 'अनुकूलता का अधिकार' जैसी किसी कल्पित श्रेणी के तहत कैसे लाया जा सकता है। इसी अध्याय में 'संघ' के लिए 'संगम' का प्रयोग किया गया है और 'अध्ययन नागरिक '.....अनुच्छेद 19(।)(ग) का न्यून करती है' जैसे शब्द और वाक्यांश प्रयुक्त हुए हैं (पृ. 145)। इस प्रकार, 'व्यक्तिगत मानवाधिकार' और 'राष्ट्रीय उत्थानपरक मानवाधिकारों की श्रेणी को इंगित नहीं करते 'इसलिए भ्रमोत्पादक और उलझाने वाले हैं।

'व्यक्तिगत मानवाधिकार' शीर्षक अध्याय में स्वास्थ्य, संस्कृति, परिवार रखने, सामाजिक सुरक्षा, उचित जीवन स्तार बनाए रखने, संघ बनाने, रोजगार, शिक्षा, कृषि और पर्यावरण, पुरातालिक संरचनाओं के संरक्षण, सामाजिक न्याय और उसे बढ़ावा देने वाली व्यणवस्था, निशुल्क कानूनी सहायता, पंचायती राज व्यवस्था आदि जैसे महत्व पूर्ण अधिकारों पर संक्षिप्ता और परिचयात्मक चर्चा कर उन्हें एक ही अध्याय में समेट दिया गया है। वस्तुतः यह अध्याय संविधान के 'नीति निर्देशक सिद्धांतों की व्याात्ख्या करता है, उल्लेखनीय है कि नीति निर्देशक सिद्धांत मानवाधिकार तो हैं, लेकिन वे संविधान और उसके निर्माताओं की सद्इच्छाओं के द्यौतक हैं, राज्य पर बाध्यकारी नहीं। नैतिक स्तार पर मानवाधिकारों के रूप में उन पर अलग–अलग विस्तृत से विमर्श किया गया है और प्रोटोकॉल बनाए गए हैं। देश के भीतर इन सब पर अलग क्रियान्वयन का मूल्यांकन और आगे काम करने की जरूरत पर विस्तृत चर्चा आवश्यक है, ताकि कमियों को दूर करने के लिए अपेक्षित उपाय किए जा सकें। पूरी पुस्तक में

अनेक स्थानों पर दोहराव हैं – कई मर्तबा अध्याय के बाहर, कई बार एक ही अध्याय में अलग–अलग।

'वर्गगत अधिकार' शीर्षक अध्याय में निर्वाचन प्रणाली, मतदान, चुनाव लड़ने जैसे अधिकारों की चर्चा है। ये अधिकार क्या किसी खास वर्ग के हैं? वस्तुतः यहां स्पष्ट करना जरूरी है कि ये राजनीतिक प्रणाली से जुड़े अधिकार हैं– प्रजातांत्रिक व्यवस्था पूर्ण अथवा आंशिक तौर पर यह अधिकार देती है, सैन्य, राजतंत्र यह अधिकार स्वीकार नहीं करती।

16वें अध्याय में जिसे 'राष्ट्रीय उत्थान पर अधिकार कहा गया है, स्तुति अंतरराष्ट्रीय और परस्पर विरोधी देशों के बीच युद्ध से उत्पन्न स्थितियों, युद्ध पीड़ितों, बंदियों और युद्धक्षेत्रों में रहने वाले लोगों की पीड़ाओं और उनके अधिकार रक्षण की चर्चा करता है। लेखक ऐसे अधिकारों के सर्वथा अज्ञात और अप्रचलित नाम इस्तेमाल करता है, जो दुर्गम बनाता है। अप्रचिलत शब्दों का प्रयोग कर भाषा का जो वाग्जाल रचा गया है उससे लेखक की अपनी विद्वता और भाषाज्ञान बताने की कोशिश भले लक्षित होती हो, पुस्तक का कथ्य ओर संप्रेषणीयता तिरोहित हो जाती हैं।

'भारत में निवास का अधिकार' और 'समूहगत वार्ता का अधिकार' जैसे अध्याय की उपयोगिता सीमित है। ऐसी बुनियादी सूचनाप्रद सामग्री मानव अधिकारों के नवप्रशिक्षुओं के लिए लिखी गई पुस्तक के लिए तो ठीक है किंतु अधिकारिता को मजबूत बनाने के किसी गंभीर विमर्श को आगे नहीं बढ़ाती। फिर, 'समूहगत वार्ता का अधिकार' का कथ्यय 'अनुकूलता का अधिकार' और 'अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार' शीर्षक अध्याय का हिस्सा हैं और उनका दोहराव हैं। वस्तुतः इन तीनों अध्याय की सामग्री को संगत रूप से संपादित कर एक ही अध्याय में प्रस्तुात किया जाना चाहिए था।

पुस्तक में आदिवासियों के वनों पर अधिकार, भूमिहीनों के भू–अधिकार, जनजातियों और दलित–वंचितों के अधिकार, आर्थिक, समानता और सबके समान विकास के अधिकारों की चर्चा तो नहीं ही है, जीवन के अहरणीय अधिकार स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार जैसे अधिकारिता–विमर्श के ज्याादा लोकप्रिय विषय भी नदारद हैं।

इस टिप्पणी के आरंभ में जीव जगत के अन्य जीवों के साथ–साथ पेड़ों, जंगलों और उनमें रहने वाले वन्यं प्राणियों के अधिकारों की चर्चा की गई है। इस बात का कि

आज प्रकाशित होने वाली इस जैसी ढेरों पुस्तकें उनके अहरणीय अधिकारों का हनन करती हैं, क्योंकि ये जिस कागज पर छपती हैं, वे उन्होंने पेड़ों को काट कर बनाई जाती है जो उनके जीवन–भरण और उन्नयन के लिए अनिवार्य हैं।

पुस्तक : सामाजिक न्याय और मानवाधिकार,
डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा
अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्यः 895/– रूपये

मानवाधिकार संस्कृति पर अभिनव दृष्टि

*** राजेन्द्र उपाध्याय**

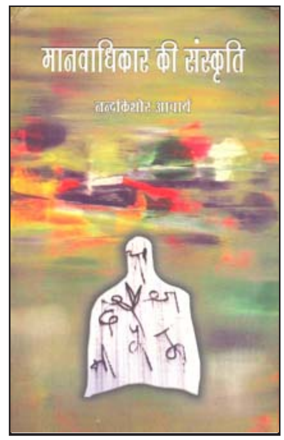

कुछ समय पहले तक हिन्दी में मानवाधिकार जैसे विषय पर पुस्तकों का नितांत अभाव था। अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित होकर कुछ पुस्तकें जरूर मिल जाती थीं पर मौलिक पुस्तकों का अभाव था। कुछ पत्रकार और कुछ अध्यापक जरूर इस दिशा में कदम बढ़ाते थे पर गंभीर चिंतनपरक पुस्तकें कम ही मिल पाती थी। अब राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के सद्प्रयासों से हिन्दी के कुछ गंभीर लेखक, साहित्यकार, कवि, संस्कृतिकर्मी भी मानवाधिकारों पर अच्छी गंभीर चिंतनपरक किताबें लिखने लगे हैं। इसी तरह की एक किताब है नंदकिशोर आचार्य की 'मानवाधिकार की संस्कृति'। आचार्य जी कवि, आलोचक, निबंधकार और नाटककार हैं, पर समय–समय पर उन्होंने समसामयिक पत्रों में समसामयिक राजनीतिक–सामाजिक विषयों पर अपनी कलम भी चलाई है। वे उन कुछ गिने–चुने चिंतनशील लेखकों–विचारकों में से हैं जिन्होंने सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन को गंभीरता से समझने का प्रयास किया है। उन्होंने सामान्य नागरिक को केन्द्र में रखकर मानवाधिकार के संदर्भ में अहिंसा, लोकतंत्र और राजनीतिक रिश्ते की आधार–भूमि को समझने–समझाने का प्रयास किया है।

आचार्य ने संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवाधिकार घोषणापत्र का कई पहलुओं से अध्ययन और चिंतनपरक विश्लेषण कई निबंधों में किया है। प्रारंभ के चार निबंध तो इस घोषणापत्र के दार्शनिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक विश्लेषण करते हैं। बाकी निबंधों में समसामयिक विश्लेषण–विवेचन किया गया है, मानवाधिकारों को भी सामने रखा है। अल्पसंख्यकों, अतिपिछड़ों, दलितों की अस्मिता की लड़ाई लड़ते आदिवासी

---

* प्रसिद्ध लेखक, साहित्यकार एवं समीक्षक, दिल्ली

समूहों, मुक्तबाजार और पर्यावरण–विनाशक विकास के उत्पीड़ितों एवं विस्थापितों, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते श्रमिक वर्गों तथा रोजगार के लिए तरसते युवजनों की समस्याओं के मानवाधिकारों के दृष्टिकोण से सोचने देखने–दिखाने समझने की अच्छी कोशिश की गई है।

अपने निबंधों में आचार्य शुद्ध तार्किक बुद्धि से ऐसे निष्कर्ष हमारे सामने रखते हैं जो राष्ट्र के भविष्य के लिए मार्गदर्शक और शुभ माने जा सकते हैं। आज हम जिस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं, उसके अंतर्विरोधों पर लेखक ने गहराई से चिंतन करके अच्छा प्रकाश डाला है। निर्भीक तर्क–वितर्क और विवेकजन्य निष्कर्ष नंदकिशोर आचार्य की खास पहचान है।वे हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर गहरी टिप्पणी करते हैं – ''अधिकार शब्द से ही ऐसा ध्वनित होता है गोया वह किसी के द्वारा दी गई बक्शीश हो। संभवत'' इसीलिए राज्यों द्वारा शिक्षा, रोजगार, सूचना, आरक्षण, वोट आदि के अधिकारों को चुनाव के समय बांटे जाने वाले तोहफों की तरह बांटा जाता है। इन अधिकारों की बारीकी से छानबीन करने की आवश्यकता है क्योंकि ये अधिकार हमारी आंखों पर पर्दा डालने के लिए भी हो सकते हैं।'' इस पर हर नागरिक को ध्यान देने की जरूरत है।

आचार्यजी के अनुसार राजनीतिक असहमति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति ही एकमात्र मानवाधिकार नहीं है, बल्कि मानवाधिकार एक व्यापक जीवन–दर्शन पर आधारित संकल्पना है, जिसके घेरे में समूचा जीवन और समाज व्यवस्था आ जाती है।

ऐसा प्रायः देखा गया है कि सभी छोटे–बड़े राजनीतिक दल मानवाधिकार की बड़ी–बड़ी बातें करते हैं और उनके लिए निरंतर आंदोलनरत भी दिखते हैं पर देखा जाए तो उनमें आंतरिक लोकतंत्र नहीं होता है और न ही वे मानवाधिकारों का पालन करते हैं। लोकतंत्र बगैर किसी राजनीतिक दल के नहीं चल सकता है। लोकतंत्र जैसी राजनीतिक व्यवस्था में दखल रखने के लिए आपको किसी न किसी राजनीतिक दल की शरण में जाना ही पड़ता है। पर आचार्य जी कहते हैं कि ''वर्तमान व्यवस्था में राजनीतिक दलों की कोई विशेष सार्थकता नहीं रह गई है क्योंकि उनका प्रधान लक्ष्य मानवीय चेतना के विकास में कोई सार्थक राजनीतिक भूमिका अदा कर सकने के बजाय सत्ता पर अधिकार करना हो गया है।'' मानवाधिकार की मांग करने के लिए भी हमें किसी न किसी राजनीतिक दल की शरण में जाना पड़ता है। मानवाधिकार की मांग को लेकर देश–विदेश में बड़ी–बड़ी क्रांतियां हुई हैं। अक्सर इन क्रांतियों ने हिंसक रूप धारण कर लिया है। पर आचार्य जी मानते हैं कि मानवाधिकार अहिंसा का ही एक रूप

है। मानवाधिकारों को पुष्ट करनेवाला समाज अनिवार्यतः अहिंसक होगा। समता, स्वतंत्रता और बंधुता अहिंसा के ही सिद्धांत हैं। स्वतंत्रता के दायित्व से पलायन मानवत्व से पलायन है। आचार्य पुस्तक में राष्ट्रीय या राज्यस्तर के मानवाधिकार आयोग की शक्तियों और सीमाओं की भी चर्चा करते हैं। मानवाधिकार आयोगों के सामने आनेवाली व्यावहारिक समस्याओं की भी वे चर्चा करते हैं। ''यह विडम्बनापूर्ण है कि स्वयं इन आयोगों की कार्यप्रणाली से भी कई बार मानवाधिकारों का हनन होता लगता है और शिकायतकर्ता के मन में असंतोष और बेचारगी का भाव पैदा होता है। राष्ट्रीय या राज्य मानवाधिकार आयोगों के पास स्वतंत्र जांच के अपने संसाधन नहीं है और ऐसी हालत में उन्हें उन्हीं सरकारी अधिकारियों पर निर्भर होना पड़ता है जिनके खिलाफ शिकायत की गई होती है। भारत के कई राज्य यूरोप के कई बड़े राष्ट्रों से भी बड़े हैं और उनमें आनेवाली शिकायतों का निपटारा राज्यों की राजधानियों में बैठे आयोगों द्वारा त्वरित प्रभाव से किया जाना संभव नहीं है।''

विद्वान लेखक ने सुप्रीम कोर्ट के मानवाधिकार संबंधी फैसलों पर भी अच्छी टीका–टिप्पणी की है। समय–समय पर पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखकों के उद्धरणों को भी उद्धत किया है।

लेखक को भारतीय मनीषा, दर्शन, इतिहास और पुराण का अच्छा ज्ञान है। उनमें उपलब्ध मानवाधिकारों की भी चर्चा की गई है। लेखक का यह कहना सही है कि मानवाधिकार के संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र से पहले हमारे देश में मानवाधिकार मुखर था। हमारे यहां चर–अचर का भी मानवाधिकार है।

* * * * *

मानवाधिकार की संस्कृति –नंदकिशोर आचार्य,
वाग्देवी प्रकाशन,
विनायक शिखर पॉलिटेकनीक कॉलेज के पास,
बीकानेर–334 003,
मूल्य–150 रूपये

पूर्व जर्नल में प्रकाशित महत्वपूर्ण लेखों की वर्षवार सूची

2004 (अंक 1)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	भारत में मानव अधिकार आयोग की भूमिका	न्यायमूर्ति डॉ0 ए. एस. आनन्द
•	अपने अधिकार जानें	न्यायमूर्ति श्रीमती सुजाता वी. मनोहर
•	मानवाधिकार और पुलिस के काम–काज	न्यायमूर्ति श्री वाई. भास्कर राव
•	भारत के कारागारों में कैदियों की स्थिति, उनके अधिकार और अपेक्षित सुधारात्मक उपाय	डॉ0 पी. के. अग्रवाल
•	बालश्रम : एक मानवाधिकार मुद्दा	चमन लाल
•	भारतीय परिदृश्य में मानव अधिकार : प्रासंगिकता और अनुपालन	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र
•	आतंकवाद एवं मानव अधिकार	एस. वी. एम. त्रिपाठी
•	बंधुआ श्रमिक : समस्याएँ एवम् समाधान	स्वामी अग्निवेश
•	मीडिया तथा मानवाधिकार	बलराज पुरी
•	सिर पर मैला ढोने की प्रथा : एक सामाजिक अभिशाप	डॉ0 बिन्देश्वर पाठक
•	भारतीय पुलिस प्रणाली में मानवाधिकारों की दृष्टि से व्यवस्थागत सुधार	डॉ0 त्रिनाथ मिश्र
•	गरिमापूर्ण जीवन	मदन गुप्त
•	मानवाधिकार : अंरराष्ट्रीय और भारतीय विधि के परिप्रेक्ष्य में	प्रो0 बी. बी. पांडे
•	मानव अधिकार और यूनेस्को	प्रो0 योगेश अटल
•	मानव अधिकार एवं बुद्धिजीवी वर्ग : कुछ संकेत	प्रो0 विवेक मिश्र
•	मानवाधिकार, न्यायपालिका और पुलिसः भारतवर्ष के परिप्रेक्ष्य में एक विहंगम दृष्टि	राजेश प्रताप सिंह
•	सामाजिक न्याय और मानवाधिकार	मुकेश कुमार मेश्रम
•	भारतीय परिवेश और मानवाधिकार	डॉ0 हरिओम

2005 (अंक 2)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	मानव अधिकार : 21 वीं शताब्दी की कुछ चुनौतियाँ	न्यायमूर्ति डॉ0 आदर्श सेन आनन्द
•	स्वास्थ्य का अधिकार : समाज के समक्ष प्रमुख चुनौती	न्यायमूर्ति श्री वाई. भास्कर राव
•	झारखण्ड में मनोरोग चिकित्सालय : मानव अधिकार के विशेष संदर्भमें	श्रीमती लक्ष्मी सिंह
•	स्वास्थ्य सेवाएं – एक मानवाधिकार	श्रीमती अरुणा शर्मा
•	स्वभाषा का प्रयोग स्वयं एक मानव अधिकार है	श्री अनिल गर्ग
•	संस्कृति, न्याय और मानवाधिकार	श्री के. पी. सिंह एवं डॉ0 दीपा सिंह
•	पर्यावरण – एक मानवाधिकार	डॉ0 के. एस. द्विवेदी
•	मानव अधिकार और राज्य के सरोकार : भारतीय अनुभव	प्रो0 अरुण चतुर्वेदी
•	वृद्धजनो के मानव अधिकार	श्री नवनीत सिकेरा
•	बाल अधिकार : भावी समाज का सुदृढ़ आधार	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र
•	पर्यावरण के लिए कानूनी संरक्षण	श्री आर. सी. मिश्र
•	महिला सशक्तिकरण : मानवाधिकार की एक आवश्यकता	डॉ0 (श्रीमती) सुनीता मिश्र
•	मानव अधिकार : सांस्कृतिक अस्मिता का आधार	श्री नंदकिशोर आचार्य

•	बाल्मीकीय रामायण तथा मानवाधिकार	प्रो0 अमरनाथ पांडेय
•	क्या हों छात्रों के मानव अधिकार?	श्री मदन गुप्त
•	बालिका भ्रूण–हत्या : महिलाओं की अस्मिता पर प्रहार	श्री नन्द्रेश निगम
•	जीवेम शरदः शतम्	श्री सरोज कुमार शुक्ल

2006 (अंक 3)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	भ्रष्टाचार : सुशासन और मानव अधिकारों के लिए खतरा	न्यायमूर्ति डॉ0 ए. एस. आनन्द
•	वर्तमान भारतीय दाण्डिक न्याय व्यवस्था में सुधार एवं सुझाव	न्यायमूर्ति ए. पी. मिश्रा
•	सूचना का अधिकार : पृष्ठभूमि और प्रासंगिकता	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र
•	उच्चतम न्यायालय और मानव अधिकार	डॉ0 विजय नारायण मणि त्रिपाठी
•	मानसिक स्वास्थ्य का मुद्दा और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	चमन लाल
•	पर्यावरण प्रबंधन में मानवाधिकार संरक्षण	विनोद शुक्ल
•	मानवाधिकार के संदर्भ में संगीत की प्रासंगिकता	अप्रमेय मिश्र
•	मानव अधिकारों की तलाश में बालिका शिशु	डॉ0 निशी अग्रवाल
•	मानव अधिकार एवं अर्द्ध–सैनिक बल	राजेश प्रताप सिंह
•	इतिहास के आइने में मानवाधिकार	शिवराज सिंह रावत 'निःसंग'
•	स्त्री एवं मानवाधिकार मानव अधिकार और मीडिया	डॉ0 अर्चना मिश्र राकेश रेणु

2007 (अंक–4)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	मानव अधिकार शिक्षाः	न्यायमूर्ति श्री वाई. भास्कर राव
•	स्वतंत्रता, समता एवं मानवाधिकारः	डॉ0 के. एस. द्विवेदी
•	आदिपर्व एवं मानवाधिकारः	आर. पी. सिंह
•	मानव अधिकार की कल्पना एवं आवश्यक तत्व	प्रो0 बी.बी. पांडे
•	मानव अधिकार संकल्पना, उद्भव, विकास और प्रसार	श्री विजय नारायण मणि त्रिपाठी
•	पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं का योगदान	डॉ0 हेमलता
•	मानवाधिकार संरक्षण : भारतीय संस्कृति की वैचारिक परंपरा	श्री शिवराज सिंह रावत निःसंग
•	मानव दुर्व्यापार एवं मानवाधिकार एक त्रासदी	डॉ0 सरोज व्यास
•	मानवाधिकार–वैश्विक संदर्भ में कर्त्तव्य	एस. के. सिंह, मैथिली रमण प्रसाद सिंह
•	मानवाधिकार–जागरूकता की कमी	श्री महेन्द्र प्रताप गुप्त 'नभेन्द्र'
•	कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र'में मानवाधिकारों क`संदर्भ	डॉ0 कृष्ण दत्त शर्मा
•	राजस्थानी लोकगीतों में अभिव्यक्त मानव अधिकार की अवधारणा	डॉ0 प्रतिभा
•	गांधी दर्शन : मानव अधिकारों की आधार पीठिका	श्रीमती अंशु गुप्ता
•	भारतीय सिनेमा और मानवाधिकार प्रेमचन्द्र के साहित्य में मानवाधिकार का यथार्थ	श्री हेमन्त राज पटेल डॉ0 अप्रमेय मिश्र

2009 (अंक 6)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	सूचना का अधिकार	न्यायमूर्ति जी. पी. माथुर
•	सूचना का अधिकार, मानव अधिकार तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य	न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी
•	आजीवन कारावास और समता का मूल अधिकार	चमन लाल
•	मानव अधिकारों का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र

- कैदियों के लिए शिक्षा का अधिकार — कुंवर विजय प्रताप सिंह
- गांधी चिंतन एवम् मानव अधिकार — डॉ0 प्रतिभा
- मानव अधिकारों के हनन का एक क्रूर पक्ष : महिलाओं एवं बच्चों का अवैध व्यापार — डॉ0 ममता चंद्रशेखर
- मनव अधिकार और मीडिया — अरविन्द कुमार सिंह
- शिक्षा : एक मानव अधिकार — आलोक चांटिया
  मानव अधिकार एवं ग्रामीण जनता — आलोक कुमार यादव

2010 (अंक 7)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	मानव अधिकारों के संरक्षण में आयोग की प्रतिबद्धता	श्री पी. सी. शर्मा
•	विकास हेतु साक्षरता का प्रयोजन और पंचायती राज व्यवस्था	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र
•	स्त्रियों और बच्चों के मानवाधिकार : संस्थागत दृष्टिकोण	डॉ0 बिन्देश्वर पाठक
•	भारत में महिला सशक्तीकरण : दशा एवं दिशा	डॉ0 सुभाष शर्मा
•	महिलाओं एवं बच्चों के अधिकार	श्रीमती लक्ष्मी सिंह
•	भारतीय समाज में सरोगेसी : चुनौतियों और अधिकारों के निकष पर	डॉ0 प्रतिभा
•	भारत में सम्मान के लिए स्त्रियों की हत्या : स्त्रियों के मानवाधिकारों का कूरतापूर्ण उल्लंघन ?	डॉ0 प्रीती सक्सेनाए डॉ0 सुदर्शन वर्मा
•	महिला अधिकार संरक्षण : (अमृतसर पुलिस के विशेष प्रयोग के संदर्भ में)	कुँवर विजय प्रताप सिंह
•	भारतीय शिक्षा का वर्तमान संदर्भ : दशा और दिशा	प्रो0 विद्याशंकर शुक्ल
•	मानव अधिकार और उपभोक्ता	प्रो0 शीतल कपूर
•	मानवाधिकार एवं वंचित वर्गों का संघर्ष	डॉ0 रूपा मंगलानी
•	सामाजिक न्याय की धुरी स्त्री अधिकारिता	श्रीमती अंजली सिन्हा
•	मानव अधिकार और एच0 आई0 वी0 / एड्स	डॉ0 अशोक कुमार

2011 (अंक 8)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	मानव अधिकार तथा लोकतंत्र	श्रीमती लक्ष्मी सिंह
•	मानव–मूल्य और भ्रष्टाचार की समस्या	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र
•	एक अनूठी संघर्ष गाथा	श्री चमन लाल
•	मानव अधिकार व भूमंडलीकरण और जटिलताएं अंतर्संबंध	डॉ0 सरोज कुमार वर्मा
•	निवारक निरोध कानून एवं मानवाधिकार	डॉ0 आनन्द कुमार विश्वकर्मा
•	मानव अधिकार का ईसाई दृष्टिकोण	डॉ0 एम. डी. थॉमस
•	मानवाधिकार एवं जनजातियों में मौताणा प्रथा	डॉ0 एस. पी. मीणा
•	भ्रष्टाचार तथा मानव अधिकार	प्रो0 योगेश अटल
•	अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महिलाओं का स्वास्थ्य संबंधी मानव अधिकारों की रणनीति	प्रो0 (डॉ0) शिवदत्त शर्मा
•	मानव अधिकार के परिप्रेक्ष्य में मानसिक स्वास्थ्य	प्रोफेसर यादे लाल टेखरे
•	सुशासन, भ्रष्टाचार एवम् मानव अधिकार	प्रो. (डॉ.) सरोज व्यास
•	साहित्य, समाज तथा मानव अधिकार	श्रीमती अंजू वर्मा
•	स्त्री सशक्तिकरण तथा मानव अधिकार	डॉ0 अनीता सिंह
•	अपराधी महिलाओं के मानव अधिकार	डॉ0 अजय भूपेन्द्र जयसवाल

•	मानव अधिकार तथा लोकतंत्र(सुलभ की दृष्टि से)	डॉ0 बिन्देश्वर पाठक
•	बुजर्गों के मानव अधिकार	डॉ0 सोना दीक्षितए अरुण कुमार दीक्षित
	पंचायतीराज, सुशासन एवं मानवाधिकार	डॉ0 कन्हैया त्रिपाठी

2012 (अंक 9)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	झारखण्ड के आदिवासी एवं उनके मानव अधिकार	श्रीमती लक्ष्मी सिंह
•	अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के अधिकार : हम सब कुछ सचमुच का चाहते हैं	डॉ0 सरोज कुमार वर्मा
•	महादलित समुदाय एवं मानव–अधिकार	डॉ0 जयनारायण दुबे
•	21वीं सदी, दलित महिलाएँ और उनके अधिकार	सुश्री सर्वमित्रा सुरजन
•	अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजातियों में ''नाता प्रथा'' महिलाओं के मानवाधिकारों के संदर्भ में	डॉ0 वी. के शर्मा
•	दलितों के मुक्ति संघर्ष का प्रतीक है गढ़वाल का डोला–पालकी आंदोलन	श्री मनु पंवार
•	''दवा परीक्षण से पीड़ित जनजातीय समुदाय''	डॉ0 कमलेश कुमार
•	भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जातियों के मानवाधिकार	सुश्री राशिदा अतहर
•	जातिगत विषमता और उसके आर्थिक आयाम	प्रो0 गिरीश्वर मिश्र
•	जनजातीय क्षेत्रों में लघु वन–उत्पादों के लिये न्यूनतम समर्थन मूल्य की आवश्यकता	डॉ0 एस. एम. झरवाल
•	भारतीय मानववादी परम्परा का परिपाक : गांधी चिन्तन	डॉ0 प्रतिभा
•	प्रकृति, न्याय तथा मानव अधिकारों का अंतरसंबंध	प्रो0 विनोद शुक्ल
•	हाथ से मैंला उठाने की कुप्रथा : मानवाधिकार को एक गंभीर चुनौती	श्री अनीस अहमद, श्री प्रदीप कुमार
•	भारत में कन्या भ्रूण हत्या, मानव अधिकार उल्लंघन एवं विधि	डॉ0 राकेश कुमार सिंह
•	पंचायती राज से मानव अधिकारों की संरक्षा	डॉ0 संजुला थानवी

2013 – (अंक 10)

क्र.स.	विषय	लेखक का नाम
•	नारी सशक्तिकरणः कल, आज और कल	श्रीमती कमलेश जैन
•	किराये की कोख का बढ़ता व्यापार एवं महिलाएँ	डॉ0 सरोज व्यास
•	महिला सशक्तिकरण एवं दलित महिलाओं की स्थिति : चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ0 शशि कुमार
•	मानव अधिकार और भारतीय महिलाएँ	प्रो0 डॉ0 श्रीराम येरणकर
•	महिला हिंसा एवं लिंग भेद के संबंध में राष्ट्रीय एंव अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर कानूनी उपबंध	डॉ अनिला, डॉ0 लाला राम
•	बौद्धिक–विमर्श के परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण की चुनौती : एक समीक्षा	डॉ. पुनीत कुमार, डॉ. मंजुलता गर्ग
•	महिला अधिकार, मानवाधिकार और मीडिया	डॉ0 इन्द्रेश कुमार मिश्र
•	मानव अधिकार विमर्श और भारतीय संदर्भ	प्रो0 अरूण चतुर्वेदी
•	विकास : एक मानव अधिकार	सुश्री पूनम कुमारी
•	जलवायु परिवर्तन एवं इसके परिणाम	डॉ0 एस. एम. झरवाल
•	21वीं सदी : पुलिस और मानवाधिकार	डॉ0 के. एस द्विवेदी
•	मानवाधिकार और मानवतावाद एक दार्शनिक दृष्टि	डॉ0 अमिता पांडेय
•	समकालीन हिन्दी उपन्यास में मानवाधिकार	डॉ0 के. वनजा
•	विकास, पर्यावरण एवं मानवाधिकार	श्री बजरंगलाल जेठू

ISSN : 0973-7588

मेरे सपनों का भारत

मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब आदमी भी यह महसूस करे कि यह उसका देश है, जिसके निर्माण में उसकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊँच-नीच का कोई भेद न हो। जातियां मिलजुल कर रहती हों। ऐसे भारत में, अस्पृश्यता व शराब तथा नशीली चीजों के अनिष्टों के लिए, कोई स्थान न होगा। उसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलेंगे। सारी दुनिया से हमारा संबंध शांति और भाईचारे का होगा। यह है मेरे सपनों का भारत।

(मोहनदास करमचंद गांधी)

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार भवन

सी –ब्लाक, जीपीओ कॉम्पलेक्स, आईएनए, नई दिल्ली – 110 023, भारत

ISSN 0973-7588